



# कालिदास के काव्य में ध्वनितत्व

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिये प्रस्तुत

## शोध प्रबन्ध

निदेशक —

डा० चण्डिका प्रसाद शुक्ल

रीडर संस्कृत विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्ता

(कु०) मञ्जुला जायसवाल

१९७३

मजय प्रकाशन इलाहाबाद

मुद्रक ।—

धी० के० व्याट प्रभ

६१, गाढ़ीवान टोना

इलाहाबाद ।

प्रथम संस्करण १९७६

मूल्य ३० ••

## निवेदन

कालिदास गिरा सार कालिदास सरस्वती ।

चतुमु खो यथा साक्षात् विदुर्नायतुमादशा ॥ मल्लिनाथ

संस्कृत भाषा में कालिदास के काव्य का अवतार बने ही हुआ, जैसे लज्जना म यौवन का और यौवन में लावण्य का। सुभारती काय हा, गई, महाकवि की प्रतिभा को, पाकर और आप साहित्य के प्रति व्यापार बुद्धि न श्लक्ष्ण सहस्य चेतना को भावा का शरप श्यामल शाद्वल मिला, जहा बुद्धि व साथ हृदय ने भी वयाम लिया। भाव क सससि धु म सहस्य चेतना को इतना आदर और सुख मिला कि उसे ऐसा प्रतीत माना स्वयं और पृथ्वी एक स्थान पर मिल गय। प्रकृति में वसन्त का वभव एक आत्मा का परमात्मा से मिलन सा प्रसात होने लगा। देश और काल की परिधि न पाह हाकर महाकवि की प्रतिभा न विश्वमानव को काव्यरस के आनंद में निमग्न किया और संस्कृत साहित्य के अध्ययन का आह्वान किया। भारतीय काव्य प्रतिभा का वक्षुणा योत बना।

किंतु सहस्य बुद्धि कायाचोचन क मापदण्ड बनाती और हारकर कालिदास के काय का उचित माप न कर पाता। अलकार, गुण, राशि आदि के बटखरों में आचार्यों ने तौला। उनमें बहुतों के पास अधिक सामग्री मिली और इन आचार्यों के लिये, व श्रेष्ठ स्थान भागी रहे। सम्भव है, उन आचार्यों न कालिदास क काव्य में अपने काव्यमान की सम्यक् सत्ता न देखकर, उन्हें श्रेष्ठकवि का महत्त्व न भी दिया हो। मह लक्षणकारों की स्वयं मूल्यांकन दृष्टि का शयित्य था, जो कालिदास के काव्य मीढम की परख न कर सके, परिमाप न कर सके। अलकार, गुण, रीति वादिमा के लिये कालिदास एक सामान्य कवि रहे।

सौभाग्य से, जन्म काव्य जात में महाकवि कालिदास का भाविभावि हुआ, जैसे ही काय समालोचना के क्षेत्र में सहृदय आनंदवधन का अवतार हुआ। उन दिनों दृष्टि सहृदय ने काय समालोचना का नूतन मापदण्ड उपस्थित किया और कविता के वास्तविक मूल्य का माप निश्चित किया। उनके अनुसार कविता का प्राण है—व्यंग्यअर्थ और उसका बाध हाता है व्यंजना से। नया अर्थ नया व्यापार, न किसी ने सुना था, न किसी ने कहा था। व्यंग्य अर्थ भी तीन प्रकार का—वस्तु रूप, अलकार-रूप, रसादि रूप। इस अर्थ को जा काय प्रधान रूप से व्यक्त करे, उस काय का नाम 'ध्वनि काव्य' है। बिना व्यंग्य अर्थ के काय, काव्य नहीं, काव्य का चित्र अथवा काव्य है। और चूंकि इस प्रकार की अलोक-सामान्य प्रतिभा का अभिव्यंजन कालिदास की कविता

म अथ म इति तत्र मरा पडा है अतः कालिदास महाकवि है और इसी विषये कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसी ओर बिना नाम विषये ही ध्वनिज्ञान न दा, तीन या पांच छ का और मन्त्र किया। पना नहीं व हीन ये ' लक्षण उनी दिन म कालिदास सर्वश्रेष्ठ महाकवि हा पर, और अब कालिदास की श्रेष्ठता का रहस्य खुला कि ध्वनितत्व क कारण उनकी कविता सर्वश्रेष्ठ है अस्तु।

कालिदास क काव्य मन्त्रि म प्रवच करने का सीमाग्र, मुझे स्नातक कथा स मिला। उसी स उनक काव्य क प्रति एक। वगण रवि मरे हृदय में जागृति हुई। एम० ए० की कक्षाओं म कालिदास के साहित्य को कुछ और निकट म देखने का अवसर मिला। एम० ए० क परवात्, मरे मन म शोध करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। अपने निदेशक गुरुवर्य ए० चण्डिका प्रसाद शुक्ल स व सवाच स मैंने अपनी यह विज्ञाता पकट की। उन्होंने कालिदास क काव्य के ध्वनि शास्त्रीय अध्ययन की ओर मुझे इंगित किया, और कहा, विषय कठिन है, किन्तु अध्ययन स सम्भव है। उनक सन्देश एव इच्छा से ही आश्रम मान कर मैंने यह शोध यात्रा आरम्भ का। महाकवि कालिदास क काव्य-सागर का ध्वनिशास्त्रीय अध्ययन मरी जना अल्पजानी एव सधप के साक्षात्कार म प्रस्तुत छात्रा क विषये उनना ही कष्ट साध्य था जब एक पणु का गिरि साधना, क्याकि यह काम तो महानो महीयान, का सा था। कविकुचर महाकवि कालिदास की वाणी एव गुरुवर्य की अनुकम्पा का सहारा लेकर ही मैंने अपनी यह यात्रा आरम्भ की, क्योंकि—महता मस्तवम् गोरवाय।

बासवी शताब्दी म कालिदास की कृतिया क अध्ययन अज्ञान का विषय प्रेरणा दी जा रही है। वप म मना जाने वाली कालिदास जयन्ता एव कालिदास एकेडमी की स्थापना स कालिदास का महत्व अब स्पष्ट होन लगा है।

इस युग म कालिदास के काव्य का मूल्यांकन अनेक विद्वानों ने, अनेक दृष्टिया से करने का प्रयास किया है किन्तु जिस ध्वनि तत्व के विवेचन के कारण उन्हें महाकवि की उपाधि प्रदान की गई है—उस ध्वनितत्व का विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। अतः कालिदास के काव्य मे ध्वनि तत्व का विवेचन मैंने अपनी अरानुद्धि क द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रस्तुत करने का यत्नचित् प्रयास किया है। इस शोध प्रबंध म कालिदास की काव्य कृतिया का ही विवेचन किया गया है, नाट्य कृतियों का नहीं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध सात अध्यायों म विभाजित है— 'कालिदास क काव्य म ध्वनि तत्व जिवन्ता नवीन है, उतना हा नवान एव दुर्वर ध्वनि तत्व का अवगाहन है। ध्वनि का वास्तविक रूप समझ कर फिर उस कुञ्चिका क आधार पर कालिदास की काव्य कालिका का उद्घाटन किया जा सकता है। अतः आरम्भ म ध्वनि क विषय का विवेचन किया गया है। आचार्य आनन्दबधन द्वारा दिय गये, ध्वनि की परिभाषा, ध्वनि काव्य का भेद, ध्वनिभेद, गुणोन्मूत व्यंग्य काव्य आदि का संग्रह म विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में महाकवि के जीवन-वृत्त एवं संस्कृत-काव्य परम्परा के सन्दर्भ में उनकी कृतियों की समीक्षा की गई है। कालिदास के समय, जीवनवृत्त आदि के विषय में अनेक विद्वानों द्वारा विचार किया गया है। इस अध्याय में उनके आविर्भाव का काल—नाटकाय प्राकृत का आधार पर, विशेष विवेचन किया गया है। उत्तरार्ध में संस्कृत काव्यों का रचनाकाल वग (इतिवृत्त प्रबन्ध, भाव प्रधान एवं अलंकार प्रधान) का उल्लेख कर, कालिदास के काव्य में इन तीनों का समन्वय किया गया है।

तृतीय अध्याय में रसादि व्यंग्य का विवेचन किया गया है। ध्वनिवादी आचार्यों ने असलक्षरक व्यंग्य का केवल एक भेद रसादि माना है। रसादि में जाये आदि षष्ठ में भाव रसाभास, भावाभास भावादय, भावशान्ति, भावसंधि, भावशालता का प्रयोग हुआ है। इन अध्याय के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में अगीरस का विवेचन है द्वितीय खण्ड में अमभूत रस का तथा तृतीय खण्ड में भाव रसामास, भावामास भावादय, भावशान्ति, भावसंधि एवं भावशालता का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में अलंकार व्यंग्य का विवेचन किया गया है। सन्दर्भक व्यंग्य के दो भेद शक्ति मूल एवं अर्थशक्ति मूल होत हैं। इसमें अर्थशक्तिमूल के भी तीन भेद—कविप्रोक्तितनिर्दिष्ट, कविनिबद्धवृत्तौघोषानिर्दिष्ट एवं स्वतन्त्रमन्त्रवी बनाये गये हैं, इनमें भी अलंकार व्यंग्य एवं वस्तु व्यंग्य—हानि में कुल छ भेद होत हैं। इन्हीं छ भेदों का अनुपात प्रधान व्यंग्य अलंकार का विचार किया गया। कालिदास के काव्य में प्रधान स्थित अलंकार यत्र तत्र हा पाये जात हैं जहाँ भी अलंकार आये हैं वे वीरकाल में ही आये हैं। अतएव यह अध्याय बहुत ही छात्रों केवल बानगी के रूप में हा प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में वस्तु व्यंग्य का विवेचन किया गया है। जहाँ रस, भाव अलंकार की प्रबन्धना न होकर, किसी स्थिति या वस्तुस्थिति का प्राधान्य व्यक्त किया जाता है वहाँ वस्तु व्यंग्य होता है। वस्तु व्यंग्य के छह भेदों के अनुसार इसका विवेचन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन किया गया है। जहाँ वाच्य एवं व्यंग्य का समन्वय ही अथवा व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का चारुत्व अधिक हा, वहाँ गुणीभूत व्यंग्य होता है। महाकवि की समस्त कृतियाँ ध्वनिकाव्य के ही उत्कृष्ट निदर्शन हैं, गुणीभूत व्यंग्य का स्थल प्रायः बहुत कम मिलत है। फिर भी प्रयत्न जो कुछ भी स्थल मिले, उन्हीं का विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय में कालिदास की शलो में व्यञ्जक योजना के विशिष्ट का विवेचन किया गया है। ध्वनिकाव्य में व्यञ्जक-योजना का महत्वपूर्ण स्थान है। कालिदास के कथानक, पात्र, चरित्र, कथापरिचय, दश-काल, मापा इत्यादि के साथ प्रकृति, प्रत्यय, पद, वाक्य इत्यादि सभी व्यञ्जक रूप में वे प्रयुक्त हुए हैं और उनमें सदैव किसी न किसी रस, भाव इत्यादि की योजना होता है। अतएव आठ उपखण्डों में विभक्त इस अध्याय में इन्हीं सब की व्यञ्जकता का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस निबंध के निम्नलिखित में मैंने जिन ग्रन्थ रत्ना की सहायता ली है, उन सब के प्रति मैं परम कृतज्ञ हूँ। कालिदास के काव्य का अर्थ समझने के लिये मैंने कालिदास प्रयागवना एवं रस, भाव, वस्तु एवं अलंकारों का व्याख्यान बाल गणेशों के लिये मलिननाथ जीका मङ्गल, कुमारमन्मथ, रघुवश, मेघदूत एवं ऋतुमहार के विषय सहायता ली है अतः इन दानों के प्रति मैं हृदय से विचार रूप से आभारी हूँ आदरणीय अर्थ्य डा० आचार्यवाद मिश्र के सभी शास्त्र विद्यापिण्डों का प्रेरणा मिलती रही। मुझे भी इस शास्त्र की लिखने का अवधि में उनसे जो समय पर प्रेरणा मिली है, उक्त प्रत में धन्यवाद है। परम आदरणीय गुरुवर्य डा० अष्टिका प्रसाद मुनि जी के प्रति धन्यवाद प्रकट करने के लिये मेरे पास वाणी नहीं है। उन्हीं के स्तव एवं उपासना से यह शोध प्रबंध सम्पन्न हो सका है। उनका पत्र भरा हृदय कृतज्ञता से संपन्न रहेगा। अर्थ्य था माता बाल जायसवाल का के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय समय पर पुस्तकें प्रदान करने एवं अध्ययन के लिये सुविधा प्रदान की। गणनाथ भद्र इन्स्टीच्यूट के प्रति मैं आभारी हूँ जहाँ मैं पुस्तकें सुलभ होती रहीं। प्रयाग विश्व वेदालयाय पुस्तकालय एवं साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ दि० शि०, लक्ष्मी, पत्रिकाओं एवं दुर्लभ पुस्तकों की दान की व्यवस्था की।

निबंध में कालिदास के काव्य में आये प्रसंगों का अनेक दृष्टियों से विवेचन किया गया है। जैसे विभिन्न काव्यों से लिया गया एक ही चित्र भिन्न भिन्न भावों का प्रस्तुत करता है, ठीक वैसे ही एक ही प्रसंग का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से विवेचन किया गया है, अतः उन पुनरुक्ति न समझना चाहिये।

मैंने कुछ अपन दृष्टि से कालिदास के काव्याज्ञान में अनेक पद्धत मारती रहा है। अपनी अल्पबुद्धि द्वारा गुण-गोषों के साथ यह शोध प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मुझे आशा है विद्वानों की इससे उद्देश्य न होगा। अस्तु !

विनीता

कु० मञ्जुला जायसवाल



## किञ्चद् वक्तव्यम्

संस्कृत काव्य शास्त्र में ध्वनि सम्प्रदाय का आविर्भाव का साथ ही कालिदास काव्य का गौरव ऐसा बना जैसे सूर्योदय के साथ कमल का । फिर तो उसने सौरभ सारा संस्कृत बाडमय महक उठा । आनन्दवधन ने पावणा की कि ललना में लावण्य भाँति कविता में प्रतीयमान (व्यंग्य) अर्थ दमकता है । और वह केवल महाकवियों के कविता में दिखाई पड़ता है । उस अर्थ का निष्पन्न करने की हुई महाकवियों की मर्यादा उनकी आलोचना सामान्य प्रतिभा को परिस्फुरित करता । महाकवि को उस अर्थ तथा उसे व्यक्त करने में समय शक्ति की महीमाति पहचानना चाहिये । महाकवि पद करने का यही एक राजमार्ग है— नायक पदा विद्यते अर्थनाम । उन्होंने महाकवि का यही एक मर्म दृष्ट निश्चित किया और स्पष्ट निरायण किया कि इस कवि जगत यद्यपि कवियों की अतिविचित्र परम्पराये है, किंतु महाकवि कहलाने का सौम्य कालिदास-प्रभृति दो-तीन या पाँच ही का है ।

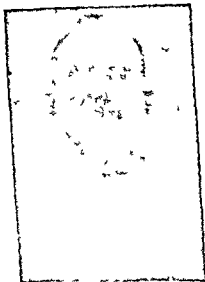
आनन्दवधन ने उस प्रतीयमान अर्थ को तीन प्रकार का बताया— वस्तु अलंकार रूप तथा रसार्थ रूप, और उसका प्रधान रूप में व्यक्त करने वाले काव्य को ध्वनि नाम दिया, जिस उन्होंने काव्य सामान्य के बाव अथवा काव्य जगत् का जीवित स्वस्वरूप बताया । ध्वनिकार न अच्छी कविता का परस्व का जो तराका बत उससे काव्य समालोचना की तुला ही बल गई तथा काव्य विपणी में वस्तु के एवं भूल्य बल गये ।

इस नये मानक में ध्वनिकार तथा अर्थ सभी काव्य पारखी सौम्य कालिदासीय काव्य को सर्वश्रेष्ठ ठहराया । अब कालिदास कविकुलगुरु बन और कविता श्रेष्ठ काव्य पद्धति । कालिदास ध्वनि काव्य के श्रेष्ठ निर्माता माने गये । आनन्दवधन तथा उनके अनुयायिनो न ध्वनि का बड़ा प्रस्ताव बताया । किंतु सभी प्रकार के लिये उदाहरण कालिदास के काव्यों में लिये जा सकते हैं । यदि ध्वनिवाला कवि ध्वनि सिद्धांत व्यक्त है, तो कालिदास का काव्य ध्वनि की प्रयोगशाळा । अस्तु इधर साहित्य में शाव काय की ता अच्छी प्रगति हुई । किंतु किसी ने कालिदास का काव्य को ध्वनि सिद्धांत की कसौटी पर कसन का प्रयत्न न किया । इस काय में उच्च की सहृदय प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति की आवश्यकता था । मुझे हय है कि सुथो डा० में आनन्दवाल ने अपनी अपूर्व शाव क्षमता के साथ इस काय को सम्पन्न किया । प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति का मञ्जुल समन्वय है । कालिदास का काव्य सुधासिंधु ।



बन्धुन दूब जानो धी—पूणु त मयता क साप । उद्वेगि जा मोठा निरान व भी बदन  
 बानगी मात्र बह जा मजन है—“तथापि ररनाकर एव सिधु । कालिगस पर घोष  
 ठाने ररग—और यह निबन्ध उनका पदि प्रशक हागा, एमा मेरा पूणु विश्वास है ।  
 जपनी मौनिक दृष्टि एव गमीर विवचना क कारण यः निरय काव्य मनोविषी के  
 साधुवाद का गौरव पा चुका है । एस बिदुषा ललिका स सस्कृत काव्य शास्त्र का बरी  
 भाषाम है ।

चण्डिका प्रसाद शुक्ल  
 अक्टूबर २० वि०



रव० पूज्य पिता श्री मन्मथजीन जायसवाल

तथा



वामदेवमया पूज्या मा श्रीमती सरजूदेवी के चरणों में सार समर्पित



हमने डा० कुमारी मन्जुला जायसवाल का "कालिदास के काव्य में 'इति'त्व" नामक शोध प्रबंध यहाँ-वहाँ देखा। हमारी धारणा है कि लेखिका ने कालिदास के काव्यों में विविध प्रकार का 'इति'त्व को ढूँढ़ने में बड़ा धम किया है। तृतीय से लेकर बृहत् सप्तक के चार अध्यायों में इन्हीं 'इति'-प्रकारों का सागोपाग विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय में "इति" तत्व का, एवं सप्तम (अंतिम) अध्याय में व्यञ्जन की योजनायें कालिदास के दृशिष्ट्य का विवेचन है।

इस प्रकार यह ग्रंथ अच्छा बन पड़ा है। काव्यपरिचय सुधीजन इस ग्रंथ के अध्ययन से मद्भाग्य कालिदास की काव्य भारती के उत्कृष्टतम तत्व 'इति' का अनुशीलन कर सकेंगे, उसका सुखीद आस्वादन कर सकेंगे, हमारा ऐसा विश्वास है।

वसन्त पञ्चमी  
२०३२ विक्रमाब्द

अ० प्र० मिश्र

# अनुक्रमसामिका

अध्याय	पृष्ठ
१—इतिहास	१ २०
२—कानिनाम अरि मस्कृत काव्य परवरा	२६ ५५
३—कानिनाम क वा य म रत-इत्यय	५५ १०५
४—अनकार यय	१०६ १०९
५—वस्तु इत्यय	— १८० १०२
६—गुणीभूत इत्यय	१६३ २०
७—कानिनाम की शरा म इत्यय यात्रना वा वाग्यय	२०५ २६६



## प्रथम अध्याय

# ध्वनितत्त्व

संस्कृतं माहिर्य मे आनन्दवधन ध्वनिमम्प्रदाय के प्रवक्तक एव प्रतिभा सम्पन्न महूदय आचाय के रूप में प्रतिष्ठित हैं।<sup>१</sup> प्राचीन आलङ्कारक नामह, उद्भट, दण्डी, वामन, इत्यादि श्रोत्रो से बहता हुई काव्य-समालाचना-धारा का पयवर्षण कर, उहोने सवथा एक नवीन मन को जन्म दिया, जा 'ध्वनिसम्प्रदाय' के नाम से अभिहित हुआ। आचाय आनन्दवधन ने काव्य क अतर्निहित मम को उसके रहस्यभूत सौन्दर्य तत्त्व को पहचाना—और उम तत्त्व का 'प्रतीयमान ( व्यग्य ) अथ नाम दिया—

' काव्यस्यात्मा स एवाथ " और उस व्यग्य अथ का प्रधान रूप से व्यक्त करने वाले काव्य को 'ध्वनि' नाम दिया।

यत्राय शब्दो वा तमथमुपसजनीकृतस्वायी व्यङ्ग्य काव्यविशेष  
स ध्वनिरिति सूरिभि कथित ॥ (ध्व० १।१३)

इम दिशा म उनका यह प्रयास सवथा नवीन एव स्तुत्य था।

'ध्वनिसम्प्रदाय' के प्रतिष्ठापक आचाय आनन्दवधन के पूव इसका बीज प्राचान विद्वानो की श्रुतिया म किसी-न किसी रूप म प्राप्त हाने लगता है। ध्वनि-कार ने प्रथम कारिका म ही इस ओर संकेत किया है।<sup>२</sup> ध्वनिसम्प्रदाय म व्यजना व्यापार एव व्यङ्ग्य अथ का बडा महत्त्व है। वस्तुत ये हा दा तत्त्व ध्वनि क प्राणभूत हैं। 'ध्व-यात्रोक्त' म व्यजना के अनेक पयायवाची ध्वनन, घातन, प्रत्यायन, यजन अवगमन एव व्यजकत्व इत्यादि आय हैं किन्तु व्यजना शब्द का प्रयोग कही नहीं हुआ है। इसके पूव आचाय भरत ( तीसरी शता० ) ने 'नाट्यशास्त्र' म स्थायी भाव को व्यग्यता को स्वीकार किया है।

१ "सहृदयचवर्तौ सत्वय प्रत्यकृत् । ध्व०लोघन, पृ० ८१

२ बुध य समान्नातपुव ॥ ध्व० १ का०

मामह न समाप्ताति अन्कार क लक्षण म अर्थांतर की गम्य-  
मानता को स्वीकार करके वाच्याय स भिन्न 'ध्व-यमान अय का आर सकेत  
क्रिया है ।<sup>१</sup>

आचाय दण्डा द्वारा लिए गये पर्यायोक्त क लक्षण म प्रकारान्तराभ्यायम्'  
स ध्वजता वृत्ति का आर सकेत किया गया है तथा उनमें यत्र-तत्र व्य-यत तथा  
'व्यजित' इत्यादि शब्दों का प्रयोग भा लिंगाई देता है । आचाय उद्भट न भा  
पर्यायोक्त क लक्षण म अभिधा वृत्ति क अतिरिक्त अवगमात्मक व्यापार की बात कटा  
है ।<sup>२</sup> आचाय रुद्रट द्वारा दिया गया भाव नामक अन्कार का उदाहरण आनन्दवधन  
क ध्वग्य काव्य क गमना बैठता है तथा भाविर नामक अन्कार गुणभूत-  
ध्वग्य काव्य का कोटि म आता है ।<sup>३</sup> आचाय वामन भा वज्राति क लक्षण म  
"साहचर्यान्व णा वज्राति निगन है । इसमें यह स्पष्ट होता है कि ध्वनिविषयक  
अंग का चिन्वन ध्व-यालाप का रचना स पहल भी होता रहा है किन्तु कित्ता भा  
आचाय न गम्भीरतापूर्वक उम पर स्वतंत्र विवेचन प्रय रूप म प्रस्तुत नह  
किया था ।

इस प्रकार अस्तु रूप म ध्वनि तत्व का आर सकेत ता प्राप्त होत है  
परन्तु 'ध्वनि का वास्तविक प्रेरणा एव ध्वनि शब्द का प्रयोग जानन्दवधन का  
वैयाकरण क स्फोट-वाद स हा मिला है, जिसे उठाने सूरिभि कपित क  
द्वारा स्वीकार किया है । व्याकरण शास्त्र म प्रधानभूत स्फोट का अभिव्यक्ति  
जिस ध्वनि (शब्द) स होती है उम वहाँ ध्वनिति स्फोट व्यनति इति ध्वनि इस  
व्युत्पत्ति के अनुसार उस स्फोट क अभिव्यक्त शब्द क लिए ध्वनि का प्रयोग किया  
गया है । इसा क आधार पर ध्वनिवादा आचार्यों न उस शब्द एव वाच्याय रूप काव्य  
का जा प्रधान रूप म व्यप्याय का अभिव्यक्त करन म समर्थ है 'ध्वनि  
नाम लिया ।<sup>४</sup>

१ काव्याल०, पृ० २।७६

२ पर्यायोक्त यद-येन प्रकारेणाभिधीयते ।

वाच्य वाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना ॥ का० सा० स० ४।६

३ रुद्रट काव्यालकार, डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० २६

४ तत्र ध्रुपमाणेषु यणेषु ध्वनिरिति व्यवहरति । तथवा-यस्त-मतानुसारिभि सूरिभि-  
काव्यतत्त्वायदशभिर्वा-यवाचकसम्मिध शब्दात्मा काव्यमिति ध्यपदेशयो ध्यजकत्व-  
साम्याद् ध्वनिरित्यक्त ॥ पृ० ११८

आचार्य भ्रमट ने भी इसी तात्पर्य का उत्तम काव्य ध्वनि के विवेचन के प्रसङ्ग में विशद रूप से निरूपित किया है।<sup>१</sup>

इस प्रकार वैयाकरणों से प्रेरणा ग्रहण कर आनन्दवधन ने काव्य को एक नयी दिशा दी और उस दिशा का नाम 'ध्वनिवाद' रखा। उनके अनुसार ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार है—जहाँ वाच्य-अर्थ अपने (स्वरूप) को तथा वाचक शब्द अपने वाच्य अर्थ को गौण (अप्रधान) बनाकर, उस प्रतीयमान अथवा व्यंग्य अर्थ की प्रधान रूप से व्यञ्जना करते हैं उस काव्य-विशेष को ध्वनि कहते हैं।<sup>२</sup>

वस्तुतः आनन्दवधन ने मतानुसार ध्वनि एक विशेष प्रकार के काव्य को ही कहते हैं—'जहाँ शब्द और अर्थ अपने को अप्रधान बनाकर अर्थ (व्यंग्य अर्थ) की व्यञ्जना करते हैं।' अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ में ध्वनिवाद ने 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग बस केवल इसी अर्थ (व्यंग्य प्रधान काव्यविशेष) में किया है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु उनके ही ये वचन प्रमाण हैं, यथा—

व्यंग्य प्राधाये हि ध्वनि ।। ध्व० १।१३

'ध्वनिसञ्जित प्रकार काव्यस्य ध्वजित सोऽयम्' ।। ध्व० १।३

ननु ध्वनि काव्यविशेष इत्युक्तम् ।। ध्व० १

व्यङ्ग्योऽर्था ललनालावण्यप्राप्तौ च प्रतिपादितस्य प्राधाये ध्वनिरित्युक्तम् ।<sup>३</sup> व्यङ्ग्यापस्य प्राधाये ध्वनिसञ्जितकाव्यप्रकार गुणभावे तु गुणीभूत-व्यङ्ग्यता ।<sup>४</sup> इत्यादि ।

१ 'बुधर्वैयाकरणो प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहार कृत । ततस्त-मतानुसारिभिरन्यरपि-यथाभावितवाच्यव्यंग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दाय गुणतस्य ।।'

किंतु इस विषय को लोचनकार आचार्य अभिनव गुप्त ने कुछ अधिक विस्तार दिया है। उन्होंने 'ध्वनि' का प्रयोग पाँच प्रकार के अर्थों (ध्वजक शब्द, ध्वजक अर्थ, व्यङ्ग्य अर्थ, व्यञ्जना व्यापार तथा इन सबसे युक्त काव्य) में किया है। इन पाँचों अर्थों की पुष्टि के लिए 'धातुपदीयकार भट्ट हरि' की कारिकाओं को उद्धृत किया है। यद्यपि आपने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि आनन्दवधन ने तो अपने ग्रन्थ में केवल काव्य को ही ध्वनि कहा है।

२ यत्राय शब्दो वा तमथमुपसजनीकृतस्वायी ।

व्यङ्ग्य काव्यविशेष से ध्वनिरितिसूरिभि कथित ।। ध्व० १।१३

३ ध्व० तृतीय उद्योत पृष्ठ ४५६

४ ध्व० तृतीय उद्योत, पृ० ४६५



आचार्य मम्मट न भी वाच्य की अपेक्षा ध्वन्य की प्रधानता होत पर ध्वनि वाच्य का सना दी है, और उग उतमकोटि का वाच्य ह्योकार किया है।<sup>१</sup> आचार्य मम्मट के अनुयायी विश्वनाथ न भा साहित्यदर्पण, न चतुर्थ परिच्छेद में वाच्य-भेदा के विशेषण में ध्वनि का प्रयोग वाच्यातिशायि-व्यंग्ययुक्त वाच्य के लिए किया है—

‘वाच्यातिशायिनि ध्यये ध्वनिस्तत् वाच्यमुच्यते’ ॥ सा० ३० ४।१

संस्कृत साहित्य के मूढ-य आचार्य गणितराज जगन्नाथ ने भा ‘ध्वनि शब्द का प्रयोग (वस्तु अत्रङ्कार, रमादि) व्यंग्य-अर्थों में युक्त उरामात्म नामक वाच्य-विशेष के अर्थ में किया है—

शाब्दाधो यत्र गुणोन्मितात्मानो ब्रह्मपर्यमभिष्यद्दृष्टस्तदाद्यम् । रस० ग० १।२

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि आनन्द-वचन के अनुसार ध्वनि का व्युत्पत्ति निमित्तक अथ हुआ व्यञ्जक तथा प्रवृत्तनिमित्तक अथ हुआ ध्यय अर्थ को प्रधानतः प्रयुक्त करने वाला वाच्य-विशेष।<sup>१</sup>

अब प्रश्न यह उठता है कि ध्वनिकार एक और ध्वनि का प्रयोग वाच्य प्रकार विशेष के अर्थ में करते हैं, और दूसरा ओर ध्वनिकार का प्रयोग वारिजा में ध्वनि का वाच्य का आत्मा बताते हैं।<sup>२</sup> इन दोनों स्थानों पर प्रयुक्त ध्वनि का सङ्गति किस प्रकार बैठेगा ?

इसका समाधान यह है कि प्रथम वारिका में उल्लिखित वाच्यस्थारमा ध्वनि इसका अर्थ है—ध्वनि ही वाच्य की वास्तविक आत्मा अथवा स्वभाव या स्वरूप है। ‘आत्मा शब्द का प्रयोग इन शास्त्रकारों ने भूया भूय स्वरूप अथवा स्वभाव के ही अर्थ में किया है। इसमें निष्कर्ष यह निकला कि पूर्ववर्ती बुधा न केवल ध्वनि का ही वाच्य अथवा वाच्य का संगण माना है—ध्वनि वाच्यम्। इसी भावना के अनुसार विस्तार के साथ सभी दृष्टियों से मीमांसा कर ध्वनिकार ने—व्यंग्याय की प्रधान तथा गौण रूप से ‘दो स्थितियों के अनुसार ध्वनि नामक वाच्य के दो भेद निरूपित किए। जिन्हें क्रमशः ध्वनि वाच्य तथा गुणोन्मिताव्यंग्य वाच्य नाम दिया गया। वस्तुतः ध्वनि वाच्य की आत्मा और ध्वनि वाच्य-विशेष इन दोनों वचन में कोई भेद नहीं है।

१ इदमुत्तममतिशायिनि ध्यये वाच्याद्ध्वनि युक्त वचन । का० प्र० १।८ ;

२ वाच्यस्यात्माध्वनिरिति ॥ ध्य० १।१

- १८ महाकविता की कसौटी व्यंग्य अथ ही है ।, साधारण कवियों के काव्य में व्यंग्यार्थ नहीं (मी। ५। ५।) जाता ।। किन्तु शब्द-अर्थ का ज्ञान महाकवियों को तो होता ही है । वे ही उस अर्थ (व्यंग्यार्थ) को मलीभाति समझकर उसका अभिनिवेश अपने काव्य में करते हैं । अतएव महाकवि-पद की प्राप्ति के लिए व्यंग्यार्थ का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि ध्वनिकार ने प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा कहा है । इस दृष्टि से कालिदास महाकविता की कसौटी पर खर उतरते हैं, जैसा कि स्वयं आनन्दवर्धन ने कहा है—येनास्मिन्नतिविचित्रकवि परम्परावाहितिन ससार कालिदासप्रभृतयो द्वित्रा पचया वा महाकाव्य इति गण्यते ।<sup>१</sup> -

ध्वन्यालोककार ने प्रतीयमानार्थ या व्यंग्यार्थ व ज्ञान भेद माने हैं— वस्तु रूप अलङ्काररूप तथा रसादिरूप । इनमें से वस्तु, व्यंग्य तथा अलङ्कार व्यंग्य मात्र में ही व्यवहृत होने के कारण लौकिक कहे गये हैं । विधि आदि के द्वारा निषेध आदि रूप व्यंग्य वाच्यत्वेन भी कहा जा सकता है । इसी प्रकार उपमा-स्वभावोक्ति इत्यादि अलङ्कार भी इवादि सादृश्यवाचक शब्दों द्वारा काव्य में उपात्त हो सकते हैं परन्तु रसादिरूप अथ स्वप्न में भी वाच्यत्वेन अभिहित नहीं होता । उसकी प्रतीति केवल व्यजना व्यापार से और केवल काव्य नाट्यादि कला में वृत्तियाँ में ही होनी है । अतएव उसे अलौकिक कहा गया है । वस्तु एव अलङ्कार रूप अर्थों का तो पयवसान रम में होता है, लेकिन रस रूप अर्थ का पयवसान कहीं अत्र नहीं होता । वह स्वपर्यवसायी है । काव्यास्त्यात्मा स एवार्थ । म उस 'एवार्थ' का अर्थ 'रसादिरूप अथ' करके ध्वनिकार ने काव्य में उसकी प्रधानता स्वीकार की है ।

वस्तुतः सारा ध्वनि-सिद्धान्त व्यंग्यार्थ एव व्यजना वृत्ति पर आधारित है । व्यंग्यार्थ की प्रतीति व्यजना व्यापार से होती है । ध्वनिकार ने व्यजना का एक विलक्षण, तथा अभिधा-तात्पर्य लक्षणा तीनों व्यापारों से आगे चतुर्थ-कानिवेशी व्यापार माना है । अस्तु ।

ध्वनिकाव्य के भेद—

'ध्वनि सम्प्रदाय' में व्यंग्यार्थ की प्रधानता तथा अप्रधानता के आधार पर ही काव्य का भेद किया गया है । ध्वनिकार ने काव्य के दो भेद किये हैं—

(१) ध्वनि और (२) गुणीभूतव्यंग्य ।

१ पत्तन प्रत्यभिज्ञेयो तौ-शब्दायो महाकवे ॥ ध्व०

२ ध्व०, पृ० ६४

जहाँ वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य अर्थ की प्रधानता होती है वह 'ध्वनि-काव्य' कहलाता है<sup>१</sup> तथा जहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की अधिक चारुता होती है— 'बह गुणीभूतव्यंग्य' नामक काव्य कहलाता है।<sup>२</sup> 'आनन्दवधन न गुणाभूतव्यंग्य' को 'ध्वनि निष्यन्द रूप' तथा परमरमणाय कहा है<sup>३</sup> क्योंकि पयवसाया रसभावादि की दृष्टि में वह ध्वनि काव्य की कोटि में आ जायेगा।<sup>४</sup>

आनन्दवधन व अनुसार ये ही दो रचनाएँ काव्य हैं शेष व्यंग्य म रहित काव्य रचनाएँ काव्य नहीं काव्य का चित्र अथवा चित्रकाव्य हैं। क्योंकि उनमें व्यंग्य नास्तिक्क्य होता है। उनमें वाच्य-वाचक का ही चमत्कार रत्ता है। ध्वनिवार इस प्रकार के काव्य का वाध्यानुवृत्ति मात्र कहते हैं—

न तामुस्य काव्यम् । काध्यानुवृत्तौ ह्यसौ । ध्व०, पृ० ४६५

आचार्य मम्मट न काव्य का तान काटियाँ मानी हैं। वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य व प्रधान रहन पर उत्तम वाच्य<sup>५</sup> दोनों के समप्रधान अथवा व्यंग्य से वाच्य क अधिक चमत्कारकारो हाने पर मध्यम काव्य,<sup>६</sup> तथा व्यंग्य में वाच्य का अभाव हाने पर या अस्फुटतया प्रतीति होने पर 'अवरकाव्य' या अधम काव्य' कहा है।<sup>७</sup>

१ यत्रायौ शब्दो वा तमयमुपसर्गनीहृत्स्वार्थौ ।

ध्यङ्क्त काव्यविशेष स ध्वनिरिति सूरिभि कथित ॥ १।१३

२ प्रकारोऽय गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्यस्य दशमते । यत्र व्यङ्ग्यान्वये वाच्यचातुर्ये स्यात्प्रकथयत् ॥ ध्व० ३।३४ ॥

३ तदय ध्वनि निष्यन्दरूपो द्वितीयोऽपि महाकविबिषयोऽतिरमणीया तस्यणोय सहृदय ॥ ध्व० ३।४०

४ प्रकारोऽय गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिरूपताम् । घत्तेरसादितात्पर्यालोचनया पुन ।  
—ध्व० ३।४०

गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि काव्यप्रकारो रसभावादि तात्पर्यालोचने पुनध्वनिरेव सम्पद्यते ॥  
—ध्व० ३।४०

५ प्रधानगुणभावान्या ध्यायत्पव व्यदस्थिते ।

काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते ॥ ध्व० ३।४१

६ इदमुत्तममतिशयिनि ध्याये वाच्याद् ध्वनिबु ध कथित ॥ का० प्र० १।४

७ अतादगि गुणीभूतव्यङ्ग्य व्यङ्ग्ये तु मध्यमम् ॥ का० प्र० पृ० ३१

८ शब्दचित्र वाच्यचित्रमध्यग्य त्ववर स्मृतम् ॥ का० प्र० १।५

विश्वनाथ ने कुछ ध्वनिकार का अनुसरण-सा करते हुए काय को केवल दो कोटियाँ स्वीकार की है—ध्वनि तथा गुणीभूतव्यग्य ।<sup>१</sup> इनके अतिरिक्त चित्र काव्य की गणना व काव्यकोटि के अन्तर्गत करते ही नहीं ।

पण्डितराज जगन्नाथ काव्य के चार भेद मानते हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अवर ।<sup>२</sup> उनका उत्तमात्तम काय 'ध्वनि काय' है—'अमुमेव च प्रभेद ध्वनि-मामन्त्रि' जहा व्यग्य अप्रधान रूप से स्थित रहता हुआ चमत्कार का हेतु होता है, वह 'उत्तम काव्य' है ।<sup>३</sup> इसमें व्यग्य की स्थिति न सन्दिग्ध प्रधान होती है, और न तुल्य प्रधान । यह मम्मट सम्मत गुणीभूतव्यग्य काय से समता रखते हुए भी, उसमें भिन्न है । क्योंकि मम्मट वहाँ सन्दिग्ध-प्रधानता तथा तुल्य-प्रधानता दोनों स्थितियाँ मानते हैं ।

जहाँ व्यग्य का चमत्कार वाच्य के चमत्कार के समानाधिकरण हो, वह मध्यम काय है ।<sup>४</sup> यह भी मम्मट के गुणाभूत व्यग्य काय के अन्तर्गत आयेगा ।<sup>५</sup>

जहाँ शब्द का चमत्कार प्रधान हो, और अर्थ का चमत्कार उमका उपस्वारक हो वह अधम काव्य कहलाता है ।<sup>६</sup>

अथ आचार्य हमचन्द्र,<sup>७</sup> अण्यदाक्षित, प्रभृति मम्मट के अनुसार ही काव्य को तीन कोटियाँ स्वीकार करते हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम ।

### ध्वनि भेद—

ध्वनिकार न ध्वनि के भेदों का निरूपण दो प्रकार से किया है—व्यग्य रूपेण, व्यञ्जक रूपेण । ध्वनि के लक्षण में व्यञ्जक शब्द व्यञ्जक अर्थ दोनों का महत्व है, व्यग्यमुखेन तथा व्यञ्जकमुखेन भेद निरूपण करना मानो ध्वनि-काव्य का ही भेद निरूपण करना है जिसका वणन पहले किया जा चुका है ।

- १ काव्य ध्वनिगुणीभूतव्यग्य चेति द्विधामतम् । सा० २० ४।१
- २ उत्तमोत्तमोत्तमा मध्यमाधमभेदाच्चतुर्धा । रस० ग०, पृ० ३३
- ३ यत्र व्यग्यप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद्वितीयम् । रस० ग०, पृ० १७
- ४ यत्र व्यग्यचमत्कारसमानाधिकरण वाच्यचमत्कारस्तत्तृतीयम् । रसगंगाधर, पृ० १६
- ५ काव्य प्रकाश, पृ० ३१
- ६ यत्रायचमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिप्रधान तदधर्मं चतुर्थम् । पृ० १६
- ७ व्यग्यस्यप्रधान्ये काव्यमुत्तमम् । काव्यानु० २।५६
- असत्सन्दिग्धतुल्यप्राधान्ये मध्यम त्रया । काव्यानु० २।५७
- अव्यग्यमवरम् । काव्यानु० २।५८

हा, ता ध्वनि क सवप्रथम दो भेद हैं—'अविवक्षित वाच्य' तथा 'विवक्षित-  
तापरवाच्य' ।<sup>१</sup> अविवक्षितवाच्य ध्वनि वह है जहाँ वाच्यार्थ सवया अनुपयुक्त  
(अविवक्षित) अथवा अन्वयायोग्य रहता है । इसे 'लक्षणा' मूल ध्वनि भी कहते हैं ।  
लक्षणा क दो भेद—'उपादान तथा लक्षणलक्षणा' के आधार पर अविवक्षितवाच्य  
के दोना भेद हान हैं —अर्थात्सन्नमितवाच्य (इसक अन्तगत उपादान लक्षणा आना  
है) तथा 'अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य (इसके अन्तगत लक्षण लक्षणा जाती है<sup>२</sup>) ।

अर्थात्तर सन्नमितवाच्य उस कहत हैं—जहाँ वाच्य अर्थ का सीधा सम्बन्ध,  
वाच्यतावच्छेदक रूप स अवयव न बनन क कारण, शब्द अपने सामान्य अर्थ का त्याग  
कर स्वसम्बद्ध किसा विशिष्ट अर्थ को वाधित कराता है । जैसे—

स्निग्धश्यामलकारितलिप्तवियतोवेत्सद्वलाका धना  
धाता शीकरिणा पयोदसुहृदामाननदक्केका कला ।  
काम सन्तु वृद्ध कठोरहृदयो रामोऽस्मि सव सहे  
यदेही तु कथ भविष्यति हृष्टा हा देवी धीरा भव ॥

यहा रामोऽस्मि स 'राम' शब्द का वाच्यार्थ अनुपपन्न होकर, राज्यनिवासन  
पितृमरणदि असम्बन्ध दु खो का चैनन वाना (राम) रूप अर्थ स परिणत हो  
जाता है ।

अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य उस कहत हैं—जहाँ वाच्य अर्थ अनुपपद्यमान हान स  
अत्यन्त तिरस्कृत हा जाता है ।<sup>३</sup> जैसे—

रवि सक्तात्सोभाग्यस्तुपारारत्रतभण्डल ।

नि श्वासाथ इवादाशश्चन्द्रमान प्रकाशति ॥

यहाँ अथ तथा आन्श दोना मे (अधत्व रूप) एक धमिवोधस्त्व रूप  
अवयव की सिद्धि न होने स 'अध' शब्द के वाच्यार्थ (रहितहोन) का सवथा (अत्यन्त)  
तिरस्कार कर दिया गया ।

विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि उसे कहते हैं जिसम वाच्य विवक्षित (वाच्य-  
वाचक छेत्क रूप स अथवा अन्वयायोग्य) हाता हुआ भी व्यग्यनिष्ठ हाता है । इस

१ अस्तिध्वनि स च अविवक्षितवाच्यो विवक्षिततान्यपरवाच्यश्चेति द्विविध  
सामान्येन । ध्व० १।

२ अर्थात्तर सन्नमितत्यन्त वा तिरस्कृतम् ।

अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनर्थाच्च द्विधामतम् । ध्व० २।११

३ क्वचिदनुपपद्यमानतया अत्यन्त तिरस्कृतम् । वा० प्र०, पृ० ६०

अभिधामूलक ध्वनि भा कहते हैं। इसका विभाजन व्यंग्य की अवस्था एवं स्वरूप के अनुसार किया गया है यह दो प्रकार का है—(१) असलक्ष्यक्रमव्यंग्य तथा (२) सलक्ष्यक्रमव्यंग्य ।

‘असलक्ष्यक्रम ध्वनि क जास्वरूप अथवा अङ्गारूप स स्थित रसादि होने हैं । यहाँ यह शक होती है कि, ‘रसादि रूप व्यंग्य अर्थ की प्रतीति विभावादिक वाच्य अर्थ के अनन्तर ही हाती है । अतएव-वाच्य और व्यंग्य मे क्रम ता रहता है फिर उसे असलक्ष्यक्रम क्यों कहते हैं ?’

समाधान यह है कि वाच्य स व्यंग्य की प्रतीति म क्रम ता रहता है किन्तु अतिशीघ्रता के कारण ‘शतपत्रपत्रभेदन’याय स वह लक्षित नहीं होता । जिस प्रकार सौ कमल के पत्तों को एक साथ रख कर उनमे सुई चुभाई जायें, ता भेदन ता क्रम स हागा, परन्तु ऐसा प्रतीत होगा कि वह एक साथ ही पत्ता क पार चली गयी । उमी प्रकार वाच्य से व्यंग्य की प्रतीति म क्रम अवश्य रहता है, परन्तु अतिलाघवात् उसका पता नहीं चलता ।

‘असलक्ष्यक्रमव्यंग्य का केवल एक भेद रसादि है । किन्तु रसादि म आय जादि शब्द से रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावप्रशम, भावादय, भावसिध तथा भावशकलता का ग्रहण होता है ।<sup>१</sup> इनकी स्थिति अङ्गीरूपण हान पर हा य ध्वनिकाय के अतगत आयेंगे । यदि य अङ्गरूप से जायेग तो वह गुणीभूत-यग्य काव्य कहलायेंगा । जब व्यभिचारी भावा की प्रधानत चवणा अथवा व्यजना हागी, तत्र उस भाव ध्वनि काव्य कहत हैं । परन्तु विभाव तथा अनुभाव म चमत्कार होन पर भी उह विभाव ध्वनि तथा अनुभाव ध्वनि नहीं कहन-क्याकि य सदैव वाच्यरूप हा हात हैं । रस क व्यंग्य हान पर य वाच्य स्थानीय हाते हैं । इनका स्थिति व्यंग्य रूप मे नहीं हाता ।

रसध्वनि—

‘विभावानुभाव तथा सचारीभावा के उचित सन्निवेश स व्यक्त रसादि स्थायी भाव की चवणा स प्रयुक्त आस्वाद प्रवप को रस कहा जाता है ।<sup>३</sup> लोचनकार न

१ असलक्ष्यक्रमोद्योते क्रमेण द्योतित पर ।

विवक्षिताभिधेयस्य ध्वनेरात्माद्विद्य मत ॥ ध्व० २।२

२ रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रम ।

ध्वनेरात्माङ्गीभावेन भासमानो ध्यवस्थित ॥ ध्व० २।३

३ रसध्वनिस्तु स एव योज्य मुख्यतया विभावानुभावव्यभिचारिसंयोजनोदितस्थायिप्रतिपत्तिकस्य प्रतिपत्तु स्याद्यशचवणाप्रयुक्त एवास्वाद प्रकर्ष । लोचन०, पृ० १७६

काव्य मे भाव की अपेक्षा रस का हा प्राधान्य स्वीकार किया है और इसे रस निष्पन्न रूप कहा है ।<sup>१</sup>

भावध्वनि—

जहाँ कोई व्यभिचारा भाव उद्दिक्तावस्था में पहुँचकर चमत्कारातिशय का प्रयोजक बनता है तब उम भाव ध्वनि कहते हैं<sup>२</sup>, यथा—

तिष्ठेत् शोषशान्त् प्रभावविहिता शोषं न सा कुप्यति  
स्वर्गापोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्भावाद्धमस्या मन ।  
तां हतु विपुपतियोपि न घ मे शक्ता पुरोवर्तिनी  
सा धार्यतमगोचर नयनयोपनिधि को घ विधि ।

यहाँ विप्रनम्भ शृङ्गार होते हुए भा विनक नामक व्यभिचारा भाव का अनिशय आस्वात् हान व कारण भाव व्यग्य होगा । इस प्रकार सैनास व्यभिचारा भावा का प्राधान्य अभिव्यक्ति हा पर काव्य भाव ध्वनि कहनाएगा ।

आचाम मम्मट कान्ता विषयक रति क अतिरिक्त देव मुनि नृप पुत्रादि विषया रति को तथा प्राधान्य व्यञ्जित व्यभिचाराभाव को भाव मानते हैं ।<sup>३</sup> उनक बुद्ध टाकाकारा न रति का सभा स्थायानावा का उपलक्षण मानकर, अपरिपुष्ट मन्त्री स्थायीभावा तथा दवाणि विषयक रति का अप्राप्त्यरसावस्था का उपलक्षण मान लिया है । इस प्रकार उन्होंने ऐसे सभी स्थायानाव जा कि अपरिपुष्टता व कारण रसावस्था को नहा प्राप्त हो पात भावध्वनि कहा है<sup>४</sup> जा सबथा दापयूष है । मम्मट न भक्ति स्तव तथा वाच्य रसा का भावध्वनि म हा समाहित कर लिया है ।

१ रसध्वनेरभीभावध्वनिप्रभतयो निष्पन्ना आस्वादे प्रधाने प्रयोजकमेवमश विभज्य पृषय ध्यवस्थाप्यते । सोचन०, पृ० १७६

२ यदा कश्चिदुद्दिक्तावस्था प्रतिपन्नो व्यभिचारो चमत्कारातिशयप्रयोजको भवति तदा- भावध्वनि । सो० पृ० १७५ ।

३ रतिर्वैधादिविषयाव्यभिचारो तथाञ्जित भाव प्रोक्त ।

नपुत्रादि विषया कान्ताविषया तु ध्यक्ता शृङ्गार । का० प्र०, पृ० ११८

४ रत्यादिरचभिरङ्ग स्याद्देवादियमोज्यबा ।

अप्याङ्गभावभावा स्यान् तदा स्यापिशादभाक ॥ काव्यप्रदीप

रसाभास-भावाभास—

शृङ्गारादि रसा तथा भावों की अनौचित्येन प्रवृत्ति होकर आस्वाद्यमानता होने पर प्रथम रसाभास तथा भावाभास होता है ।<sup>१</sup> जैसे—

दूराक्षयणमोहमत्र इय मे तन्नाम्नि याते ध्रुति  
चेत कालकलामपि प्रकुरुत नावस्थिति तां विना ।  
एतराकुलितस्य विक्षतरतरड गरनङ्गातुरं  
सम्पद्येत कथ तदाप्तिसुखमित्येत न वेद्मि स्फुटम् ॥

प्रस्तुत पद्य में सीता के प्रति व्यक्त रावण का रति के अनौचित्य पूरा होने के कारण रसाभास माना जायेगा । इसी प्रकार रावण की सीता के प्रति व्यक्त चिन्तादि व्यभिचारी भावा को अनौचित्येन प्रतीति होने से, भावाभास का प्रसंग माना जायेगा ।<sup>२</sup>

आचार्य विश्वनाथ न शृङ्गारादि रसा के अनौचित्य का अनेक प्रकार से समझाया है । एक स्त्री का एक पुरुष के प्रति प्रेम उचित है, किन्तु यदि वह अनेक पुरुषों के प्रति होगा तो, अनुचित होगा और रसाभास की कोटि में आ जायेगा । इसी प्रकार गुरु को आलम्बन बनाकर हास्य रस का प्रयोग, वीतरागी को आलम्बन बनाकर करुण रस का प्रयोग, वीर पुरुषगत भयानक रस का वणन, चाण्डाल विषयक शातरस का प्रयोग यनीय पशु को आलम्बन बनाकर वीभरस का प्रयोग अनुचित माना गया है ।<sup>३</sup>

रस तथा रसाभास दोनों में समानरूप से आस्वाद्यमानता रहती है । जिस प्रकार अधकार में रज्जु भी सप सदृश प्रतीत होता है, उसी प्रकार रस-वचणा के सदृश ही रसाभास की भी वचणा होती है । अतएव दोनों का समानाधिकरण होने से, दोनों ध्वनि-काव्य के अतगत आते हैं ।

भावशान्ति—

जहाँ किसी व्यभिचारी रूप चित्तवृत्ति का उठते ही प्रथम हो जाये, वहाँ भावशान्ति रूप व्यग्य होता है । चित्तवृत्ति के उठने एवं नाश होने में एक क्षण

१ वही ।

२ अनौचित्येन प्रवृत्ती चित्तवृत्त रास्वाद्यस्व स्थापिष्या रसी, - व्यभिचारिण्या भावा,  
- अनौचित्येन रसाभास रावणस्यैवसीताया रतं । सोचन०, पृ० १७०

३ सा० द० ३१२६३, ६४, २६५ ।



संगना चाहिए, अर्थात् उत्पत्तिकाल म ही नाग हाना चाहिए अथवा उसमें चमत्कार नहीं आयगा। पण्डितराज जगन्नाथ न, 'उत्पत्तिकालावच्छिन्न भाव क नाग को हा सहस्रहस्तचमत्कार हान म भाव प्रथम कहा है।<sup>१</sup> क्याकि यदि उत्पन्न हाउ हा भाव का नाग न हागा तो वह उत्पन्न भाव कुछ काउ तक स्थित रह जान क कारण भाव व्यग्य का विषय बन जायगा। व्यभिचाराभाव क जतिरिक्त नाचनकार रम का भी प्रामाण्यता उहने उपयुक्त एकस्मिन् भाव स स्वाकार्त है।

एकस्मिन् शयने पराङ्गमुत्तया मोतोत्तर ताम्प्यो  
रपोन्मस्य हृदि स्थितप्यनुवय सरदातीगौरित्वम् ।  
दम्पयो शनव रपाद्भवतनामिभीभवच्च्युषो  
भनो मानकालि सहासरभसध्यावत्तकृष्टम् ॥

यही नाचनकार र्व्यागारात्मक मान का गान्धि हान म भावशान्ति व्यग्य क साथ-साथ इत्या विप्रलम्भ रस का भा प्रथम मानत है अर्थात् व रम का भा प्रथमावस्था का स्वाकार्त है।<sup>२</sup> किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ रम म प्रामाण्यवस्था का सवथा जनाव बतात हैं, क्याकि रम स्यापिभावमूत्रक हाना है। अत यदि स्याया म भा उत्पन्न प्रथमादि स्थितिया माना जान संगना तो उसका स्थायित्व हा समाप्त हो जायगा। साथ हा स्यायी और व्यभिचारा म कुछ मा नै न रह जायगा। दूसरा बात यह कि यदि स्याया का य अवस्थापर स्वाकार भा कर ता जाए तो उसम कुछ भा चमत्कार नहीं आता अतएव रमगगाधकार न रम का प्रथमावस्था का विचार नहीं किया।<sup>३</sup>

भावोदय —

यही उदयावस्था म हा किना व्यभिचारा भाव का चवणा हाता है वही भावोदय व्यग्य माना जाता है। इसम मारा चमत्कार भाव का उत्पत्तिकाल म हा हाता है। भाव का अधिक समय तक ठहरना नहीं चाहिए।

याते गोत्रविषये धृतिपय शय्यामनुप्राप्तया  
निर्घ्यानि परिवर्तन पुनरपि प्रार घुमद्गौहृतम् ।

१ भावस्य प्रागुत्पन्नस्य शान्तिर्नाश । स च उत्पत्त्यवच्छिन्न एव घ्राह्य तस्यव सहस्रहस्तचमत्कारित्वान् । रस० ग०, पृष्ठ १०२ ।

२ अत्र र्व्याविप्रलम्भस्य रसस्यापि प्रथम इतिराश्य योजयितुम् । सोचन० । ७६

३ रसस्य तु स्यापिमूलकत्वात्प्रथमादेर सम्भव सम्भवे वा न चमत्कार, इति स न विचार्यते । रस० ग०, पृ० १०६

भूयस्तत्प्रकृतं कृतं च शिथिललिप्तकद्वीलेखया ।

तन्वग्या न तु परितः स्तनभरं कृष्टं प्रियस्योरसं । लोचन, पृ० १७५ ।

यहाँ प्रथम तान पति म गोत्र-विपर्यय के कारण प्रणव-बोध की प्राधान्य व्यञ्जना हो रहा है । मानिना नायिका अपन बाप का भ्रम तक निर्वाह न कर पायी । इसानिण चतुर्थ पति में सम्भोग शृङ्गार वर्णित हुआ है । सारा चमत्कार, बोध—भावोदय द्वाने में उसी म है ।

भावसन्धि —

जहाँ दो व्यभिचारा भावा की सन्धि का चर्चणा हो, उसे भावसन्धि ध्वनि कहते हैं । सन्धि का अर्थ है तुल्यकाटिता । काव्यप्रकाश के टोराकारा न दो भाव, चाहे वे विराधी हो अथवा अविराधी, उनकी तुल्यरूपता तथा ममबाल म आस्वाद को ही भावसन्धि कहा है ।<sup>१</sup> यथा—

उत्सितस्य तप पराक्रमनिधेरम्यागभावत  
सत्सगप्रियता च धीररभसौत्फालरच मां कथत ।  
यदेही परिरम्भ एष च मुहुश्चतयमामेतय  
तानदी हरिचदनन्दुसिसिर सिग्धो ऋणह्यन्यत ॥

यहाँ सीता-आनिगन के सिग उद्यत राम का, परशुराम के आकस्मिक आग-मन पर यह उक्ति है । इसमें हृष, आवेग, भावो की सन्धि का वर्णन है ।

पण्डितराज जगन्नाथ वस्तुतः अभिभूत न होने वाले, किन्तु एक-दूसरे को अभिभूत करने की क्षमता रखने वाले दो भावा के समानाधिकारण्य को, भाव सन्धि मानते हैं ।<sup>२</sup>

भाव शबलता —

लोचनकार अनेक सचारिया की द्वन्द्वश अभियक्ति को भावशबलता मानते हैं ।<sup>३</sup> किन्तु यहाँ भावा का 'द्वन्द्वश प्रतीत' कहने में—किम भाव म अधिक चमत्कार

१ क्वचित्तु व्यभिचारिण सन्धिरेव चवणास्पदम् । लोचन०, पृष्ठ १७६

२ समकालमेव विद्वदोरपि, तुल्य पयोरास्वादो च । बाल बोध, पृष्ठ १२४

३ भावसन्धिरयोन्यामभिभूतयोरग्योन्याभिभावनयोग्ययो सामानाधिकार्यम् ।

४ अत्र हि वितर्कैस्तुक्ये मतिस्मरणे शङ्कादेन्ये क्षुतिचिन्तने परस्परं बाध्यबाधकभावेन द्वन्द्वशो भवती । पर्यन्ते तु चिन्ताया एव प्रधानता ददती परमास्वादस्थानम्—

लोचन, पृष्ठ १७७

है किसमें कम—यह प्रश्न उठता है—<sup>२</sup> क्योंकि किसी एक-भाव का विशेष चमत्कार का हेतु मानन में वा भावध्वनि ही जाने का भय है । अतएव मम्मट तथा एकावली-कार आदि ध्वनिवादियों ने 'द्वन्द्व' पद को हटाकर अनक भावा का शबलता मानी है ।<sup>१</sup> काव्यप्रकाश के टाकाकारा ने इस ओर स्पष्ट करत हुए कहा है कि—'पूर्व-पूर्व भावा को उत्तरोत्तर भावा द्वारा दबा दिए जान का ही, भावशबलता ध्वनि कहते हैं । किन्तु इससे रसग गायककार सहमत नहीं हैं ।'<sup>३</sup>

श्वकार्यं शयलमणा श्व च कुत भूयोऽपि दृश्येत् सा  
दोषाणा प्रशमाय मे श्रुतमहो शोपेऽपि कात मुखम् ।  
किं शसन्त्यपकल्मषा कृतघ्निय स्वप्नेऽपि सा दुलभ,  
चेत स्वाभ्यमुपेहि क खलु युवा धन्योपरधास्यति ॥

यहाँ वितक, औत्सुक्य मनि स्मरण, शङ्का दैय धृति तथा चिन्तादि भावों का शबलता है ।

इसके अतिरिक्त मम्मट ने भावस्विति<sup>३</sup> नामक भेद भी माना है और इसको सबप्रथम उदाहृत कर दिया है । यथा—

जाने शोपशङ्गमुसो प्रियतमा स्वप्नेऽपि दृष्टा भया  
मा मा सस्पृश पाणिनेति श्रुती गन्तु प्रवृत्ता पुर ।  
नो यावत् परिरम्य चाटुशतकराशयासयामि प्रियां  
श्रातस्तावदहशठेन विधिना निद्रादरिद्रोहृत ॥

सलक्ष्यक्रम ध्वनि —

इसमें वाच्य और व्यय्य का क्रम उसा प्रकार लभित हावा रहवा है जिस प्रकार घण्टा-रणन के अनुरणन का । इसा कारण ध्वनिकार इस 'अनुस्वनमन्त्रिभ कहते हैं ।'<sup>४</sup> आचार्य मम्मट भी इस अनुस्वनामसलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य' ध्वनि कहते हैं ।'<sup>५</sup>

१ अत्र वितकी स्तुत्यमतिस्मरणशङ्काद यद्यतिचिताना शबलता  
(विधार्तिधाम — एकावली पृष्ठ १०६)

२ मत्तुकाव्यप्रकाशटीकार 'उत्तरोत्तरेण भावेन पूर्वपूर्वभावोपमद शबलता इत्यम्य-  
धोपत सत्र ॥ रसग०, पृष्ठ १०४

३ भावस्वितिस्तुक्ता उदाहृता च ॥ का० प्र०, पृष्ठ १४५

४ इमेण प्रतिमात्या मा योऽस्यानुस्वानसन्निभ ।

शब्दापशक्तिमूलत्वात्सोऽपि द्वधा व्यवस्थित ॥ ध्व० २।२०

५ अनुस्वानामसलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य स्वितिस्तु य ।

शब्दार्योपपशक्त्युत्पत्तिप्रथा स कथितौ ध्वनि ॥ का० प्र०, ४।३७

आनन्दबधन इसके दो भेद मानते हैं—(१) शब्दशक्तिमूलक तथा (२) अर्थशक्ति-मूलक ध्वनि । किन्तु मम्मट तथा रसगङ्गाधरकार 'शब्दार्थोभयशक्तिमूल' नामक वृत्तीय भेद भी मानते हैं ।

शब्दशक्तिमूल तथा अर्थशक्तिमूल ध्वनियों में क्रम से शाब्दी 'व्यजना तथा आर्थी व्यजना चमत्कारकारिणी होती है जो क्रम से शब्दपर्यायसह तथा शब्द-पर्यायसह होती है । जहाँ किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख देने पर, व्यङ्ग्य अर्थ अथवा काव्य-सौन्दर्य नष्ट नहीं होता, वही अर्थशक्तिमूलध्वनि तथा जहाँ पर्याय रख देने पर काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है—वही शब्दशक्तिमूल ध्वनि मानी जाती है ।

शब्दशक्तिमूल ध्वनि के व्यङ्ग्य के दो भेद हैं—वस्तु तथा अलङ्कार । आनन्दबधन शब्दशक्तिमूल ध्वनि के अन्तर्गत कवय अलङ्कार व्यङ्ग्य ही मानते हैं, वस्तु व्यङ्ग्य नहीं । उनके अनुसार जहाँ वस्तु द्वय का प्रकाशन होता है—वहाँ सर्वत्र शब्द श्लेष ही होता है ।

आचार्य आनन्दबधन के बहने का अभिप्राय यह है कि शब्दशक्तिमूलक अल-ङ्कार ध्वनि में तो न केवल वस्तु अपितु अलङ्कार भी प्रकाशित होता है किन्तु श्लेष में बम्बतरमान प्रकाशित होता है । 'यन्ध्वस्त मनोमवन' में श्लेष इसा कारण है कि यहाँ दूसरा प्रकाशमान अर्थ केवल वस्तु रूप है । हाँ यदि इसके साथ अलङ्कार भी होता तो फिर यही ध्वनि का उदाहरण बन जाता ।

आचार्य मम्मट वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य की सत्ता को मानते हैं । वे शब्दशक्तिमूलक में दो भिन्न शब्दा का श्लेषता स्वीकार करते हैं ।<sup>१</sup> 'वाच्यभेदेन शब्दभेद' बाने सिद्धांत के पापक होने के कारण उनके अनुसार प्रकरणादि के अभाव में अभिधा का नियमन न हो सकने के कारण श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं, जबकि शब्दशक्तिमूल ध्वनि में प्रकरणादिवशात् अभिधा के नियमन के कारण, दूसरा अर्थ व्यङ्ग्य ही होता है वह व्यङ्ग्य वस्तुरूप होता है । अतः इस वस्तुरूप व्यङ्ग्यता के कारण वस्तु ध्वनि मानने में कोई हानि नहीं है । इसका श्लेष से कोई विरोध नहीं है क्योंकि श्लेष में तो

<sup>१</sup> यस्मादलङ्कारो न वस्तुमात्र परिभन क्वाये शब्दशक्त्या प्रकाशते स शब्दशक्त्युद्-  
भयो ध्वनिरित्यस्माक विवक्षितम् । वस्तु द्वये च शब्दशक्त्या प्रकाशमाने श्लेष ।  
ध्व० २५१ ।

<sup>२</sup> वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशा । ।  
श्लेष्यति शब्दा श्लेषो सावक्षरादिभिरप्यथा ॥ का० प्र० ६।११६ ॥

दूसरा वस्तुस्य अथ वाच्य हा हाता है। आचार्य आनन्दधन अभिधा क नियन्त्रण के विषय में मोन हैं। उनक द्वारा वस्तु में वस्तु भ्यग्य का स्वाकार न करन का कारण सम्भवतः पूर्व आनन्दकारिका का प्रभाव हा रहा होगा। और जहाँ एक अथ का अभिधा द्वारा नियमन हा जान पर दूसरा अथ व्यञ्जित हाता है—वह वस्तु ध्वनि वाच्य कहनाता है।

अपगतिसून ध्वनि उम कहत हैं जहाँ वाच्य अथ क सामर्थ्य से अथ वस्तु तथा अनङ्कार भ्यग्य हो। व्यञ्जक अथ का दृष्टि में इनक दा भू है—  
(१) कवि प्रीतिमात्रनिष्पन्न शरण<sup>१</sup> अथवा कवि-निबद्ध वृत् प्रीतिनिष्पन्न शरण  
(२) स्वतः सम्भवा।<sup>२</sup>

- अभिनव गुप्त तथा आचार्य मम्मट न इसक तीन भेद मान हैं—(१) स्वतः सम्भवा (२) कविप्रीतिनिष्पन्न तथा (३) कविनिबद्धवृत्प्रीतिनिष्पन्न। पुन इन तीना क वस्तु तथा अनङ्कार दा नू हाकर  $3 \times 2 = 6$  भेद ही जात हैं। य छ भेद वस्तु एवं अनङ्कार एवं क व्यञ्जक हात में ध्वनि क  $\times 2 = 12$  भेद हा जात हैं। परन्तु ध्वनिकार, कवि प्रीति तथा कविनिबद्धवृत् प्रीति का एक हा मानन क कारण, जाठ हा भेद मानत हैं। शक्तिसून ध्वनि क भा पन वाच्य प्रबन्ध से प्रकाश्य हात क कारण कवल तात भू हूण, अपगतिसून के यहाँ जाठ भेद पद वाच्य तथा प्रबन्धगत हात में  $6 \times 3 = 18 + 3 = 21$  नू हूण। अल्पप्रक्रम ध्वनि के वष पन्ति वाच्य सङ्घटना तथा प्रबन्ध में प्रकाशित होने क कारण पाँच नू  $3 + 5 = 8$  भेद हूण। अविवाहितवाच्य ध्वनि क शोनों भेद पन तथा वाच्य से प्रकाशित होने में चार भेद हूण। इस प्रकार शुद्ध ध्वनि क कुल  $30 + 4 = 34$  भेद हूण। किन्तु नोचनकार न शुद्ध ध्वनि क केवल पँतीम भेद स्वीकार किए हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार ध्वनि भेद—

मम्मट न शुद्ध ध्वनि के इक्यावन भेद मान हैं<sup>३</sup> और इस प्रकार नोचनकार से मम्मट न १६ भेद अधिक बनाए हैं। अविवाहित वाच्य क नू में ता आनन्दधन,

१ प्रीतिनिष्पन्ननिष्पन्नशरणीर सम्भवोत्थत ।

अथोऽपि द्विविधो ज्ञेयो वस्तुनोन्यस्य शेषक । ध्व०, २।२४

२ स्वतः सम्भवा का अर्थ है कवि की अपनी प्रतिमा की उपर किन्तु बाह्य जगत् में भी जो सम्भव रहता है—स्वतः सम्भवा न केवल भणतिमात्रनिष्पन्नोत्पत्ति हिरेण्यौचित्येन सम्भाव्यमानो । का० प्र०, पृष्ठ १३५

३ भेदास्तदेकपचासात्—का० प्र० १८५

अभिनवगुप्त तथा मम्मट म समानता है, अन्तर केवल विवक्षितान्य पर वाच्य के भेदो मे है। मम्मट ने असलक्ष्यक्रम। व्यंग्य के छ भेद मान हैं—पद, वाक्य, पदकदेश, रचना, वण तथा प्रबन्ध। जब कि लोचनकार पदैकदेश को पृथक् न मानकर केवल पाँच भेद ही मानते हैं। मम्मट ने शब्द शक्ति मूल मे वस्तुव्यंग्यता मानी है, तथा उसके भी पदप्रकाश्य एव वाक्यप्रकाश्य होने मे दो भेद अधिः स्वीकार किय है। इस प्रकार आनन्दवधन तथा लोचनकार की अपेक्षा मम्मट व शब्द शक्ति मूल मे दो भेद अधिक हुए। अथ शक्ति मूल म पदप्रकाश्यता तथा वाक्यप्रकाश्यता के अतिरिक्त प्रबन्धप्रकाश्यता को मानकर मम्मट ने बारह भेदो की वृद्धि की। 'अथशक्तिमूल-मलक्ष्यक्रमव्यंग्य' के प्रति 'शब्दार्थोभयशक्तिमूल' नामक एक नया भेद<sup>१</sup> मानकर एक भेद की और वृद्धि की। इस प्रकार मम्मट ने लोचनकार से सोलह भेद अधिक मान कर ध्वनि के ५१ भेदो का निरूपण किया।

गुणीभूत व्यंग्य काव्य तथा व्यंग्यतत्त्व से युक्त अलंकार—

आनन्दवधन ने व्यंग्य तथा वाच्य का समप्राधाय होने पर तथा व्यंग्या-पेक्षया वाच्य के अधिक चमत्कारी होने पर गुणीभूत व्यंग्यकाव्य माना है। हमके अतगत उन अलङ्कारो की भी गणना का गया है जिनमे व्यंग्य अथ की यत्किञ्चित् चारुता होती है। परन्तु वह चारुता वाच्य अथ का हो अनुगमन करता हुआ, उस (वाच्य अथ का) ही उदृष्ट तथा चमत्कृत करता है। कही पर वाच्य एव व्यंग्य की तुल्य प्रधानता होती है। पूर्वपक्षियों ने कुछ ऐसे अलङ्कारो की चर्चा की है, जिसमे व्यंग्याथ प्रधान रूपण स्थित रहता है। आनन्दवधन इस प्रकार के अलङ्कारो को ध्वनि काव्य मे समाहित कर लेते हैं। ध्वनिकार ने पूर्वपक्षियों को यह स्पष्ट उत्तर दिया है, कि इन अलङ्कारो म कही स्थित ध्वनि को ही ध्वनि-वाच्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ध्वनि का विषय बहुत विस्तृत है। ध्वनि का क्षेत्र विशाल है और इन अलंकारो म प्राप्त ध्वनि उसका केवल अंश अथवा एक प्रकार मात्र हा सकती है। ये अलंकार समासोक्ति, आक्षेप, अनुक्तनिमित्ता विशारक्ति, दापक, अपह्नुति,

१ शब्दार्थोभयमूरेक — काव्यप्रकाश १४६

आचार्य मम्मट को शब्दार्थो भय शक्तिमूल ध्वनि को मानने की प्रेरणा ध्वन्यालोक के इस वाक्य से मिली—

शब्दशक्त्या अथशक्त्या शब्दाथशक्त्या वाक्षिप्रोऽपि ध्याद्योऽथ कविना पुन यत्र स्वोक्त्या प्रकाशोत्क्रियते । ध्वन्यालोक २५१

पर्यायोक्त, संक्षुद्र इत्यादि हैं। इन सभी अर्थकारा पर बिनाश भ्रामोसा कर उनकी ध्वनिता का निरकरण कर, उन्हें गुणीभूतव्यग्य-वाच्य व अन्तगत रखा। इस अमन्कारों का समग्र दृष्टि में विवेचन करने व पश्चात् आत्मवचन में निष्कर्षित चार प्रकार के स्थल स्वीकार किए हैं—जहाँ पर व्यग्य का अर्थ हान पर भी ध्वनि का व्यवहार नहीं होता।<sup>१</sup>

(१) जहाँ व्यग्य का अप्राधाय है और वह वाच्य मात्र का अनुगमन करता है। जैसे—समाश्रयित, प्रस्तुतप्रतिपादि।

(२) जहाँ व्यग्य का आभास मात्र स्फुट रूपण प्रतीति है। जैसे उग्रमादि।

(३) जहाँ वाच्य तथा व्यग्य का समप्राधाय हो। जैसे—सहस्र कर।

(४) जहाँ व्यग्य का प्राधाय स्फुटरूपण प्रतीति न है।

इस प्रकार गुणीभूत व्यग्य वाच्य का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। मम्मट के अनुसार गुणीभूत व्यग्य व आठ भेद हैं—जा इस प्रकार हैं—अगूढव्यग्य, दूसरे का अङ्गभूत व्यग्य, वाच्यसिद्धव्यग्य अस्फुट सन्निध्यप्राधाय तुयप्राधाय, कावचित्त तथा अमुदरव्यग्य।<sup>२</sup>

(१) अगूढव्यग्य—जहाँ व्यग्य का प्रतीति सहस्र्य में भिन्न सामान्य व्यक्ति का अनायास ही हो जाता है वह जत्यन्त स्पष्ट हान से वाच्य अर्थ के समान ही हो जाता है। इसलिए अगूढ व्यग्य का प्रधानता न हान से उसका गुणीभूत व्यग्य माना जाता है। इस प्रकार त्रिम व्यग्य का प्रतीति सहस्र्या का भा सरलता में न हो सक वहाँ भा व्यग्य का चमत्कार न हान से उग्र अस्फुट या अगूढव्यग्य का भा गुणीभूत व्यग्य माना जाता है।

(२) अपरान्तरूप गुणीभूतव्यग्य—जहाँ वाच्य का तात्पर्यविषयभूत प्रधान अर्थ जय रगति या वाचादि अर्थ हो और प्रस्तुत व्यग्य (रसादि अथवा वस्तु अनङ्कारादि रूप) उसका अङ्ग हो, उसका अन्तराङ्गव्यग्य रूप गुणभूतव्यग्य कहा जाता है।

१ व्यग्यस्य यत्राप्राधाय वाच्यमात्रानुपायिन समस्तोविषयादयस्तत्र वाच्यातड कृतय स्फुटा। व्यग्यस्य प्रतिभामात्रं वाच्यापानुगमेपि वा। न ध्वनियत्र वा तस्य प्राधाय तु प्रतीयते। ध्वन्यपतोत्र पृष्ठ १५

२ अगूढमपरस्याङ्ग वाच्यसिद्धयङ्गमस्फुटम्।  
सन्निध्यतुल्यप्राधायै कावचित्तमित्तममुदरम् ॥

व्यग्यमेव गुणीभूतव्यग्यस्याष्टौ भिदा स्मृताः ॥

वाच्यप्रकाशा पृष्ठ १६६

इस प्रकार के आठ स्थल मम्मट ने माने हैं—जहाँ रस भाव का अङ्ग बनता है, कहीं भाव दूसरे भाव का अङ्ग बनता है, कहीं शृङ्गाराभास, भावाभास किसी भाव का अङ्ग, कहीं भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, भावसन्धि इत्यादि भाव का अङ्ग बनता है। इसी प्रकार जहाँ सलक्ष्यक्रम व्यंग्य अलङ्कार व्यंग्य तथा वस्तु व्यंग्य वाच्य का अङ्ग बनता है वहाँ भी मम्मट अपराङ्गव्यंग्यता स्वीकार करते हैं। आचार्य आनन्दवधन भी ऐसे स्थलों में गुणीभूत व्यंग्यता ही स्वीकार करते हैं।

(३) वाच्यसिद्धयङ्गव्यंग्य—जहाँ वाच्य सापेक्ष होता है और उसे अपनी सिद्धि के लिए दूसरे अर्थ (व्यंग्यार्थ) की अपेक्षा रहती है, वहाँ व्यंग्याय वाच्यार्थ की सिद्धि का अङ्ग बनने के कारण गुणीभूततया गौण हो जाता है। वाच्याङ्ग-व्यंग्य (अपराङ्ग) तथा वाच्यसिद्धयङ्गव्यंग्य में वस्तुतः यही भेद है। वाच्याङ्गव्यंग्य में वाच्य निरपेक्ष होता है अर्थात् उसे अपना सिद्धि के लिए किसी अन्य अर्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती और वाच्यसिद्धयङ्गव्यंग्य सापेक्ष होता है और उसे अर्थ अर्थ की आवश्यकता पड़ती है।

(४) अस्फुटव्यंग्य—जहाँ व्यंग्यार्थ को समझने में सहृदयता की प्रयास करना पड़ता है, वहाँ अस्फुट व्यंग्य होता है।

(५) सन्दिग्ध प्राधान्य—जहाँ वाच्य और व्यंग्य के प्राधान्यप्राधान्य की स्थिति सन्दिग्ध होती है, वहाँ सन्दिग्धप्राधान्यव्यंग्य होता है।

(६) काववाक्षिप्त—ध्वनिकार ने जहाँ काकु के द्वारा अर्थात्तर की प्राप्ति होने पर व्यंग्य का गुणीभाव रहे, वहाँ गुणीभूतव्यंग्य का विषय माना है।<sup>१</sup> इस परिभाषा से यह अर्थ भी निकाला जा सकता है, कि काकु के स्थल में नदाक्षित व्यंग्य का गुणीभूत न होकर प्राधान्य भी हो सकता है, किन्तु लोचनकार काकु ने प्रयाग में सबत्र व्यंग्य का गुणीभाव ही मानते हैं। उनके अनुसार उसका प्राधान्य कदापि नहीं हो सकता।<sup>२</sup> आचार्य मम्मट भी काकु की सहायता से निकलने वाले प्रधान व्यंग्य के स्थल में ध्वनि तथा अप्रधान व्यंग्य के स्थल में काववाक्षिप्तगुणीभूत व्यंग्य का व्यवहार करते हैं।<sup>३</sup>

१ अर्थात्तरगति काववा या चया परिदृश्यते ।

सा व्यंग्यस्य गुणीभावे प्रकारमिममाधिता ॥ १-१ ध्वन्यालोक ३।३८

२ काकुयोजनाया सेवजगुणीभूतव्यंग्यतेव ॥ ३ लोचनप्रकाश ४८०

३ जले मग्नामि कौरवशत समरे न कोपाद्  
दृशासनस्य दधिर न पिदास्युरस्त ॥

सन्नर्णयोमि गदया न सुयोधनोरु ॥

सन्धि करोतु भवता नृपति यणेन ॥



इसके अतिरिक्त जहाँ वाच्यार्थ के पयवसित हो जाने पर व्यंग्याय की प्रतीति विलम्ब से होती है, परन्तु स्वतंत्र रूप से होता है, वहाँ ध्वनि का स्थल माना जायेगा ।<sup>१</sup>

(७) तुल्यप्राधान्य—जहाँ वाच्य और व्यंग्य की समान रूप से प्रधानता होता है, वहाँ तुल्य प्राधान्य व्यंग्य होता है ।

(८) अमुदरव्यंग्य—जहाँ वाच्य में अधिक सुन्दरता हो और तदपभया व्यंग्य में कम सुन्दरता हो वहाँ अमुन्दर व्यंग्य होता है । ऐसे स्थला पर सारा चमत्कार व्यंग्य का अपना वाच्य में ही होता है ।



१ जज्ञे—'गुह्यं खेदं त्रिभो मयि भजति नाद्यापि कुदुतु' ।

यहां गुह्य जी मुझपर ही शोध करते हैं कुदुतु पर नहीं' इस वाच्यार्थ की विधायित्व हो जाने पर मयि न योग्य खेद कुदुतु तु माग्य' इस अर्थ की प्रतीति विलम्ब से किन्तु स्वतंत्र रूप से होने से ध्वनिहाय्य ही माना जायेगा । अत्र मयि न योग्य खेद कुदुतु तु योग्य इति काक्वा प्रकाशने । न ख वाच्यसिद्धयङ्गमत्र का कुरिति गुणीभूत-व्यंग्यत्व शङ्कयम् । प्रश्नमात्रेणापि काकोविशाते । वाच्यप्रकाश पृष्ठ ८१८१

## द्वितीय अध्याय

# कालिदास और संस्कृत काव्य-परम्परा

भारतीय संस्कृत वाङ्मय का आदिस्त्रोत जिस सांस्कृतिक आधाम में विकसित हुआ, उसे इतिहासकारों ने आथम्य संस्कृति की संज्ञा दी। आर्थिक प्रगति की दृष्टि से यह वृषि युग था जिसमें ग्रामीण संस्कृति विकसित हुई तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से यह राजयुग था जो कुल संस्कृत का परिचायक है। वैदिक युग के धर्म साहित्य एवं कला में सादगी उदात्ता एवं आध्यात्मिकता परिव्याप्त है। अनेक स्थलों में काव्यमयी उक्तिपथी बिखरी पड़ी हैं किन्तु विशुद्ध काव्य के विकास के लिए अभी उच्च भूमि प्रस्तुत नहीं हुई थी।

सौक्य संस्कृत साहित्य का जन्म भल ही तमसा के निजन् आथम्य में हुआ हो किन्तु उसका विकास संस्कृति के उस परिवेश में हुआ, जिसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से वृषि एवं हस्तकला युग राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्राटों का युग सामाजिक दृष्टिकोण से अनुवर्णव्यवस्था के विकास का युग एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विविध दार्शनिक धाराओं के विकास का युग कह सकते हैं। संस्कृति की इस पृष्ठभूमि में संस्कृत का जो साहित्य निर्मित हुआ—रामायण-महाभारत उसके आदि प्रतीक हैं। यह साहित्य एक ओर सम्राटों के राजकीय वैभव में तथा दूसरी ओर आश्रमा की सादगी में विकसित हुआ। वैदिक संस्कृत का यह ग्रामीण भाव संस्कृत साहित्य तक आते आते नागरिक स्वरूप में परिवर्तित हो गया। संस्कृत साहित्य जिस युग में लिखा गया उसी समय में भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ उपलब्धियों का जारम्भ होने लगता है। इसीलिए यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि 'भारतीय संस्कृति में जो सर्वश्रेष्ठ है—महा अभिव्यक्ति संस्कृति साहित्य में हुई है और संस्कृत साहित्य में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसकी अभिव्यक्ति कवि शिरोमणि कालिदास में हुई है।'

इतिहास की व्यापकता भावा की उदात्तता, विशदता, गम्भीरता तथा शिल्पविधि का आचायत्व सभी दृष्टिकोण से कालिदास संस्कृत कायकला के सुमहान मान जा सकते हैं। कालिदास को काव्य-प्रणयन की प्रेरणा किन् कविया एवं किन् काव्य-पद्धतियाँ से मिली, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक अधिक नहीं कहा जा सकता

क्योंकि कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणास्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण-महाभारत में निहित थे। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्वकर्तृ कहा जा सकता है। मास्वृतिव वातावरण, भाव भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास ने इन ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त की। कालिदास की काव्य भ ध्वनितत्व के विश्लेषण के पूर्व उनके युग, उनके व्यक्तित्व, उनकी काव्य कृतियाँ तथा रचना विधान वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल देना उपयोगी होगा।

आविर्भाव काल—

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष में हुआ—इस विषय में कुछ निश्चित रूप से कह सकना बड़ा दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ किस पारिवारिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति में उनका जीवन मापन हुआ किन सध्यों किन घात प्रविषादा ने उनके विचारों भावनाओं के निर्माण में योगदान दिया—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्या मूलक बना हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने किसी भी ग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी निर्देश नहीं दिया है।

उनके स्थितिकाल के विषय में जितने आलोचक हैं उतने ही मत उतने ही विचार हैं। महाकवि के समय का आकलन ई० की प्रथम शताब्दि से लेकर ११वीं शताब्दि तक किया जाता है। अधिकांशतः विद्वान् उनका सम्बन्ध विक्रमादित्य के काल में जोड़ते हैं। उनके युग विषय में प्रचलित सभी मतों की समीक्षा करने पर मुख्यतः दो मत समर्थ आते हैं। प्रथम मत उन्हें प्रथम शताब्दि ई० पू० घोषित करता है। इस मत के समर्थक मत्स्यी सो० बी० वैद्य, के० सा० महोपाध्याय वरदाचारी, चन्द्रशेखर पांडे प्रभृति विद्वान् हैं।

दूसरे मत के समर्थक श्री आर० डी० भण्डारकर, कीथ स्मिथ, डा० भगवत-शरण उपाध्याय, डा० भोलाशङ्कर व्यास मैकडानल तथा वामुदेव विष्णु मिराशी हैं। ये सभी विद्वान् उनको अश्वघोष के परवर्ती मानते हैं। इसका आधार प्राकृत भाषा तथा गौरी आदि हैं।

भाषा-वैज्ञानिक प्रमाण नाटकीय प्राकृत के विशेष सदम में—

कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा के व्यापक गठन प्रवृत्ति प्रत्यय विन्यास, वाक्य-संगठन तथा शब्दों के द्वारा भी कवि के आविर्भावकाल की ओर संकेत हो सकता है। कालिदास की काव्य-भाषा (नाम, प्रवृत्ति स्वभावाभासिक गठन, शब्द-

स्रोत, शली) उनके आविर्भाव काल की किस शताब्दी की ओर संकेतित करती है, गम्भीरता से अभी इसकी इस दृष्टि से परीक्षा नहीं हुई है। प्रो० कीय<sup>१</sup> और 'पश्चात्त विद्वाना तथा कुछ प्राच्य विद्वाना ने भी कालिदास में 'प्राकृत-प्रयोग के आधार पर उन्हें गुप्तकाल का सिद्ध किया है। किन्तु उससे भी अधिक हलके दृष्टि-कोण से, उस मत को यह कह कर काट दिया गया कि उनकी 'प्राकृत कृत्रिम प्राकृत' है, वैयाकरण नियमा के अनुसार कृत्रिम रूप में नाट्यकावे द्वारा निर्मित की गयी। इस प्रकार भाषा विज्ञान के सिद्धान्ता के अनुसार तथा भारतीय आपभाषा के विकास क्रम को दृष्टिगत रखते हुए गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

कालिदास का काव्यभाषा का विशेषण करने के पूर्व कुछ भाषा वैज्ञानिक सामान्य सिद्धान्ता का विवेचन अपेक्षित है। किसी विशिष्ट युग में, किसी विशिष्ट देश में, किसी विशिष्ट समाज में, किसी विशिष्ट साहित्यिक जीवित भाषा के सामान्यतया तीन रूप मिलते हैं—

- (१) सामान्य रूप
- (२) मध्यम स्तर का रूप तथा
- (३) साहित्यिक रूप

भाषा का साहित्यिक रूप उस भाषा के सामान्य तथा मध्यम स्तर के रूप का ही निम्बरा हुआ परिपक्व स्वरूप है। जब तक साहित्यिक रूप का सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग सहज रूप से समझ लेते हैं जब तक उस भाषा को समझने के लिए पाठशाला में शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती तब तक साहित्यिक भाषा को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवित भाषा कहा जाता है। जब सामान्य तथा मध्य स्तर के लोग किसी भी साहित्यिक भाषा को बिना पाठशाला में उस भाषा की शिक्षा लिए समझने में असमर्थ होत हैं तब यह कहा जाता है कि, वह साहित्यिक भाषा अब रुद्धिबद्ध होकर केवल साहित्यिकारों विद्वाना तथा वैयाकरणा का भाषा रह गई है। भाषा वैज्ञानिक रूप से ऐसी साहित्यिक भाषा का मृतप्राय कहा जाता है। जब एक भाषा सामान्य तथा मध्यमस्तर के लोगों के लिए सहज ही बोधगम्य नहीं रह जाता, तब उस सामान्य लोक के लिए मृतप्राय उस साहित्यिक भाषा के स्थान में उस युग में प्रचलित भाषा के सामान्य और मध्यम स्तर के रूप में एक नयी साहित्यिक

१ प्रो० कीय—'कालिदास के नाटकों की प्राकृत अवधारण तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निश्चय ही अर्थात् जीवित है उसे गुप्तकाल के पूर्ववर्ती नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रो० कीय, हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ ८०

क्योंकि कालिदास का युग अभी विवादास्पद है। किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रणालोच राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण-महाभारत में निहित थे। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्ववर्तु कहा जा सकता है। सांस्कृतिक वातावरण, भाव भाषा तथा रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास न इन ग्रन्थों से प्रेरणा प्राप्त वा। कालिदास की काव्य में ध्वनितत्व के विश्लेषण के पूर्व उनके युग, उनके व्यक्तित्व उनका काव्य कृतियाँ तथा रचना विधान वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल देना उपयोगी होगा।

### आविर्भाव का—

महाकवि कालिदास का आविर्भाव किस युग विशेष में हुआ—इस विषय में कुछ निश्चित रूप में कह सकना बड़ा दुष्कर है। उनका जन्म कब और कहाँ हुआ किम पारिवारिक सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियाँ में उनका जीवन यापन हुआ किन मध्यमों किन घात-प्रतिघातों ने उनके विचारों-भावनाओं के निर्माण में योगदान दिया—इत्यादि प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्यामूलक बना हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने किसी भी ग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी निर्देश नहीं दिया है।

उनके स्मितकाल के विषय में जितने आलोचक हैं उतने ही मत उतने ही विचार हैं। महाकवि के समय का आवलोकन ई० की प्रथम शताब्दि से लेकर ११वीं शताब्दि तक किया जाता है। अधिकांशतः विद्वान् उनका सम्बन्ध विजयनागपुर के काल में जोड़ते हैं। उनके युग विषय में प्रचलित सभी मतों की समीक्षा करने पर मुख्यतः दो मत समर्थ आते हैं। प्रथम मत उन्हें प्रथम शताब्दि ई० पू० धारित करता है। इस मत के समर्थक सर्वथो ३०० वा० वैद्य, ४०० ३०० महोपाध्याय वरदाचारी, चन्द्रशेखर पांडे प्रभृति विद्वान् हैं।

दूसरे मत के समर्थक श्री आर० डी० भण्डारकर, कीर्ति स्मिथ, डा० भगवत-शरण उपाध्याय डा० भोलाशङ्कर व्यास मैत्रदानल तथा चामुदेव विष्णु मिराशी हैं। ये सभी विद्वान् उनको अश्वघोष का परवर्ती मानते हैं। इसका आधार प्राकृत भाषा तथा गैला आदि हैं।

### भाषा-वैज्ञानिक प्रमाण-नाटकीय प्राकृत के विशेष सदस्य में—

कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा के स्व-वाचक गठन, प्रकृति प्रत्यय-विन्यास वाच्य-संगठन तथा शब्दों के द्वारा जो कवि के आविर्भावकाल का ओर संकेत हो सकता है। कालिदास का काव्य भाषा (नाम प्रकृति स्वभाव भाषिक गठन, शब्द-

स्रोत, शैली) उनके आविभाव काल की किस शताब्दी की ओर संकेतित करती है, गम्भीरता से अभी इसकी इस दृष्टि से परीक्षा नहीं हुई है। प्रो० कोय<sup>१</sup> आदि पाश्चात्य विद्वानों तथा कुछ प्राच्य विद्वानों ने भी कालिदास में प्राकृत प्रयोग के आधार पर उन्हें गुप्तकाल का सिद्ध किया है। किन्तु उससे भी अधिक हलके दृष्टि-कोण से उस मन को यह कह कर काट दिया गया कि उनकी प्राकृत 'कृत्रिम प्राकृत' है वैयाकरण नियमों के अनुसार कृत्रिम रूप में नाट्यवाग्गे द्वारा निर्मित की गयी। इस प्रकार भाषा विज्ञान व सिद्धांत के अनुसार तथा भारतीय आयभाषा के विकास क्रम का दृष्टिगत रखते हुए गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया।

कालिदास की काव्यभाषा का विश्लेषण करने के पूर्व कुछ भाषा वैज्ञानिक सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन अपेक्षित है। किसी विशिष्ट युग में, किसी विशिष्ट देश में, किसी विशिष्ट समाज में, किसी विशिष्ट साहित्यिक जीवित भाषा व सामान्यतया तीन रूप मिलते हैं—

- (१) सामान्य रूप
- (२) मध्यम स्तर का रूप तथा
- (३) साहित्यिक रूप

भाषा का साहित्यिक रूप उस भाषा के सामान्य तथा मध्यम स्तर के रूप का ही निम्नरा हुआ परिपक्व स्वरूप है। जब तक साहित्यिक रूप का सामान्य तथा मध्य स्तर व लोग सहज रूप से समझ लेते हैं जब तक उस भाषा को समझने के लिए पाठशाला में शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती तब तक साहित्यिक भाषा को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवित भाषा कहा जाता है। जब सामान्य तथा मध्य स्तर व लोग किसी भी साहित्यिक भाषा को पढ़ना पाठशाला में उस भाषा की शिक्षा लिए समझने में असमर्थ होत हैं तब यह कहा जाता है कि, वह साहित्यिक भाषा अब हृत्बद्ध होकर केवल साहित्यिकारों विद्वानों तथा वैयाकरणों की भाषा रह गई है। भाषा वैज्ञानिक रूप से ऐसा साहित्यिक भाषा को मृतप्राय कहा जाता है। जब एक भाषा सामान्य तथा मध्यमस्तर व लोगों के लिए सहज ही बोध्यगम्य नहीं रह जाती तब उस सामान्य भाषा के लिए मृतप्राय उस साहित्यिक भाषा के स्थान में उस युग में प्रचलित भाषा व सामान्य और मध्यम स्तर के रूप में एक नयी साहित्यिक

१ प्रो० कोय—'कालिदास के नाटकों की प्राकृत अवशेष तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निरचय ही अर्वाचीन है उसे गुप्तकाल के पूर्ववर्ती नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रो० कोय हिस्ट्री ऑफ़ सस्कृत लिटरेचर पृष्ठ ८०

भाषा का जन्म होता है। अधिकांशतः किसी भी साहित्यिक भाषा के व्याकरण रचना का प्रश्न तभी उठता है, जब वह धीरे-धीरे जन सामान्य या मध्यम श्रेणी के लिए अबाध हान लगती है। ऐसी स्थिति में शुद्धतावादी व्याकरण साहित्यिक भाषा का शुद्धता, एकरूपता, तथा स्थिरता को रक्षा के लिए साहित्यिक भाषा के व्याकरण का निर्माण करता है। यदा कदा जन सामान्य और मध्यम स्तर की भाषा की हृद्यता और साहित्यिक भाषा का श्रेष्ठता ज्ञान के लिए साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा के तुलनात्मक उदाहरण भी दिए जाते हैं। इस प्रकार साहित्यिक भाषा के निर्माण के बाद ही उसके व्याकरण का रचना होता है। इस साहित्यिक भाषा के व्याकरण के आशय पर कृत्रिम मानके भाषा का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा पहले सामान्य रूप फिर मध्यम स्तर का रूप और तत्पश्चात् साहित्यिक रूप धारण करता है। इस साहित्यिक रूप के व्याकरणिक ढाँचे के आधार पर कृत्रिम साहित्यिक भाषा का निर्माण भी सम्भव होता है। किन्तु बिना साहित्यिक भाषा समुचित विकास के उसका व्याकरण निर्मित नहीं किया जाता और बिना व्याकरण के कृत्रिम भाषा का निर्माण असम्भव है।

इस निश्चयत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यिक भाषा के वास्तविक विकास के बिना उसके आदर्श पर कृत्रिम भाषा का निर्माण भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से असम्भाव्य (linguistically impossible) है।

सामान्य लोक भाषा, साहित्यिक भाषा और कृत्रिम भाषा के विस्तार सम्बन्धा उपर्युक्त सिद्धांतों का दृष्टिगत रत्न हुए ही कार्निदास का नाटकाय प्रयत्न का युग निश्चित करना चाहिए। भारतीय जन भाषा का विकास का दृष्टि से निम्नलिखित सापाना में वर्गीकृत किया जाता है —

(१) प्राचीन भारतीय जन भाषा १५०० ई० पूर्व से ५०० ई० पूर्व

(२) मध्यकालीन जन-भाषा ५०० ई० पूर्व से १०० ई० तक

(क) पाला युग—(५०० ई० पूर्व से १ ई० तक)

(ख) प्राकृत युग—(१ ई० से ५०० ई० तक)

(ग) अपभ्रंश युग—(५०० ई० से १००० ई० तक)

(३) आधुनिक जन भाषा — १००० ई० से आज तक

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक भाषा का युग तमा तक माना जाता है जब तक वह सामान्य लोकभाषा के रूप में अथवा जीवित भाषा के रूप में भाषा द्वारा प्रयुक्त होती है, उसमें साहित्यिक रचना हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है।

ज्यो ही सामान्य लोक भाषा के रूप में जनता द्वारा किसी भाषा का प्रयोग बन्द हो जातम है, त्यो ही उस भाषा का युग समाप्त हो जाता है। भले ही उस भाषा में साहित्यिक रचना शताब्दियों बाद तक हाती रहे।

सामान्य लोक भाषा, साहित्यिक भाषा तथा शुद्ध भाषा का निमाण, विकास तथा अवसान की प्रवृत्ति को दृष्टिगत रखते हुए, हम कालिदास का नाटकीय प्राकृत व विशेष सन्दर्भ में कालिदास के आविर्भाव काल की जोर सकत करत का प्रयास करेंगे। भारतीय संस्कृत नाट्य शास्त्र परम्परा के अनुरूप, कालिदास ने अपने नाटकों व उच्चस्तरीय पुरुष पात्रा से संस्कृत म तथा समस्त स्त्रीपात्रा एव विदूषक से शौर सनी प्राकृत, धीवर आदि अति निम्नस्तराय पात्रा स मागधी प्राकृत तथा गीता म महाराष्ट्री का प्रयोग कराया है। 'विक्रमावशाय' व 'चतुर्थ अक म राजा पुहरवा' व द्वारा अधविक्षिप्तवस्था म अपभ्रंश का एक दाहा भा कहनाया गया ह। उस प्रकार कालिदास के नाटका में संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश, तीन भारताः भाषाओं का प्रयोग मिलता है। संस्कृत ५०० ई० पूव से ही सामान्य लोक भाषा नहीं रह गयी थी। अतएव कालिदास का काल चाह ईसा पूव प्रथम शती (शुङ्गकाल) माना जाए चाह गुप्तकाल में चौथी शताब्दा ई० पूव माना जाए—दोना युगा म संस्कृत केवल साहित्यिका, विद्वाना तथा वैयाकरणों की भाषा रह गयी था। अतएव संस्कृत व गठन व आधार पर कालिदास के आविर्भाव काल का निणय करन के लिए संस्कृत स विशय सहायता नहीं मिल सकता है।

ई० पूव ५०० ई० से १ ई० तक भारतीय आपभाषा के विकास क्रम म पाली युग था। पाली युग म संस्कृत आर पाली दो साहित्यिक भाषाएँ थी। ईसा पूव प्रथम शताब्दी म साहित्यिक प्राकृतें अपने आदिम अवस्था म जनभाषा या लोकभाषा के रूप म भले ही यत्र तत्र प्रयुक्त हा रही हा, किन्तु उन प्रादेशिक जन प्राकृतों में ईसा पूव प्रथम शताब्दी में इतना निखार, परिमाणन नहीं था कि एक परिनिष्ठित भाषा बनकर एक साहित्यिक भाषा के रूप म उनमें उच्च स्तर का साहित्यिक सजता की जा सकती था। साहित्यिक प्राकृत-शौरसेनी, महाराष्ट्री, अवमागधी, मागधी, पशाची आदि का युग ईसा की प्रथम शताब्दा स ही माना जाता है। अतएव ईसा पूव प्रथम शताब्दी म शौरसेनी, महाराष्ट्री मागधी उच्च साहित्यिक रचना का कल्पना ही नहीं की जा सकती है। लोकभाषा या जनभाषा के रूप में एक-आध प्राकृत वाक्या का प्रवेश हा सकता है, किन्तु परिनिष्ठित साहित्यिक प्राकृता में साहित्य-सूत्रन ईसा पूव प्रथम शताब्दी में भारतीय भाषाओं के विकास क्रम को देखते हुए असम्भव है। ईसा पूव प्रथम शताब्दी तक जब मानक साहित्यिक प्राकृता का पूर्ण-



रूपण विकास ही नहीं हुआ था, तब साहित्यिक प्राकृत का व्याकरण निर्माण का बात ही नहीं हो सकती है और फिर आर्य प्राकृत के व्याकरण के अभाव में प्राकृत का व्याकरणिक नियमों का आधार पर सम्भूत में रूपान्तर करके कृत्रिम प्राकृत का निर्माण ही कायम रूप से है। भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का जो क, ख, ग भाषा जानता है वह भाषा को कहीं कहीं का प्रभाव नहीं कर सकता कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में कनिष्क ने प्राकृत का व्याकरण का आधार पर सम्भूत में रूपान्तर करके, प्राकृत का निर्माण किया था। प्रसिद्ध कहते हैं कि अगल को ही नकल हो सकता है। अतः अब अगल का (अर्थात् साहित्यिक प्राकृत) का अस्तित्व नहीं, तो नकल या कृत्रिम प्राकृत का रूपना भी नहीं हो सकता है।

भाषा के अनेक नाटकों में सभी पात्रों (माध्याय, गृह्याय, सिद्धिम्बा) में मोक्षनाम संवाच तथा ब्राह्मणों के प्रतिपत्तय आभीर पात्रों यथा—नन्दगाय वृद्ध-गायानों में मागधा में संवाच कथाया गया है। सम्भूत नाटकों में सभी पात्रों के गानों या पद्यों का भाषा महाराष्ट्री है। किन्तु भाषा के नाटकों में नन्दगाय आदि के संवाच में जो गद्य के अनिश्चित पद्य या श्लोक मिलते हैं महाराष्ट्री में न होकर मागधी में हैं।

यथा—दुहि दण विण्ठुठ जीह्वा-सन्ती विट्टुई निमोतिमाकारा ।

स्या उपयुक्ता णीगणिवपणा जहा गोपी ॥

मागधी में पद्य रचना तान कायना में ही मकना है। प्रथमतः स्त्रियाँ तथा निम्न पात्रों के गीतों में महाराष्ट्री के प्रयोग का संस्कृत नाटकों का परम्परा तब तक सम्भव है, मुहूर्त न हुई हो दूसरे यह भी सम्भव है कि तब तक प्राकृत युग का काव्य भाषा महाराष्ट्री का इतना समुचित विकास ही न हुआ हो कि उसमें काव्य या गीत मजना हो सकें। यह भी एक सम्भावना हो सकती है कि भाषा की दृष्टि में मागधी इतनी हथ नही थी जितना कि बाद के संस्कृत के नाटककारों की दृष्टि में हो गई क्योंकि धीरे-धीरे बौद्धधर्म तथा बौद्धधर्म से सम्बन्धित भाषा प्रश्न सब के प्रति एक नये दृष्टि विकसित हो गई थी। भाषा तब नन्दगाय गायानों आदि पात्रों के मुख से मागधी बोलवाते हैं जबकि कनिष्क के अन्तर्गत निम्नपात्रों में मागधी में

१ भास-दूत—'शालचरितम्' ।

२ भास दूत—'शालचरितम्' । प्रथम अङ्क

संस्कृत—दुहि दण विण्ठुठ ज्योत्सना रात्रि बहूत निमोतिमाकारा

संप्राप्त प्रयुक्ता नील निवसना यथा गोपी ॥

संवाद कराते हैं। कालिदास के नाटका म, सभी पात्रों के मुख में प्रौढ़ शौरसेनी म सम्वाद कराया गया हैं और महाराष्ट्री के गीत भी मिलते हैं। यही नहीं 'विज्रमोव-आय' म तो एक अपभ्रंश<sup>१</sup> का दोहा भी मिलता है—

मई जाणिअ मियत्तोअणी जितअरु बोई हेरेइ ।

जावणु शाबतलिसामम धराहव धरितेई ॥

उपर्युक्त भाषा वैज्ञानिक तथ्यों की गम्भीरता पूर्वक विवचन करने से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि उत्कृष्ट साहित्यिक शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा सामान्य भाषा या सोवभाषा के रूप म अपभ्रंश की रचना करन बाल महाकवि कालिदास का आविर्भाव ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में असम्भव है। यदि हम यह मान लें कि कालिदास का आविर्भाव ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी म हुआ था और यह भी मान लें कि उत्कृष्ट साहित्यिक प्राकृत का तथा सोवभाषा के रूप म अपभ्रंश का विकास ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी म हा गया था तो समस्त भारतीय भाषाभा (संस्कृत, पानी, प्राकृत अथवा मराठी हिन्दी, गुजराती, बंगाली) के उद्भव काल की ५०० ई० पूर्व स जाना पड़ेगा। ऐसा मानन से पाची युग १०० ई० पूर्व से ५०० ई० पूर्व तक चना जायेगा जा एतिहासिक दृष्टि स असम्भव है क्योंकि गौतम बुद्ध से पूर्व (अर्थात् ५०० ई० पूर्व स पहले) पाला युग माना नहीं जा सकता है। अतएव भारतीय आर्य भाषाभा व विकास सोपान में उनना परिवतन अनेतिहासिक तथा अवैज्ञानिक है। निष्पत्त हमें यह मानना ही पड़ेगा कि कालिदास की नाटकीय प्राकृत के आधार पर महाकवि का आविर्भाव काल ईसा की प्रथम शताब्दी मे मानना असम्भव ही है। यदि कालिदास के नाटका की रचना ईसा पूर्व एक शताब्दी म हुई होती और सभा पात्रा अथवा निम्न श्रेणी के पात्रा के लिए लोकभाषा या जनभाषा का प्रयोग किया गया होना तो उन नाटका म प्रथम प्राकृत अथवा पाली का प्रभाव अवश्य ही पठता क्योंकि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी म प्रथम प्राकृत अथवा पाची लोकभाषा और साहित्यिक-भाषा, दोना रूपा मे प्रतिष्ठित थी। कालिदास व नाटको म पाली का अभाव भी यह सूचित करता है कि पाला युग म कालिदास के नाटका की रचना नहीं हुई थी। उन नाटका का रचना उस समय म हुई होगा जिस समय प्राकृत लोकभाषा तथा साहित्यिक-भाषा दोना रूपा मे प्रतिष्ठित थी। यही कारण है कि संस्कृत

१ संस्कृत ध्याया - भया ज्ञात मृगलोचना निशचर. कोऽपि हरति ।

यावतु नव तद्विच्छयाभलो धराधरो वपति ॥



॥ यह सत्य है कि अभिनता कभी कभी निम्नलिखित साहित्यिक भाषा का अवहेलना करके नानत अथवा अनानत साहित्यिक भाषा में अपनी जावित भाषा के कुछ शब्द और मुहावरे मिला देते हैं। अभिनताओं द्वारा भाषा को आधुनिक रूप देने की सम्भावना को झिंझकते रहते हुए यह सिद्धांत भी द्रष्टव्य है कि अभिनता भाषा के केवल उसी रूप का समावेश करता है जो जावित भाषा होता है, जिसे अभिनता और दशक दोनों सहज रूप से बोल सकते हैं और समझ सकते हैं।

कालिदास के नाटका के सन्दर्भ में उपयुक्त कथन प्रथमतः लागू नहीं होता क्योंकि उनके नाटकों के प्राचीन से प्राचीन पाठों में भी प्राकृत अपभ्रंश का यही भाषिक स्वरूप मिलता जो आज उनका पाठ में प्रस्तुत है। अपभ्रंश की पत्तियाँ प्रामाणिक हैं। ऐसा आज तक, किसी भी विद्वान् न कहने का साहस नहीं किया है, क्योंकि यह पाठ सबत्र मिलता है। दूसरे यदि कालिदास के नाटका के सन्दर्भ में अभिनताओं द्वारा भाषा के आधुनिकीकरण या पाठ के प्रक्षिप्तिकरण की बात मान ली जाए तो फिर आधुनिकीकरण या प्रक्षिप्तिकरण की यह प्रवृत्ति चौथी या पाँचवीं शताब्दी के प्राकृत युग तक ही क्या समित रहा। निश्चय ही है कि कालिदास के श्रवण का प्रथम अवश्य ही खल जाते रहे होंगे। यदि कालिदास की प्राकृत का कवि के सन्दर्भ में अपभ्रंशकरण अभिनताओं द्वारा चलता रहा तो यह प्रवाह कया उक्त कविना नाटका का प्राकृतों तक चलना चाहिए और उनमें उत्तरकालीन त्वि विशेषता भी जाना चाहिए। किन्तु अपभ्रंश का प्रयोग अन्य किसी नाटका में इस माँग केवल विक्रमावशायक चतुर्थ अंक में ही एक विशेष परिस्थिति में होगा अतः प्रथम से अपभ्रंश की पत्तियाँ कहा जायी है। एक सुसंस्कृत उच्चस्तर की मानतय से आज में प्रचलित उच्चस्तरिय भाषा का ही प्रयोग करता है। मगध निम्नस्तरिय भाषा का प्रयोग हेय माना जाता है अतएव हेय स्तर की का चेतनावस्था में प्रयुक्त नहीं हो सकती। बल्कि उसके अवचेतन स्तर में ही है। शिक्षावस्था में मस्तिष्क के अवचेतन का द्वार उन्मुक्त हो जाता है। तब कथित व्यक्ति उस हेय स्तर की भाषा का प्रयोग कर सकता है जिसे है नावस्था में सदैव रोक रहता है। विक्रमावशायक में उवशी के विरह में जा पु रवा विरह से हो जाते हैं। उसी विभिनतावस्था में कालिदास अपभ्रंश का कुछ पत्तियाँ उनके मुख से कहलाने से जो विभिन्न पाठ की नाटकीय परिस्थिति लिए सब प्रकार में उपयुक्त है और कालिदास ऐसे नाटककार का नाट्य प्रतिभा की महानता को द्योतित करते हैं। अतएव विक्रमावशायक की अपभ्रंश पत्तियाँ

केवल कश्मीर का ही दल है। गुप्तपुरा, बसंत तथा धान का शरीर व मध्ययुग वणन का इस धारा का प्रमाणित करने है कि कानि एम कश्मीर निवासा थे।

इसके उत्तर में हम यह कहते हैं कि कवि कश्मीर निवासा नहीं है। कवि द्वारा कथित भाषानिक स्थानों का आधार ताम्रमत्त पुराण न हार्डर महाभारत है। दूसरा बात उक्त शिवाग्र कथन कश्मीर तक ही सीमित नहीं है। तथा प्रथमिन्ना एतत् वाता उक्ति का प्रा० वाप्य स्थाकार न० करने।

सातवाहन मंत्र है कि पद्य ब्रह्मना विद्या वाणिज्य का ब्रह्मना (उद्गम निवासा) मानते हैं। इसका मतलब बड़ा उदाहरण व यह प्रस्तुत करने है कि उद्गमिणी धारा की शरीर का वणन गुप्त एव में किया है।

किन्तु यह बात स्थानान्तरित तथा उद्गमना ब्यापि कवि न रघु की शिष्यव्य व अक्षरक पर ब्रह्मना का पराक्रम का वणन बड़ा ही निमगता में किया है। किन्ना भाषाति का अपना अमूर्ति व विषय में बठार वात ब्रह्मना गबिहर नहीं जाना ब्यापि मानु भूमि व प्रति व्यति का प्रेम स्वाभाविक जाना है।

बाधा मत उनका उद्गम निवासा जान व पता म है। ऋतुगहा म ऋतुभा प्राकृतिक दृश्या तथा मानव जीवन का वणन मध्यभारत (मानवा प्रण) व जनवायु व अनुभव हुआ है। मंत्र तत्र विख्यापन का स्पष्ट वणन मिलता है। मगदूत म त्रिन ३१ नगर पवन नना दृश्य तथा मानव जीवन जाति का वणन मिलता है उनम म १७ मध्यभारत से सम्बन्धित है। उद्गमिनी मन्त्राकवि व त्रिण विषय आक्षेप का कद्र है। महामहानामाय हर प्रयाग मास्त्रा तथा उा सिमय इया मत व समर्थक हैं।

उपयुक्त मंत्र का पयवर्णन करत हुए यह कहा जा सकता है कि कानिनाथ व निवास का अधिवर्य उद्गमिनी व राय है और मानवा म भा उनका सम्बन्ध रहा होगा। ब्यापि कवि मय व अजनापुरा तक जाने व माग का निर्णय करता हुआ कहता है— यद्यपि तुम्हारे माग में उद्गमिनी का माग कुछ टड़ा अवश्य पन्ना पिर भी तुम उद्गमिनी हीन हुए जाना। इस कथन में तथा उक्त है कि कवि का उद्गम के प्रति विषय आक्षेप या और उक्त अपने जीवन का अधिकांश समय वही व्यतीत किया होगा अतः यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः कानिनाथ का जन्म उद्गम अथवा उद्गमिनी व प्रातरभाग में हुआ होगा।

व्यक्तित्व—

— १५ फुफ

कालिदास के काव्य का मथन करने में यह अनुमान होता है कि उनके जीवन का अधिकांश भाग समाज के उच्चस्तरीय परिवार या राजाश्रय में व्यतीत हुआ था। जहाँ वह तत्कालीन समाज के शिष्टव्यवहार परिष्कृत भाषा तथा रीति-एव नीति में सिद्धहस्त थे। मेस्त्रत तथा प्राकृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। रम्य छन्द-अनकारक वह गुरु अथेता एव पणित थे। उपमा का चरम लक्ष्य उनके काव्यों में परिलक्षित होता है।

कालिदास ज्ञान के ब्राह्मण एव परम् शिवभक्त थे। कवि हृदय का कोमल स्येदनाश से युक्त हात हुए भी वे राजनतिक बूटनाति के समस्त पात एव वाक्पटु विद्वान् थे। प्रवृत्ति एव मानवीय भावनाओं के सूक्ष्म निरोधक थे। भौगोलिक ज्ञान के साथ भणार हीं थे। उनके काव्यों में वैदिक संहिताओं ब्राह्मण ग्रन्था, उपनिषदों, मूत्रा रामायण, महाभारत पुराण, मनुस्मृति आदि षडशास्त्रा, साक्ष्य, न्याय, वैशेषिक, इत्यादि दार्शनिक ग्रन्था तथा आयुर्वेद ज्योतिष विद्या अर्थशास्त्र, कामसूत्र, नाट्य अलङ्कार याकरण शास्त्रा, मङ्गीत शास्त्र त्रिपादि कलाओं काप छ दशास्त्र तथा इतिहास का सूक्ष्म एव यथोचित परिचय मिलता है।

काव्य कृतिया—

संस्कृत काव्य साहित्य में कवि गिरामणि कालिदास के काव्यों का सर्वाङ्गुष्ट स्थान है। काव्य में यहाँ तात्पर्य खण्डकाव्य तथा महाकाव्य दोनों से है। कालिदास न दो खण्डकाव्या ऋतुमहार तथा मघदूत तथा दो महाकाव्या—कुमार सम्भव एव रघुवश को सजना की। इसके अतिरिक्त श्री वामुदेव विष्णु मिराशा जो न 'कालिदास' नामक अपनी पुस्तक में रावण बध या 'सेतुबधु' नामक एक अन्य प्राकृत महाकाव्य को भी कालिदास प्रणीत माना है। इस काव्य को भाषा शैली सरल तथा प्रसाद-गुण युक्त है किन्तु यह काव्य-अधूरा है। विचार करने पर अनुना अनर प्रमाणा द्वारा निम्न हा चुका है कि यह काव्य कालिदास प्रणीत न हाकर आचार्य प्रवरसेन द्वारा निर्मित है। इसी प्रकार डा० आषिकट ने अपना 'बृहत्संस्कृतग्रन्थसूचा' में कालिदास के नाम से प्रचलित तीस, पैंताम ग्रन्था का उल्लेख किया है। किन्तु उन सभी ग्रन्था का पराक्षण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ज्ञान में स तक ग्रन्थ कालिदास के नाम पर गठे हुए जयरा कालिदास के बहुते काल पीछे उत्पन्न हुए। कालिदास नामवागों किंसा अथ आकार द्वारा निर्मित हुए होंगे। अतएव हम इन विभिन्न विवादा के भेद में न पडकर अधुना सवमम्मति में उतन न तबन चार का या का श्री क्रम में विवेचन प्रस्तुत करेंगे—

## ऋतुसंहार—

कालिदास वृत्त काव्या में ऋतुसंहार प्रारम्भिक प्रथम माना जाता है। कई विद्वानों को सन्देह है कि कदाचित् उक्त काव्य कालिदास द्वारा रचित नहीं है, क्योंकि यह काव्य कालिदास के नैतिक गुणों से रहित है। भाषा-शैली अत्यन्त साधारण होने के साथ-साथ वैविध्य से रहित है। काव्य का वैषम्यस्वतः बोधगम्य हुआ जाता है। दूसरी बात यह है कि उच्छ्वास के टाकाकारों में कालिदास के अथवा काव्या का टीकाकारों की है परन्तु उन्होंने इसका टीका नहीं प्रस्तुत की। साहित्य-शास्त्रियों ने भी इसका एक भाष्य उद्धृत नहीं किया। अतएव उनके लिए भी यह उपमा का विषय रहा।

परन्तु पाश्चात्यविद्वान् इस कालिदास का वृत्ति ही मानते हैं। उपयुक्त आपत्तियों का उत्तर वे इस प्रकार देते हैं—टाकाकारों में इसका व्याख्या इसलिए नहीं की क्योंकि यह महाकवि के अथवा ग्रन्थों का अपभ्रंश सरल एवं बोधगम्य है अतएव उन्होंने इसका टीका का आवश्यकता नहीं समझी। साहित्यशास्त्रियों ने इसका उद्धरण इसलिए नहीं दिया क्योंकि वे सरल प्रथम से उद्धरण नहीं देते।

उपयुक्त इन विभिन्न प्रकार के वैमर्श्यों में कितनी वास्तविकता है कितना नहीं—यह एक अलग विषय है परन्तु इतना अवश्य है कि ऋतुसंहार कालिदास का ही वृत्ति है। हाँ, यह कालिदास के प्रारम्भिक काल का रचना है। जिस प्रकार युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में बहुत अन्तर होता है उसी प्रकार ऋतुसंहार एवं उनके अथवा रचनाओं में शिल्पकलाओं सभी दृष्टियों में महानांतर है।

ऋतुसंहार में ६ सग और १४४ पद्य हैं। प्रत्येक सग में १६ से २० तक श्लोक संख्या है। इसमें पङ्क्तुभा—ग्राम्य तथा, शरद हर्षन्त, शिशिर तथा वसन्त इत्यादि का मनाहर वणन मिलता है। महाकाव्यों तथा नाटकों में यत्र-तत्र स्फुट रूप में अथवा प्रसंगवश ही ऋतुभा का वणन आया है किन्तु सम्पूर्ण सृष्टि काव्य साहित्य में ऋतुभा का ऐकानिक वणन एकमात्र 'ऋतुसंहार' में ही प्राप्त होता है।

उन ऋतुसंहार में ऋतुओं का वणन उदात्त रूप से हुआ है किन्तु कवि ने केवल उनके भौतिक स्वरूप का ही वणन नहीं किया अपितु प्रत्येक ऋतु के आगमन के प्रभाव से मानव अंतःकरण में आनंदित उन उन प्रतिक्रियाओं (अनुभवा) का बड़ा सूक्ष्मता से चित्रण किया है। कालिदास ने प्रत्येक ऋतुस्मृति का सूक्ष्म चित्रण एवं प्रवृत्ति के साथ भारतीय सभ्यता की स्वाभाविक प्रेममय सहानुभूति का प्रदर्शन बड़ा ही कुशलता से किया है। प्रत्येक ऋतु के वणन में उस ऋतु का वृक्ष लताओं और पशु पक्षियों पर घटित प्रभावों तथा उसके आगमन से कामी जनता की चित्तवृत्ति

और व्यवहार में दिखाई देने वाले, परिवर्तनो, उनके हृदय में उठने वाले विभिन्न प्रकार के विचारा का वणन कवि ने अत्यन्त चमत्कारपूर्ण ढंग से किया है।

श्रीराम ऋतु सूय के प्रचण्ड आतप और चन्द्रमा की स्पृहणीय ज्योत्स्ना के साथ आती है। कामनिर्या उज्ज्वल रत्नो और दीप्त कौशेय वस्त्रो से विभूषित हो ऋतु की शोभा में चार चाँद लगाती है। अघरात्रि में युवक वग गीत, नृत्य तथा मुरा में आनन्द का अनुभव करते हैं, युवको के प्रेम की ईर्ष्या से श्लोकाकुल निशाकर भा छिप जाता है—

वध्रतु तव निदाघ कामिनोभिः समेतौ ।

निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन ॥

वर्षाकाल राजा रूप धारण कर आता है। शस्य श्यामलता वसुधरा युवा-कामिनोक्त प्रनीत होती है। 'नदिर्या यौवनो-मत्त चंचल युवतियो की भाँति बड़े वेग से समुद्र का आलिङ्गन करने चली जा रही हैं। चतुर्दिशाओ में मधुर ध्वनि गुँजित हो रही है। चपला अघेरी रात्रि में प्रिय समागम के लिए विह्वल अभि-सारिकाओ का पक्ष प्रदर्शन कर रही है।'—कितना मनमोहक वणन महाकवि ने किया है—

रमणाय शरद् ऋतु नवविवाहिता वधु की भाँति आती है—

—, काशाकुजा विश्वपद्ममनोक्तवक्त्रा, सौन्मावहसखनपुरणादरम्या ।

अपववरातिरुच्चिरानतमात्रमष्टि, प्राप्ता सस्त्रधवधूरिव रूपरम्या ॥ ३११

चतुर्थ पंचम सर्ग में कवि ने हेमन्त और शिशिर ऋतु का वर्णन किया है, किन्तु यह वणन पूर्वतीन सर्गों की अपेक्षा मनोहर नहीं है तथा यत्र-तत्र शिथिलता आ गयी है। इन ऋतुओ में प्रवृत्ति सुन्दरी के नेत्राल्लादक पुष्पादि अलंकार परिलम्बित नहीं होते अतएव ४-५ श्लोको में ही कवि ने प्रवृत्ति गायिका को समाप्त कर दिया है। शेष श्लोको युवक युवतियों की मधुर-हावभावा तथा लीला-विनयासा का हृदयावपक वणन है।

अन्त में कवि ने मनाहर एव रमणीय वसन्त ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है। यह वणन सम्पूर्ण प्रथम का प्राण है। यह अपने ढङ्ग का अद्वितीय है। इस ऋतु का इतना आह्लादकारी वणन इतनी सरस और सुलक्षी हुई भाषा में गायक ही अथवा किया गया हो। इस ऋतु में वृक्ष पुष्पयुक्त, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनिर्या कामयुक्त, पवन परिमलयुक्त, सन्ध्याकाल सुखकारी तथा दिन रमणीय होते हैं—



भाष्ययन् कुमुदिना सहकारसाक्षा विस्तारवन्दरमृगस्य ब्रवीति हिनु ।  
वायुबिवादि हृदयानि हरप्रराया मोहार मोहारपानविगनान गुमगो ब्रवाते ।

१।२४

मेषदूत—

मेषदूत यमस्त्य ससृज गानिकाभ्य-ग्राहित्य का परम् उग्रमरम र न है । एक विरह। यम का मामिष मनोभ्यपात्रा क अमूरुख विवण न इय काव्य का अद्विताय म्वात प्रानन दिया है । मेषदूत में १२१ छन्द है । यमून प्रम्व का प्रदान भागा में दिमाजित है—पूवमप तथा उत्तरमप ।

काव्य का क्या इस प्रकार है—अनवापुत्रा क अयाव्वर कुवट न जाने विरह यम का वद्वय पावन म तिपिनना सिग्गिने क पत्रम्वमा एक वप क विर रात्र मे निवापिषि कर दिया । बवाग यम प्राणादि अना प्रिय परना म दूर भाग्य को निम्न भूमि म आकर रामगिरि नामक पवत पर जाने विवाग क स्नि श्रवाव करन म ता है । दन-नन प्रकाश विरह क माठ भाग्य श्रवाव करन क पशवा कर्पाछतु का आगमन उग्र प्रमा क हृदय म विरह का उरकट वन्ना जागरित कर दता है । मरी प्रिय पत्नी का भा, मुत्र पति क विवाग में यही दगा हो रहा होगा - एया विचार पर, यम न मप का अना दूव बावकर अना कुजन सदन प्रियतमा क पाय प्रेषित करन का उपक्रम करता है । पूरमेष म वह मप क निष् रामगिरि म अनका तक जाने क माग का विगम वणन करता है तथा उत्तर मप में अनवापुत्र अवन भवन तथा अचना पना का विरह-गाम्रा को वणन कर श्रव में अना सन्नेय मुतात्रा है ।

इस काव्य म इतनी स्वाभाविकता है कि कुछ आलोचना का मत है कि कालिदास न अरन वैपक्ति अनुभवों का व्यक्त करन क लिए हा इस काव्य का रचना की । यह वाय सुवधा अयस्य न हा तो मा स्वाकरण माय नहा है बवादि कालिदास क जावन क रिपय म निश्चित सामग्री का पूजनया अभाव है अतएव उयक निष् कुछ मा आचार निना यताना अ धेरे म मानो मोहन क समान है ।

इस काव्य का कथावस्तु का निराक्षण करन म लेया प्रदान होना है कि महा कवि का इस काव्य क प्रणयन का प्रेरणा रामायण म प्राप्त हुई हागा । मरदूत म विविध विरह गाना क गूणम वणन का लेशकर लगता है कि उ यनि विवा विरह व्यथित न रा क समाय वेवकर उवना प्र यम अनुभूतिया का स्वय अनुभव दिया या । यटा कारण है कि मेषदूत मायिक भावनाभा क विवण में मरा चरना है । यमा यम म मुद्राव का यानरा का माग उजाग नका का वणन साय कान का यना म हनुमान का नका म प्रकग अशाक वम म यात्रा वणन ओर दूवर स्नि प्राप्त काव

हनुमान का सीता-से मिलना इत्यादि वणन का प्रभाव काव्य-दास, पर किसी न किसी रूप-में अवश्य-पडा हागा, १, मेघदूत की कुछ पंक्तियाँ— 'जनतनयास्नानपुण्यादकपु', 'राममियाप्रमेपु रघुपतिपदरङ्गतिम्', 'इयास्माते पवनतनय मृषिलीकोमुखा सा', इत्यादि उद्धरण इस बात की पुष्टि करते हैं ।

महाकवि न १२१ श्लोका मे हा अपन सम्पूर्ण काव्य लालित्य का प्रदान कर दिया है । काव्य मे कल्पना और दृष्याङ्कन का अपूर्व सम्मिश्रण है । उत्तरमध का अत्येक शनक वियोगावस्था का जाता गागता चित्र, उपस्थित करता है । इतना हा नहीं चिरह का प्रत्येक दशाआ तथा उसक अनगत मनोदशाआ का भा बडा हा सूक्ष्म वणन किया गया है । ऐसा लगता है कि काव्यिदास एक महाकवि हा नही, बरन् एक चियागिनी स्त्री का प्रत्येक भावनाआ, परिस्थितियो तथा हादिक, सबनाआ क मूल व्ययता भी है । यगिणी के तात्र विपाद का मुद्दर व्यजना दक्षिण—

नून तस्या प्रबलहृदितोच्छ्राननेत्र प्रियामा  
नि श्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।  
हस्तन्यस्त मुखमसखलव्यक्ति सम्बालवत्वत्  
इहोर्देन्य स्वदनुसरणकिल्लटकातेविमति ॥ मेघदूत २।२४

प्रकृत देवा के महाय उपायक हात हुए भी, काव्यिदास एक सुविन नागरिक भा हैं । इयालिए मेघदूत मे हम नगर तथा ग्राम के अविस्मरणाय वणन प्राप्त हात हैं । यथा कहता है— मेघा क जान पर पुण्यित केवकियों के पुण्या स धवलित उपवना का क्यारिया से युक्त वह दर्शाणभूमि और भी सुशोभित होन लगेगा, जिसक ग्राम्य वृष पशिया क घाउला और जामुन के वय फला से परिपूण हैं ।

उज्जयिना नगरी का वणन करत हुए यक्ष कहता है— 'उज्जयिनी नगरा वैभव में मेघा के समान है । इसके प्रामाद प्रत्येक हटि से तुम्हारी ममता कर सकते हैं । वहाँ का रमणियाँ तुम्हारी विद्युत की भांति, वहा के चित्र तुम्हारे इद्र धनुष की भांति उनका दु मियाँ तुम्हारे मधुर गजन के समान तथा रत्न जटित भूमि तुम्हारी जन विन्दुआ की भांति हैं तथा वहाँ के महलो के शिखर भी तुम्हारे हा समान गगन चुम्बी हैं । इतना हा नहीं यक्ष का शूह भी मेघ से पूण समता रखता है ।'

१ उ० मे०, १

विद्युन्वन्त सलितधनिता से इयाप्र सचिदा समीताय प्रहृतपुरजा स्निग्धगम्भीर-  
घोष अतस्तोयमणिममभुपस्तुगमध्रसिहाप्रा प्रासादास्त्वा तुत्तयितुमत्त मत्र तस्ते  
विशेष ॥ उ० मे० १

प्रकृति को परिवर्तनशील दृश्यावली मेघदूत के अनेक कल्पनात्मक मन्देशों में परिपूर्ण है जो वियोगी यश के अन्तःकरण में स्वामाबिक रूप में उद्बुद्ध हो जाते हैं। तटवर्ती घुसों के शुष्क पत्तों के पतन से निर्विभ्या मोतवण हा गयी है, जो अपने प्रियतम से वियुक्त होकर वृशकाय पीतवर्ण रमणा के समान प्रतीत होती है।<sup>१</sup> उज्ज-मिना में प्रातःकाल के समय मित्रा को ओर जाने वाला पवन जनपदियों के स्पष्ट ओर वसनामपुर कुजन को ओर दौध बनाता है।<sup>२</sup> अन्तिम श्लोका में यश की प्रियखी का पाप्यचित्र प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः मेघदूत कालिदास का सर्वोत्तम रचना है। इसमें उनकी रति का प्रवृत्ति और काव्य कलात्मकता का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक कुशल चित्रकार जिन प्रकार तूलिका का सहायता से चार छ रखाश्रा में मुन्दर से मुन्दर चित्र बनाता है। उसी प्रकार कवि न भा अत्यन्त अल्प शब्दों में रमणीय उदार भावों का चित्र बड़ी कुशलतापूर्वक सुन्दर रूप में उतार दिया है।

काव्य की शब्द-रचना समकते हुए हीरों का भाँति निर्दोष तथा उज्वल है। अथ रूपी रचना की उपमा, उत्प्रेणा और अर्थान्तर-यासादि, मुन्दर मुन्दर अङ्कुरों में जड़ देने से उनका आभा और भी डिगुणित हो गयी है।

मेघदूत में खवन विप्रलम्भ शृङ्गार का ही चित्रण हुआ है। विषयपर उतर मेघ में यश, अपनी ओर अपनी पत्नी की विरहावस्था का वणन जिन श्लोकों में करता है, वे अत्यन्त ही कण्ठोत्पादक एवं मार्मिक हैं।

सम्पूर्ण मेघदूत महाकाव्यता छन्द में प्रणात है जो विरह की तीव्रतम अनुभूतिया के चित्रण में पूणतया सशम है। हम कह सकते हैं कि यदि कालिदास न केवल मेघदूत की ही रचना का होतो, तो भा वे सर्वोत्कृष्ट महाकवि गिने जा सकते थे। उनकी मन्त्राज्ञाता के छन्द से प्रभावित होकर किसी कवि न उहे भावुक उद्गार व्यक्त किए हैं।

कुमारसम्भव—

कालिदास को लेखनी से प्रसूत महाकाव्य का सरणि में कुमारसम्भव का प्रशस्तनीय स्थान प्राप्त है। इसमें उमा शिव के विवाह तथा कार्तिकेय का उदरति का प्रतिभा समदृष्ट वणन है। वारक नामक राक्षस द्वारा पाण्डव देवता ब्रह्मा की शरण में रक्षाय जात हैं। ब्रह्मा आदेश देते हैं कि वे शिव-पावता का विवाह

१ पू० मे० ३१

२ पू० मे० २३

कराय उनका जो पुत्र होगा वही केवल तारक राक्षस का वध करने में समर्थ होगा । देवतागण विचारकर कामदेव से यह अनुग्रह करते हैं कि वे समाधिस्थ शिव के हृदय में पावती के प्रति प्रेमभाव जाग्रत करें । कामदेव असमय में वसन्त का आगमन कराकर, शकर की तपस्या भङ्ग करता है, किन्तु समाधि भङ्ग हो जाने के फल-स्वरूप कोपारत हुग शिव जी अपने तृतीय नेत्र की ज्वाला में कामदेव को भस्म कर अर्तन्त ही जाते हैं । इसके पश्चात् अपन रूप लावण्य से आर्कषित कर सकने में असमर्थ, पावती जा की शिव प्राप्ति के निमित्त धार तपस्या करने लगती हैं । शिव ब्रह्मचारी के वेश में वहाँ जाते हैं और उनकी तपस्या की परीक्षा लेते हैं और उनमें विवाह की प्रतिज्ञा करते हैं । सप्तपिण्ड शिव-पावती का पाणिग्रहण कराते हैं । विवाह समारोह के उपरान्त कवि दोनों के दाम्पत्य जीवन का वर्णन करता है ।

कुछ विद्वान् काव्य का यही पर समाप्ति मानते हैं । अधुना कुमारसम्भव की उपलब्धि प्रतिया में सत्रह सग मिलने हैं । कुछ आलोचकों का मत है कि इसमें पहले २२ सग थे । इसके विपरीत कुछ आलोचकों का कथन है कि कालिदास इस काव्य को पूरा नहीं कर सके तथा जारम्म के आठ सग ही वास्तव में कालिदास द्वारा रचित हैं । उन्होंने इस काव्य को क्या समाप्त नहीं किया, यह आज भी एक रहस्य बना हुआ है । यह याह्या कि उनकी मृत्यु हो गयी, उचित नहीं है, क्योंकि इस बात के अनेक सक्त मिलने हैं कि रघुवश की रचना इस काय के बाद हुई है ।

दूसरी बात यह है कि प्रसिद्ध व्याख्याकारों-अरुण गिरिनाथ, मल्लीनाथ इत्यादि की टीकार्यें केवल आठ सगों तक की प्राप्त होती हैं । इन विभिन्न अटकला के अतिरिक्त कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि कवि ने केवल कुमारजन्म तक की घटनाओं का ही वर्णन किया होगा । किन्तु यह बात युक्तिसङ्गत नहीं लगती । सम्भव है, कुमार गुप्त के जन्मावस्य पर उक्त काव्य की रचना किये जाने से कालिदास ने काय को यह नाम किसा विशेष अभिप्राय से दिया हो । अथवा कालिदास को अपन आराध्यदेव का शृङ्गार वर्णन इतना पश्चात्ताप कारक हो गया कि उन्होंने इस काव्य की बाद में रचना ही समाप्त कर दिया, किन्तु उसके अच्छे स्थला को रघुवश में स्वयं रख लिया अन्यथा कालिदास की शैली पुनरुक्त कहने की आनी नहीं रही है ।

एक अन्य विवाह का विद्वानों का इस विषय में अभीष्ट है, वह यह है कि पहले तथा आठव सग में शिव-पावती के सम्भोग का वर्णन बड़े ही उद्दान तथा अमयादित रूप में हुआ है । अतएव उसके सुखचिह्न न होने का कारण जान-दवर्धन

( ६७० पृ० १४७ ) तथा मम्मटादि काव्यशास्त्रिणा न कवि का दोषा ठहराया है । कहते हैं कि शृङ्गार व नग्न वणन न पावनी जी न क्रुद्ध होकर शाप दे दिया था फलतः यह काव्य अपूण ही रह गया । टाकाकार अरणगिणि न इस विवक्षा का स्पष्ट उल्लेख किया है । इन सब बातों में यह पता चलता है कि कालिदास व समय में ही इस तरह के आरोप होने लगे थे । सम्भवतः इस कारण कालिदास न 'कुमारसम्भव' का अपूण ही रहन दिया । कारण कुछ भाषा नवम् सग व वाद व मग कालिदास प्रभाव नहा है । प्रथम जाठ सगों की अपणा वाद व सगों की शनाक सहारा वम न इन सगों का भाषा गैला में ना कसाव नहा है । उपमा, अयान्तरन्यासाणि अल-ङ्कारा का निवाह भा उतना मुदरता से नहीं हा पाया है । अतएव एसा धारणा है कि 'कुमारसम्भव' का अपूण दखकर उत्तरकालीन कवि न इस पूरा कर लिया है ।

दार्शनिक दृष्टिकोण से कुमारसम्भव महाकवि का धार्मिक आस्था का प्रतिफलित रूप है । उनका सम्बेदनशील काव्यात्मक बुद्धि न विद्वत् का एक नियमित विधान व रूप में ग्रहण किया है । उपनिषदा का भाति उहाने में विद्वत् व आधार का एक ब्रह्मानिरिक्त सत्ता रूप में स्वीकार किया । कुमारसम्भव में कवि द्वारा का गई शिव स्तुति एक निसिद्ध परमात्मा का अपणा एक वैयक्तिकृत धारणा के अधिक निकट है । बाधातिरिक्त एक अन्तवता श्वर ना है । रघुवत्स की विष्णुस्तुति में ना अन्तववितत्व और वैयक्तिकत्व पर समान रूप में बंद दिया गया है । कवि का कथन है कि वस्तु व्यक्त के सम्बन्ध में सत्त्व का स्थिति ज्ञान पर अनन्तगत्मा का वाणा का हा प्रमाणित मानना चाहिए ।

'कुमारसम्भव' शृङ्गार रस प्रधान काव्य है । कवि वासनात्रय प्रेम का पत-पावी नहीं है । वासनाजनित प्रेम दुःख-क्लेश का परिणाम होता है । काम-वासनाओं का विना भस्माभूत किए, सच्चे स्नेह का प्राप्ति नहीं हा सकता है । तपस्या में स्नेह परिनिष्ठत नहीं होता है यह कुमारसम्भव का जमर सदा है । शृङ्गार व माध करण का भी मार्मिक चित्रण हुआ है । चतुर्थ सग का रति-विनाश विश्वसाहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखता है ।

काव्य का भाषा अत्यन्त सरस और वाग्म्य है । अनुष्टुप उपन्द्रव्या विभागिनी, रसादृता आदि छन्दों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया गया है ।

रघुवण—

'क इह रघुका न रमन

। रघुवत्स कालिदास का सर्वश्रेष्ठ कृति है । इसमें उनका परिपक्व प्रणा एवं प्रौढ़ प्रतिभा व दर्शन होते हैं । ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न

काल में निमित्त ४० राजाओं के अस्तित्व से मिलता है । इसलिए सस्वृत्र के प्रथकारों एवं सुभाषितकारों ने कालिदास को 'रघुकार' के नाम से उल्लिखित किया है । रघुवश में १६ सर्ग हैं तथा उसमें २६ सूयवशी राजाओं का यथागान किया गया है । इन राजाओं में रघु नामक राजा बड़ा प्रतापी तथा दानशील हुआ । उसी के वशधर राजाओं का वाध्यमय वर्णन इस काव्य में किया है जिसमें मयादा पुरुषोत्तम राम भा हुए इसा से इस काव्य का नामकरण रघुवश पड़ा ।

कथावस्तु इस प्रकार है—राजा दिलीप की गोमवा (नन्दिना) व परिणाम-स्वल्प रघु का जन्म होता है । रघु अपने अदम्य पराक्रम एवं शौर्य से सबका पराजित कर सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त करता है तथा अपना अद्भुत दानशीलता में मक्का कल्याण करते हैं । इसके अनंतर तीन सर्गों में अज का जन्म इन्दुमती स्वयम्बर अथ समवत राजाओं को परास्त कर रघु-पुत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा माना गिरने से इन्दुमती की मृत्यु, अज का हृदय विदाग् विलाप वर्णित है । १०वें से १५वें तक राम-चरित्र वर्णित है । कालिदास ने इन सर्गों में राम के चरित्रिक वैशिष्ट्य का वेदुष्यपूर्ण वर्णन किया है । त्रयोदश सर्ग में पुष्यकाल राम द्वारा भारत व पवित्र स्थानों का गन्धर्व वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है । चतुर्दश सर्ग साना चरित्र से आलोचित है । राम द्वारा परिलयना गन्धर्वराजा जनक नन्दिना व प्रणय सन्देश में जा आत्मगौरव जो विवशता दीय तथा म्मह पूजाभूत है वह पवित्रता नारी व चरित्र का चरमरूप है । १६वें सर्ग में नाटकीय तत्वों का सुंदर आभास मिलता है । रात्रि काल में कुश के शयन कक्ष में जयाध्या दधी का आगमन और उनके द्वारा कथित जयोध्या का दुःखद वर्णन अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी है । इसके बाद रघुवश के अवशिष्ट सर्गों में राचकता कम होती जाती है क्योंकि कालिदास के पास उन जयोग्य राजाओं के नाम परिगणित करने के अतिरिक्त कहने को कुछ शेष ही नहीं था जिनकी समस्त अभिरचियाँ अन्तर्गत ही सामिल थीं । अतएव उनका धुंधली आदृतिभा का ही वर्णन केवल मिलता है । हाँ इतना अवश्य है कि आकार में वास्तविकता कुरूपता लाने की दृष्टि से कथानक इतना लचीला नहीं है । केवल वृत्तांत के काव्यात्मक प्रसंग तथा भावनाओं में प्रतिध्वनित उपमाओं से ही इसका निर्वाह किया गया है । १७वें सर्ग का अन्त अकस्मात् ही कवि ने कामुक एवं विनासी राजा अग्निवर्ण के मार्मिक चित्रण के साथ किया है । इसी कारण रघुवश देखने से कुछ अधूरा अधूरा सा प्रतीत होता है ।

स्व० रायबहादुर शंकर पाण्डुरङ्ग ने रघुवश में २१ सर्ग होने का उल्लेख किया है । परन्तु अवशिष्ट सर्गों का पता न लगने से यह बात स्वीकरण योग्य नहीं लगती ।

कवि ने १६ सर्गों से आगे रचना नहीं की, इसका कारण कुछ आलाचकाने की अस्वस्थता अथवा मृत्यु होना बताया है। दूसरा बात यह है कि 'विष्णुपुराण में अग्निवण के पश्चात् साठ राजाओं का वणन मिलता है, किन्तु रघुवश केवल अग्निवर्णा के वणन तक ही सीमित है। अतएव यह विद्वान् रघुवश को अपूर्ण ही स्वीकारते हैं। अस्तु

इस काव्य के प्रणयन में कालिदास वात्मीक के सबसे अधिक ऋणी हैं। काव्य के आरम्भ में ही पूर्वमूर्त्विज ग्रन्थों का अनुसरण कर मैं रघुवश की रचना करता हूँ ऐसा कवि ने भक्त दिया है। ६वें सर्ग में १२वें सर्ग तक कवि वात्मीक रामायण में प्रणया ग्रहण की। पुराणों में भी रघुवशों राजाओं की नामावली दी गई है किन्तु उस नामावली और रघुवश में क्वचित् नामावली में महान् अन्तर है। मया दिलाप रघु के बीच वाल्मीकि रामायण में दो वायुपुराण में चतुर्थ एव विष्णुपुराण में अठारह राजाओं के नाम दिये हुए हैं। अब यह अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के विषय में केवल नाम निर्देश के कारण इतने आदर के उद्गार प्रकट किये हैं।

रघुवश में प्रायः सभी मुख्य रसों का परिपाक हुआ है। आचाम साहल (११वीं शताब्दी) में कालिदास को रसेश्वर का उपाधि से विभूषित किया है। राजा अग्निवण के विलास में शृङ्गार, रघु-अज राम के युद्ध प्रसङ्गा में वीर-रोद्र अज-विलास में कृष्ण वशिष्ठ तथा वाल्मीकि के आश्रम तथा स्वस्थ त्यागी रघु के वणन में शान्तरस, ताडका वध में भामरस का क्वचित् छटा परिलक्षित होती है। किन्तु पूर्वोक्त सभी रसों में ही आप हैं रघुवश का प्रधान रस तो वीर है। वीर-रस के चार अङ्गा—युद्धवीर, दातवीर, धर्मवीर और दयावीर का यथोचित परिपाक हुआ है।

कवि की भाषा मन्त्र सरस, मधुर एवं पमादमया है। उपमा के ताँ कालिदास सिद्धहस्त कवि हैं। उसके विषय में कुछ कहना पृच्छापण ही होगा। साथ ही उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरयासादि अयालङ्कार भी तगवत् अटित हैं। कालिदास ने शब्दालङ्कारों का प्रयोग बहुतेर कम किया है। नवम में वसन्त ऋतु तथा दशरथ आश्वि का वणन करते समय यमकाभवता के घुरि स्थित 'रणेरगवाकृषिरे रक्षिरन मुरद्वियाम, इत्यादि स्थानों में यमक-अनुप्रास की शलक मिलता है।

सवत्र वाच्यार्थ का अपना व्यंग्याय पर ही अधिक ध्यान दिया गया है। अज्ञा का यथोचित प्रयोग मिलता है। रचना सुबोध तथा अतिरमणाय, भावतरङ्ग

मधुर, सृष्टिवर्णन मनोहर होने के कारण 'रघुवश' ससृष्ट साहित्य का दैदीप्यमान नक्षत्र है। अपने आदर्शों की अनुपम सृष्टि के लिए कामल तथा मधुर रसात्मक के लिए 'रघुवश', कालिदास की कीर्ति-ध्वजा को निरन्तर फहराता रहेगा।

## संस्कृत काव्य और कालिदास

### काव्य का वर्गीकरण—

संस्कृत महाकाव्य के विकास क्रम को तीन युगों में विभक्त कर सकते हैं—

- (१) कालिदास का पूर्ववर्ती युग (जिसके अंतर्गत रामायण, महाभारत इत्यादि आते हैं)।
- (२) कालिदास का युग (जिसका प्रतिनिधित्व अनेक कालिदास करते हैं)।
- (३) कालिदास का परिवर्ती युग (जो भारत से प्रारम्भ होता है)

इस विभाजन से संस्कृत के प्रायः सभी इतिहासकार सहमत हैं।

रचना शिष्ट के विकास की दृष्टि से समस्त महाकाव्यों को पुनः तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

- (१) इतिवृत्त प्रधान महाकाव्य
- (२) भावप्रधान महाकाव्य
- (३) अलङ्कार प्रधान महाकाव्य

इन तीनों महाकाव्यों के काव्यकर्त्ता एवं उनकी रचना विधान प्रक्रिया का संक्षेप में विचार करेंगे।

### (१) इतिवृत्त प्रधान महाकाव्य—

संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की दीर्घ परम्परा में ऐसे भी महाकाव्यों का उदय हुआ जिसमें कथानक की ही प्रधानता है। अर्थात् काव्य के अर्थ अङ्गों रस-अलङ्कारादि की अपेक्षा कथा के विकास में कवि ने अपनी प्रतिभा का अधिक उपयोग किया तथा उसमें नये मोड़ दिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि रम अलङ्कारों की संख्या अपेक्षा की गई किंतु यत्त्व केवल अङ्ग रूप में (गौण रूप में) ही प्रयुक्त हुए। इनका योगदान केवल कथानक में प्रवाह लाने उसे अधिक सुस्त और सशक्त बनाने, सरसता और प्रभावोत्पात्कता लाने में ही रहा। इस श्रेणी के काव्यों में कथानक का ही मुख्यतः आनंद मिलता है—उसके उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात,



तथा भाषा शैली का सुन्दरता का दृश्य परिलक्षित होता है। उस काव्या में वेदमूर्ति रीति का सफल प्रयोग किया गया है जो मानव हृदय का आकर्षित करने में सक्षम है। वृषभ जाकपक एवं हृदयाद्भाकारि है। सबत्र स्वाभाविकता एवं कलात्मकता का आवरण छाया हुआ है। अतिमता व दणन नही हान।

इतिवृत्ति प्रधान कविता में अश्वघोष मन्त्रपूण है। उनका बुद्धचरित एवं 'सौन्दर्य' कथानक प्रधान काव्य है। उनका कविता का पंक्ति पाठक सदा ही पुकार उठता है कि कवि अपने मरुत विचार मन्त्र इतिवृत्त का काव्यता का काव्य प्रदान कर रहा है। बाद में का मया भावना एवं उदात्त दृष्टि का सावभौम वनान क लिए तथा उम सद्य हृदयज्जम प्रदान हनु कवि न धरलू उपमा तथा हृदयत का राचक प्रयोग किया है। सौन्दर्य का य म कवि का वाणी मनाहर-स्निग्धता हृदय का आवजन करने का अनुम शक्ति का उकर समथ आता है। उनकी कविता अत्यन्त का जावना शक्ति प्रदान करता है। छाट छाट कुन हए प्रमद्गा द्वारा अपन धार्मिक मन्देशा को का य का कमताय विग्रह प्रदान करने में सफलतम् कवि हैं। गैरी शुद्ध वैश्वी का उ उष्ट निदणन है।

क्षेत्र भा म का य वृष का पुष्पिल एवं पन्नविन करत है। कवि न नागा व चरित्र मृषा तथा मनारजन का भावना म प्ररित होकर रामायण महाभारत की प्रस्थान कथाओं का सति तन वणन रामायणमञ्जरा तथा भारतमञ्जरा क नाम से प्रस्तुत किया। इन कथाओं का समा रण इतना सु रता तथा विवक पूर्वक किया गया है कि मनारजन क साथ साथ कथा म पूण प्रवाह और स्वाभाविकता है।

### (२) भावप्रधान काव्य—

सस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे भा का या की सजना हुईं जिनमें भावा अनु-भूतिया तथा मानसिक सम्बेदनाओं को प्रधानरूप से उजना है है। इन महाकाव्या म रस भावा का अपूर्व समन्वय वनी मधुरता पूर्वक रस-पश्य गैरी में हुआ है। एम काव्या म कवि अपन जाराध्यदव क सम्मुख बैठकर अपना अन्तरात्मा की कोमल-तम् अनुभूतिया को अनियक्त करता है अगवा किना मार्मिक प्रमद्ग जैसे विरहिणी नायिका-नायक की मनादशाओं का मनाघाटी वणन करता। ऐसे काव्य में अनुभवा एवं विभावो का ही अधिकाराण वणन किया जाता है। इनकी भाषा मुमधुर रसमया एवं सरस होता है। सबत्र कामलकांत पदावला का प्रयोग होता है। अलङ्कारा का प्रयोग भावा में नीदना एवं उत्कृष्टता लान के निमित्त होता है अर्थात् वे साधन रूप में प्रयुक्त होते हैं साध्य रूप में नहीं। इन काव्या में प्राय धर्म का भी अङ्ग सम्मिलित रहता है।

१. इस दृष्टि से जयदेव के 'गीत गोविन्द' का सर्वाङ्ग स्पष्ट है। इसके बाग्यात्मक गीतों के मधुर स्वरों से सुखित हैं। 'गीतगोविन्द' भगवती सख्यत भारती के माधुर्य एवं मोन्दय का पराकाष्ठा है। गीत का अनुपम प्रदणन काय की विशेषता है। गीत सवाण-वर्णन का मधुर गुम्फन है।

राधावृष्ण की शृङ्गार व्रीडा में उनकी अभिमार लीलाये शृङ्गार रम में चार चाद लगा देती हैं। आशा निगशा, उत्कण्ठा, प्रणयजय ईर्ष्या-मानापनोदन तथा मित्रन वियाग इत्यादि प्रेम की इन विविध दशाओं का अत्यन्त आकर्षक चित्रण हुआ है। श्रीवृष्ण की लीलाओं के वर्णन में तो ऐसा लगता है कि कवि विश्व की मधुरता का उडेल रहा है। राधा की मन्वि मान छाडन को कहती है—हरि भिसरति वहति मधुवर्णे, किमपरमधिकमुग्ध, सन्नि भुवन, माधवे मा कुरु मापिनि मान भये। वृष्ण 'राधा को मनात है 'प्रिय यात्रशोले मुञ्च मानमातदारोग्म्'। श्रीवृष्ण की प्रणय-याचना—'किमनय शयतले कुरु वामिनी चरण नतिन' विनिवेशम्' व प्रणय-दास्य म नन्लीनता तथा तमयना भेद में अभेद की कल्पना का अतुननीय स्वरूप 'गीत-गाविन्द' में प्राप्त होता है।

गीतगोविन्द में प्रयुक्त कामलकांत पदावली का दूसरा उदाहरण 'विश्व साहित्य में दुर्लभ ही नहीं—अचिंतनीय है। उपमा की कल्पना, उ प्रेशा की उडान के साथ प्रेम की उन्मत्त भावना का वैशिष्ट्य काव्य में छाया हुआ है। अनुप्रास प्रयाग में कवि अपनी सानो नहीं रखता। ललित छंद एवं माधुर्य गुण का मणिकाचन सयाग अनिर्वचनीय है। शब्द माधुर्य का अनूठे प्रयोग का उदाहरण—'ललितलवङ्गलता-परीशोलनकोमल मलयसमीरे' ये मिलता है। उनके काय को पत्कर उनकी विनय भरा गवोक्त का परिचय मिलता है—यदि 'हरि स्मरण सूरङ्गम यदि विलास कथासु कुतूहल ॥ कोमलकांत पद्ममली शृङ्खु तथा जयदेव पदावली।

गीत गोविन्द एक नवीन रचना प्रणाली का सूत्रपात करता है जिसके अनुकरण पर अनेक रचनाओं का जन्म हुआ जैसे अभिनव गीतगोविन्द, गीतराघव, गीत-गङ्गाधर, वृष्णगाता इत्यादि।

### (३) जलद्वार प्रधान महाकाव्य—

साहित्य गीतों का विकास पर युग के परिवेश का अमित प्रभाव पड़ता है। त्रियी काल का मायना युग का चेतना तथा सामाजिक रूपा, उस युग के साहित्य का विशिष्ट गीतों का आश्रय लेता का वाच्य करती है। इसीलिए कहा जाता है कि सा युग विशेष का साहित्य, उस युग का पवित्र प्रदशक होता है। इस

अनुगार विजय के उक्त-अल्प शब्द को संस्कृत साहित्य के इतिहास में परिवर्तन का युग माना जाता है। इस युग में कालीदास को मुकुन्दर मार्गों सरस एवं मधुर भाषा में जबरदस्त परिवर्तन हुआ। यह दोषी अमरकार एक पाण्डित्य प्रदर्शन की दुर्घट्ट भारता को सकर उद्भूत हुई। कल्पवृक्ष महाकाव्य का स्वरूप ही बदल गया।

इस समय वास्तविकता का मूल्य एवं 'काव्यशास्त्र' का व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा। कल्पवृक्ष भाषण का स्थान कलात्मक न ले लिया। एतदुत्तम कवियों ने अपने भाषणनामा का अमरकारिक एवं वैदिकयुग काल में ही अपने पाण्डित्य की इतिहास माना। इसमें हरकत अथ विषया पर विचार करना उनके लिए असम्भव ही नहीं, अनिर्वाह सा ही गया। अतएव उनकी कविता में अथापुत्र पूर्वानुकरण एवं अमरुति का इतना आधिपत्य हो गया कि वह सामा का अनिर्गम्य करता हुई दृष्टि गोचर होता है। इस श्रेणी के काव्य प्रथा में भाव विषय की जगह, बुद्धि प्रदान का प्रधानता स्वाभाविक प्रवाह के स्थान पर कल्पना की उद्धान, अनुभूति के स्थान पर असह्य प्रथम का भावना दास पचना है। कुछ महाकाव्यों में काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा निर्धारित नियमों को इस प्रकार ठोसा गया कि रही सही विशेषता, भा जाता रही।

इस प्रकार निष्पत्त हम कह सकते हैं कि कालिदास के पश्चाद्भावी कवियों में भाषों का गुणन मौलिकता, सरसता तथा नवीनता सर्वथा नगण्य हो गयो। नियमों की श्रद्धा में आवृत्त होकर काव्य रचयिता काव्य के प्रमुख प्रयोजन रस की अभिव्यक्ति से सर्वथा पराङ्गमुख हो गये। शास्त्रीय मिथ्याता का प्रधानता न इन परवर्ती कवियों को स्वतन्त्र चित्रण के अयोग्य बना दिया। इस प्रकार के महाकाव्यों की शैली को काव्य शास्त्रियों द्वारा विविध भाग का मना प्रदान की गई। इस नवान प्रवृत्ति का शीघ्रमेव भारतीय के काव्य से होना है। यदि उन्हें इसका जन्मदाता कहें, तो अस्तुति न हागी, और आगे चलकर भट्टि कुमारदास माथ रनाकर इसके पोषक हुए।

भारवि (छठा शताब्दी) ने सुविख्यात महाकाव्य 'किराताकु नाय' की रचना की। इस काव्य का कथा प्रसिद्ध पाण्डवा पर आधारित है जो द्यूतक्राडा में हार कर अज्ञातवास करन जणत है और अन्त में कठार सप करके, शिव जी से पाशुपत नामक दिव्यास्त्र प्राप्त करत है। स्पष्ट है कि इस लघु उपारख्यान को महाकाव्य का आकार प्रदान करन के लिए भारवि ने नाना वणना का आशय लिया है। स्थान-स्थान पर साहित्यिक वैचक्षण्य उन समस्त सहृदयों के लिए असह्य हो गया है जो मना अहंकार

के म्यान पर काव्यात्मक विचार को ही ध्येष्ठ समझते हैं। अरन पाण्डित्य प्रदर्शनार्थ भारवि न ऐसे श्लोका की रचना की, जा आगे या पीछे से पढ़ने पर एक ही ध्वनि और अर्थ प्रदान करते हैं, या जिनमें एक ही व्यंजन (न) मात्र प्रयुक्त हुआ है।<sup>१</sup> किन्तु इन श्लोका में सुन्दर कल्पनाओं के अस्तित्व एवं बौद्धिक परिश्रम को अस्वाकार नहीं किया जा सकता—

“विधाम के लिए द्रुतगति से जाता हुआ मूय रक्त हा गया है, मानो प्यास होन के कारण अपना किरणा से कमल की मधुरता का बहुत अधिक पान कर लिया है।

भट्टि—

भट्टि कवि वृत्त 'रावणवध' काव्य में काव्यात्मक प्रेरणा पर पाण्डित्य प्रदर्शन को उग्र अनुभूति लक्षित होता है। यह बाईस सर्गों में रचित है। इसमें राम के जन्म से अभिषेक तक की कथा वर्णित है किन्तु कवि का उद्देश्य काव्यशास्त्र तथा व्याकरण व जटिल नियमा का व्याख्यान उपस्थित करना है। उनका काव्य उन लोगों के लिए एक दीपक के समान है जिनके नेत्र व्याकरण हैं किन्तु व्याकरण विना यह अंधे के हाथ में दीपक के समान है। इस काव्य को केवल विद्वत्तापूर्ण भाष्य के आधार पर समझा जा सकता है। कवि ने स्वयं कहा है—‘यह चतुर व्यक्ति के लिए ता मिष्ठात्र भोजनवत् है जब कि मेरे पाण्डित्य प्रेम के कारण मूर्खों को निराशा हा होगी।’ वास्तव में यह एक शास्त्रकाव्य है।

‘कुमारदास’

कुमारदास ने ‘जानकी हरण’ नामक विपुलकाय महाकाव्य की रचना की जो मौलिकता में दूर-अनुकरण एवं चमत्कार से भरपूर है।

रत्नाकर

कवि द्वारा प्रणीत ‘हरविजय’ ससृष्ट साहित्य का सर्वाधिक बृहत्काय काव्य माना जाता है। इसमें ५० सर्ग तथा ८३२० श्लोक हैं। काव्य शैवदर्शन नीतिशास्त्र कामशास्त्र इतिहास, पुराण, नाट्य, संगीत, जलस्कार तथा चित्रकला जैसे सभी विषयों में प्रकाश डाला गया है। काव्य कवि को गर्वोक्तियों से आक्रांत है। रत्नाकर ने इस काव्य के सेवा अकवि पाठक को कवि तथा महाकवि बनाने की प्रतिज्ञा की है।<sup>२</sup>

१ किरा० १५।१४

२ ०२।५, ने० ख०

इस प्रकार काव्य उनके पाण्डित्य में इतना बोधित हुआ उठा है कि उनके भाव-  
चमत्कार तथा प्रतिभावाणी उन्हीं की ही हैं ।

श्री हय—

श्री हय भी इस अलङ्कार गणना में प्रभावित हुए बिना न रह सके । परिणामतः  
उद्धान वाद में सभी में नैपथ्याद्यव्यक्ति नामक काव्य का रचना करवाना जानल-  
यमन्ता के प्रेम विद्या का क्या पर आश्रित है किन्तु यह काव्य श्री हय के पाण्डित्य  
का आगार है । आमन्त्राणा का पराकाष्ठा या वहाँ पहुँच गया है जहाँ कवि न अपने  
का अमूर्तानि चोला रचना का उत्पन्न करने वाला भारमापर बताया तथा हय मय को  
ना चार दिन में मूस ज्ञान वाला नदिया का उत्पन्न करने वाला पहाड़ के समान कहा  
है । उनकी विशिष्ट दृष्टि में मायकाव्य में पश्चिम शिक्षा शरणागत में प्रहृष्ट के अन्त का  
गुणना केन वाप बुझाटा का बनना के कारण रक्त वण का दिग्दर्शक पट्टी है ।<sup>1</sup>

काव्यज्ञान में जनक साहित्यिक कविता को जन्म दिया । द्रुतविलम्बित छन्द  
में यमक मय बचन । —हानि रघुराज के नवम मग में यमक शब्दों का यमकमय प्रयोग  
किया है किन्तु उक्त नीचे की ही प्रधानता है । पर उद्घन उत्तर कालीन कविता  
में इस प्रवृत्ति का ग्रहण कर यमक का गणना जाइय्यर युक्त प्रयोग किया कि रही सहा  
यमवत्ता भी जाता रहा । शब्द न कात्यायन में अनेक प्रकार के यमक के प्रयोग किये  
हैं । अष्टि में भी दशम मग में यमक अनेक प्रकार में युक्त लिखा है । पर  
अपर नामक यमक काव्य वाद में शब्दों में है । यमक काव्य का सर्वश्रेष्ठ निदान  
नात्रिवमन रचित काव्य कथं लघु काव्य है । इसमें पाँच मग १७७ शब्द हैं तथा  
चाथा मग यमकमय है तामर पर शब्द का अधिगार है । वासुदेव (१६ ई) वृत्त  
यधिष्ठिर विजय भी यमक का मुख्य निदान है ।

अलङ्कार गणना का विकृततम रूप नव प्रकट हुआ है अत्र कवि एक ही प्रयोग  
में दो-तीन नामक का कथा मुनान का न-पर हुआ जाता है तथा कर्मा-कमा तान-तान  
लक्ष्य भी एक ही शब्दों में आदि में अनेक तक निकलता है । इस प्रकार के श्लेषमय  
काव्या में स-यात्र न-दा का रामचरित अनिप्राधान्य मन्व्यपूर्ण है । धनत्रय का  
द्विम-वान विद्यामात्र के पात्रता दक्षिणार्ध अर्द्धत मूर्ति का राधव नयनाय  
कविगज मूर्ति का राधवपात्राया जाति इस दृष्टि में उत्पन्ननाय है । यमर्षी का गी  
में राज चामार्ण्य जाति का राधवपात्रायाय तथा शिष्य ममति का राधव  
पात्रवयायाय मन्व्य है । अतः समस्त गणना में पाण्डित्य प्रधान प्रभुय है तथा

कलाभिधायिनी 'गीण' है। अलङ्कार 'शैली' के अंतर्गत ही प्रहेलिका प्रधान काव्य भा निर्मित हुए।

इसी शैली के अन्तर्गत एक जोर प्रवृत्ति ने भी जन्म लिया जो अद्भुत एवं बड़ा हा विस्मयकारी कही जा सकती है जिसे हम 'चित्र काव्य' की संज्ञा दे सकते हैं। भीषण काव्य जैम युद्धादि के स्थलों का इन कवियों ने ऐसा चमत्कारकारी वर्णन किया कि वे शस्त्रा का आवार धारण करने लगे। इन कवियों ने वर्णा का ऐसा समुचित विन्यास किया, जिससे खड्गामुरज, कमलादि का जाकार बनन गया। इस क्षेत्र में रत्नाकर का हरविजय उल्लेखनीय है। इस काव्य में मुग्धबोध, मामूत्रिका-बोध सवतोभद्रबोध पद्मबोध इत्यादि सुप्रसिद्ध बोधा का प्रयोग तो हुआ ही है माय ही अखिलबोध, समजबोध, तूणीरबोध वीचाबोध इत्यादि प्रसिद्ध बोधा व चित्र भा प्रयुक्त हुए। भारवि माय की पद्धति के अनुसार य ब व युद्ध वर्णन के अवसर पर ही प्रयुक्त होत हैं। इसके अतिरिक्त भारवि-माय में द्वयशरबोध जहाँ केवल अनुपुभा में प्रयुक्त किया है, वहाँ रत्नाकर ने वसन्ततिलका, शादूलवित्रीदित, मन्दात्रा तर जैमे शीघ्र वृत्ता में प्रयुक्त कर अपन शब्द-कौशल का दर्शाया। आनन्दबोध को 'दवाशनक' श्लोके की 'वृह-कथामजरी,' अभिनन्द की 'रामचरित, अश्वघोष की बुद्धचरित, शशावतारचरित इत्यादि रमणीय चित्र काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

अन्त में कह सकते हैं कि इस अलङ्कार शैली में मुख्य तीन प्रकार के काव्य मिलत हैं—यमक एवं श्लेष प्रधान काव्य, प्रहेलिका प्रधान चित्रालंकारप्रधान काव्य।

कालिदास के काव्यों में तीनों का मजुल समन्वय एवं उनकी रसपयवसायिता—

महाकवि के काव्य में पूर्वोक्त विवेचित तीनों शैलियों का मजुल समन्वय मिलता है। उनकी कविता केवल अलंकार अथवा इतिवृत्त अथवा रस मात्र का हा आवरण पहन कर उपस्थित नहीं होती, वरन् त्रिधाराभा का अन्तर्भाव सज्जम प्रस्तुत करती है जिसका निर्वाह बड़ी ही सूक्ष्म वृत्त के साथ किया गया है। कोई भी कवि केवल कथानक कल्पना के बल पर काव्य सज्जना नहीं कर सकता। उसके लिए सम-अलंकार की सहायता लेना आवश्यक है। इसी प्रकार केवल अलंकार के सहान भी काव्य प्रणयन नहीं हो सकता, उमम कथानक रस का अस्तित्व होना आवश्यक है अन्यथा वह कृत्रिम और आडम्बर का भण्डार हो जायेगा। यही—स्थिति भावा के सम्बन्ध में भी है, कोरी भावनाओं के आधार पर रचित काव्य में शैलीपरिकल्पना का

आविष्कार हा जान पर वह पाठक के लिए अविश्वसनीय हो जायगा। अतएव काव्य में अलंकार-इतिवृत्त एवं भावा का सम्मिलित प्रयोग होना आवश्यक है। महाकवि कालिदास काव्य का इस कमीटा पर खर उतरते हैं। माधुर्य गुण का मधुर मन्त्रिवण, प्रसाद का स्निग्धता, पदा की सरस गीय्या, अथ का सौष्ठव एवं अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग इत्यादि कमनीय काव्य व ममस्त्र गुण महाकवि की कविता में अपना भव्य रूप धारण किए हुए हैं। उनका कविता का प्रधान गुण वष्य विषय तथा वणन योजना का मधुर सामञ्जस्य उपस्थित करना है। जिन भावा का जिन शब्दों द्वारा प्रकृत अधिक कनारमक एवं मन्त्रित जाता है व जिन भावा की उन्ही भावा द्वारा अनियमित कर अपना कना निपुणता का परिचय देते हैं। हम कह सकते हैं कि कालिदास का दृष्टि में कविता का कवि व निष्ठा काव्य के इन तीनों मुख्याङ्गों (रस भाव अलंकार कथानक) का समुचित जान देना आवश्यक है।

महाकवि कालिदास एक सवदनशाल भावुक कवि हैं। आचार्य जानन्दवधन ने ध्वनि प्रसङ्ग में कहा है— महाकविया का वाणी में ध्वनि ऐसा शाशित जाती है जिसे प्रकार वह लावण्य-जा युवता व जग उसक गठन स्वरग से सवथा निम्न होता हुआ ना, उमम ऐसा वनकता है जैसा मोत्रा में जाता। \* ठीक इसा प्रकार काव्य के विभिन्न अवयवा (अलंकार रस गुण वृत्ति) में भावा रसा का मौन्द्य अपना एक जनक हा अनिवचनाय स्थान रखता है। भावा का जैसा हृदयग्रान्ता और भाविक वणन कालिदास की कृति में पाया जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाव सौन्दर्य का ध्यानक परिधि में बल्पना भवण भावना, स्थायी और सचारीभाव रसानुभूति आदि का समावेश किया जा सकता है। यहाँ हम भाव सौन्दर्य के अन्तर्गत हृदय को रजित करने वाले उन सभी अनुभूतियाँ का समाविष्ट करेंगे जिनमें काव्य में राग-सत्त्व की पुष्टि होता है।

कालिदास का विश्वप्रसिद्ध काव्य मधुर भावा का गुणस्तोत्र है। यदा कदा सदा कथन में कवि ने विविध मानसिक भावा की अभिव्यक्ति अलंकारों के माध्यम से बड़ा कुशलतापूर्वक का है।

रघुवश इतिवृत्त प्रधान काव्य है। रघुवशा नृपा के चरित्र का मुख्यतः चित्रण होने के कारण कवि अत्यन्त भावुक हो गया है जिससे काव्य में भावा का अपूर्व समग्र दास पड़ता है साथ ही अलंकारों का सौन्दर्य भी स्वाभाविक रूप से वर्णित होता है।

कुमारसम्भव में भी कथानक भाव-अलंकारों के सम्मिलन का भव्य चित्र उपस्थित है। काव्य का पूरा कथानक ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि ने उसका अपनी समाधि दशा में साक्षात्कार किया था और काव्य प्रतिभा से उसे वाणी में उतारा, जिससे कुमारसम्भव कालिदास के आराध्य शिव का कालमय काव्य बन गया, उनका सारा इतिवृत्त कवि की प्रतिभा से जगमगा रहा है। अथ से ईत तक यह भावों का नदनवन लगता है। अलङ्कार स्वतन्त्र का अमराई भी भ्रमरा की भाँति लदबदा रहे हैं।

उन तथ्या व आचार पर हम कह सकत हैं कि कालिदास के काव्य में तीनों प्रकार की शैलियाँ का मुन्दर समन्वय हुआ है। मानव हृदय की परिवर्तनशाल प्रवृत्तियों के अध्ययन एवं उनका अभिव्यक्तीकरण में वह विशेष दक्ष हैं। लोक का वह गन्त अनुभव है और उन अनुभवा के मार्मिक पक्ष-ग्रहण करने में अपूर्व कुशल है। इसीनिष्ठ तो आनन्दवर्धन एवं जमन कवि गेटे ने कालिदास के भावों की उदात्तता एवं कमनीयता की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

एक भावुक हृदय के साथ-साथ कालिदास में कला शिल्प का गहन चिंतन विद्यमान है। उदात्त जपन काव्या में अपनी एक स्वतन्त्र काव्य शैली का निरूपण किया जा एक पूरे युग का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी रसमयी मुकुमारमार्गी शला सस्कृत साहित्य का अक्षुण्ण निधि है। कालिदास के काव्य में अलङ्कारों का भा समुचित प्रयोग हुआ है। साहित्य शास्त्र में अलङ्कार का रस-भावादि का उकारक शब्द-अर्थ का शोभावधक घम कहा गया है। शैली काव्य शोभा की जननी है। रस-भावादि के परिपुष्टि का प्रथम सोपान अलङ्कार है। अलङ्कार के लिए सरस वाक्य अपेक्षित है नीरस वाक्य विचित्रता का ही केवल उद्ग्रीव करता है। यद्यपि अलङ्कार रस-भाव में उत्कृष्टता लाते हैं तथापि रस-भाव सवत्र स्वतन्त्र अलङ्कार नहीं है। अलङ्कार रस भाव के बाधक नहीं पूरक है। अलङ्कार अर्थ का चमत्कारिक ढङ्ग से सुस्पष्ट करत हैं सुस्पष्ट अथ भावा को पुष्ट करते हैं तथा पुष्ट भाव, रस को अभिव्यजित करते हैं जिसे शब्दाय काव्यत्व को प्राप्त करते हैं।

रस-भाव के सम्राट कालिदास की कविता-कामिनी स्वल्प विरल किन्तु अनमाल अलङ्कारों से सुसज्जित है। यह अलङ्कार स्वाभाविक रूप में बलि कहना चाहिए स्वतन्त्र ही जा गय हैं। इसके अतिरिक्त अर्थान्तरयास प्रतिवस्तूपमा आदि अलङ्कारों में भी कवि ने उतना हाँसी दर्श भर दिया है।

कवि उपमा में सिद्धहस्त है। 'निदिनी गायं दिलीपं जीर सुदक्षिणा के मध्य वसी हाँ शोभायमान हो रही है जैसे अहनिशि के मध्य संध्या। इसमें कवि ने



नर्दिना गाय की सभ्या म उपमा देकर वण (रक्तज्ञा) साम्य प्रस्तुत किया। उनका उपमायें रमणीय भी हैं। 'स्वयम्बर मे इन्दुमती जिन जिन, राजाआ का छांता जाता है उनके मुख मण्डल निराशा की ऐमा कानिमा स दस्त जात थे जेमे राजमाग क उन महलों पर जिह रात्रि के समय आगे बदन वाली दोपशिखा पीछे छाडता चनी जाता है।' शास्त्राय उपमायें श्रुते रिवाय स्मृति स्वगन्दत' म दिमाई पढती है। उनवे काव्य म उपमाआ का विपुल भण्णर भरा पढा है। रघुवश म गङ्गा यमुना का उपमामय वर्णन विश्व साहित्य मे अपना स्थान रखता है।

उत्प्रेक्षाआ क उदाहरण मेषदूत म दशनाय है—'मेषाच्छादित आभ्रकूट का वणन मध्येश्याम स्तन इवभुव । द्रष्टात भा द्रष्टव्य है—सागरमुज्जिवा कुत्र मण्डन नाटानाम प्रियपु सीमाग्यफला हि चारुता, क्लेश फलेन हि पुननवता विधत्ते इत्यादि। अनुप्रास का उदाहरण 'वध्यायवदस्य शर गूरण्य में दिमाई पढता है। इन अलङ्कारा क मुन्दर प्रयाग से यह मालूम होता है कि कवि न अलङ्कार का प्रयोग भावा म सीप्रता एव उदर्क्य लाने क लिए किया विचित्रमार्गों कविया क ममान पाण्डित्यप्रदर्शन नहीं।

भाव-अलङ्कारों क सफन निवाह के साथ साथ इतिवृत्त का चारना भी लभित होता है—कालिदास इस तथ्य को अच्छी तरह समझते थे कि कोरा अलङ्कार-वादिता एव रमवादिता के बल पर काव्य कल्पना हो व्यय है। कथानक क अस्तित्व क बिना काव्य निष्प्राण हो जाता है। इसलिए कथानक काव्य का अपरिहाय अङ्ग है। काव्यशास्त्रिया द्वारा दिये गय महाकाव्य के लक्षण म दण्डी ने कहा है—'महाकाव्य की कथावस्तु कवि कल्पना प्रसूत न ढाकर किसी प्रसिद्ध आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर होना चाहिए।

इस दृष्टि से कालिदास के काव्यों में सजीवता पूरणरूपण विद्यमान है। रघुवश की कथा प्रसिद्ध रघुवशिया के कथानक पर आधारित है जिसके बीज इतिहास पुराण में मिल जाते हैं। कुमारसम्भव में भी भारतीय धमग्रथा म कथित शिव-पावती का सुप्रसिद्ध कथानक को प्रस्तुत किया गया है।

कवि न इन कथानको को, भी सरासन बनाकर रखा है आर व स्वय रमणाय अथ बनकर काव्य बन गये हैं—उसकी प्रमवदता एव नररुप मे कहीं मा गिथिलता लक्षित नहीं होती, सवाङ्ग दृष्टि से वे चुम्ब एव मुव्यवस्थित हैं।

मेषदूत की कथा अवश्य काल्पनिक है। इसका कारण यह है कि गातिकाव्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसकी कथा प्रसिद्ध एव ऐतिहासिक हो। काव्य-

शास्त्रियों के अनुसार—मानव जीवन के एक ही पक्ष का उद्घाटन अथवा किमा एक ही पटल का चित्रण, गीतिकाव्य का प्रतिपाद्य होना चाहिए ।' गीतिकाव्य के लक्षण की इस कसौटी पर मेघदूत खरा उतरता है। उसमें विरही यक्ष एव यक्षिणी की विरह अवस्थाओं के एक ही चित्र का वर्णन हुआ है। ऋतुवर्णन में तो ऋतुभा का ही चित्रण हुआ है।

इस प्रकार कालिदास के काव्य में कथानक का सौंदर्य भी उचित रूप में पाया जाता है। अतएव हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण सस्वृत महाकाव्या की समस्त विशेषता सम्पूर्ण कलात्मकता अकेले कालिदास की कृतियों में पायी जाती है। अलङ्कार-भाव-कथानक क्या नहीं है, उनके काव्य में। उनके ग्रन्थ में तीना ऐम घुन-मिल गये हैं कि उनमें उनका अलग अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। इतना ही नहीं इतिहास का पुट भी उनके काव्य में विद्यमान है। रघु के वश में किस क वाद कौन राजा हुआ इसका पर्याप्त ज्ञान हम रघुवश से मिलता है। उनके चरित्र, उनकी गतिविधियों, उनके धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक आदर्शों पर पूरा परिचय मिलता है। शम्भूक की कथा, परशुराम इत्यादि पौराणिक पुराणों की कथा जो इतिहास का मुख्य अङ्ग मानी जाती है, उनके काव्या में इतस्तत विखरी पड़ी हैं।

किन्तु एक महत्वपूर्ण एव मुख्य तत्त्व जो कालिदास के काव्य का प्राणतत्त्व है—रस-यह सर्वातिशायी है। उनके काव्य में अलङ्कारों का भव्य विन्यास कथानक की सूत्रबद्धता एव भावों की सजीव अभिव्यक्ति होते हुए भी—उनका पर्यवसान रस में होता है। वह छाटी सी बात भी कहते तो उसमें भी रसात्मकता अवश्य विद्यमान रहती है। किसी श्लोक को बाह्य दृष्टि से पढ़ने पर तो पाठक अवश्य उनका वस्तु वर्णन अथवा अलङ्कार वर्णन की प्रशंसा करेंगे, किन्तु उस श्लोक के अन्तर्गत में जान पर, उसमें किसी-न किसी रस का अस्तित्व अवश्य मिल जायगा। प्रकृति के वर्णन नगरी के वर्णन पढ़ने पर उसमें हमें वस्तु वर्णन की झाँकी दिखाई पड़ेगी किन्तु उसकी पर्यालोचना करने पर शृङ्गार अथवा अन्य रसा का पुट अवश्य मिलेगा। अलङ्कार एव वस्तु का तो रस में सदैव पर्यवसान होता है किन्तु एक आश्चर्य की बात यह है कि उनके काव्य में रस (अङ्ग) का भी पर्यवसान दूसरे रस (अङ्गीभूत) में होता हुआ दिखाई पड़ता है। रघुवश का अज विलाप, कुमारसम्भव के रतिविलाप के चित्रण में शृङ्गार रस मधुर अभिव्यक्ति होते हुए भी उसका पर्यवसान कर्ण रस में हुआ है। वास्तव में यह कालिदास की बहुश्रुतता एव महानायता का चरम परिपाक है।

महाकवि को रस सिद्ध कवि कहा जाता है। अलङ्कारशास्त्रियों ने ध्वनि के—वस्तु ध्वनि अलङ्कार ध्वनि एव रसध्वनि—यह तीन भेद किए हैं जिसमें वस्तु

अलङ्कार व्यंग्य हान हैं।<sup>१</sup> आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि 'यद्यपि व्यंग्य व्यञ्जक भाव अनेक प्रकार से सम्भव है तथापि काव्य नाटकादि प्रबंधों में रस को प्राधान्य देकर तद्गुण अलङ्कारों की यात्रना करना चाहिए। विश्वनाथ, मम्मट, पण्डितराज जगन्नाथ इत्यादि सभी कायशास्त्रियों ने रस को ही काव्य में सर्वोत्तम स्थान (कायारामा) दिया है।

साहित्यशास्त्र में शृङ्गार, वार कर्षण हास्य, रौद्र, मयानक, वामस अद्भुत और शांत—यह नौ रस मान गये हैं। इनमें से शृङ्गार (मयोज विप्रलम्भ) रौद्र, रमा का कालिदास के काव्य में मुख्य (अङ्गी) रूप से निर्वाह हुआ है। अन्य रस सहायक (अङ्ग) रूप में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु कवि ने इन समा रसा के वर्णन में अपनी वैदग्ध्यों का समान रूप से परिचय दिया है।

यह कहना निष्पत्तियोग्य ही होगा कि कवि ने छन्दों गुणरीतियों का वर्णन अपने भावा एव रसा के अनुरूप किया है। ये तत्त्व रस में गतिशान्ता लान के लिए प्रभूत-शक्ति प्रदान करते हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन करने के लिए कवि ने मदात्राता और प्रमाद गुण की यात्रना का है। कर्षण रस के लिए कवि ने वैतालाय छन्द का प्रयोग किया है। मानव हृदय का तथा प्रकृति का चंचलता का वर्णन करने के लिए कवि ने द्रतविलम्बित छन्द का ही चयन किया। रमा प्रकार गुडा के भाषण वर्णन में तुमुन छन्द को चुना। यह कवि को वृद्धिबन्धता का ही परिणाम था।

इन सबमें बल्कर कालिदास के काव्यों का एक मुख्य पैर और रह जाना है वह है श्वयात्मकता जिसने उन्हें महाकवि का मरणि में बैठा दिया। उनका भाषा का अभिव्यञ्जकता ज यथाशा का एक अनिवचनय अनुभूति प्रदान करता है। उनकी सबतो मुला प्रतिभा भारताय साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में उन्हें प्रथम स्थान प्रदान करना है। उन्होंने महाकाव्य गीतकाव्य नाट्यरचना—समा में अपना प्रखर बुद्धि का समान रूप से परिचय दिया है। उनके काव्य में भाव भाषा रस छन्द अलङ्कार गुण रति इत्यादि समा अनेक पूण साध्य के साथ उच्च ज्ञान पर विराजमान हैं। सम्मन है शक्यविषय एकमात्र नाट्यनैपुण्य अथवा चरित्र चित्रण में कालिदास से कुछ बच कर हों किन्तु भारतीय अर्थों के अनुसार काव्य की अंतरात्मा रस का जैसा पूण अभिव्यक्ति कालिदास के काव्यों में दृढ़ है वह वास्तव में अद्वितीय है। समा विज्ञानो न भुक्तकण्ठ स उन्नी भूरि भूरि प्रशमा का है। उनका काव्य-कला का असामान्य अभिव्यञ्जकता का देखकर ही ता आचार्य शिरामणि आनन्दवर्धन ने उन्हें महाकवि का उपाधि से विभूषित किया।

'येनास्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि ससारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्रा पद्यशा वा महाकवय इति गण्यन्ते।' ध्व०

## तृतीय अध्याय

# कालिदास के काव्य में रस-व्यङ्ग्य

रस-सिद्धान्त भारतीय काव्य मनीषियों एवं कलाविदों की महत्तम उपलब्धि है। रस शब्द मात्र में ही भारतीय मनीषी तथा कलाकार को हस्त-ग्री वद्धुरित होकर आनन्दोन्मत्त की तरङ्गा स मुखरित हो उठती है। काव्य के वास्तविक स्वप्न की तैवर भारतीय काव्य-शास्त्र में ब्रह्मवादादीतिवाद, ब्रह्मसत्तिवाद औचित्यवाद, ध्वनिवाद तथा रसवाद की धाराओं का उद्भव एवं विकास हुआ। इन समस्त धाराओं में ध्वनिवाद तथा रसवाद की दो धारार्ये अधिकाधिक दशकालजयी होकर अमरत्व को प्राप्त हो गयी हैं।

### रस शब्द का अर्थ—

भारतीय वाङ्मय में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रमण रस के अर्थ वैदिककाल में प्रारम्भ हुआ। आदि में यह शब्द किसी वस्तु के सार के लिए प्रयुक्त हुआ था और क्रमशः इस शब्द में भाव, मुख और जान द का बोध होने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् में जो ब्रह्मानन्द का वाचक था, वही काव्य-जगत् में ब्रह्मानन्द सहादर काव्यतत्त्व का वाचक हो गया।

### रस की परिभाषा—

भिन्न भिन्न काव्य-शास्त्रियों ने रस की परिभाषा भिन्न भिन्न प्रकार से की है। भरत का प्रसिद्ध रस सूत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति रस का परिभाषा के रूप में सबसे उद्धृत किया जाता है। यद्यपि भरत के सूत्र में रस का परिभाषा नहीं अपितु रस का निष्पत्ति की प्रक्रिया की ओर संकेत मिलता है किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्रों, रस की परिभाषा के रूप में इसी सूत्र को उद्धृत करते हैं। अतएव यह सूत्र रस सिद्धान्त का मूल बोज बन गया है। अस्तु।

'विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारों के संयोग से रस-निष्पत्ति (अर्थात् उनसे सम्बद्ध स्थायीभाव को आनन्दमयी अनुभूति) होती है।' इस सूत्र में मयाग और निष्पत्ति दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं और क्रम किसी भी आचार्य ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप में रस-

निष्ठा का आभावना प्रत्यापना की है। उनका समस्त विधान इहा ही शब्द का आधार पर है। अधिकांश विद्वान् यह स्वीकारते हैं कि गद्य का अर्थ है - विना स्थायाभाव के अनुसृत विभाव-अनुभाव तथा व्यभिचारा भाव का सम्मिलन। भरत ने स्वयं 'निष्पत्ति' शब्द का कोई व्याख्या नहीं की। प्रसिद्ध व्याख्याता आचार्य साठे या शंभुकुच भट्टनायक जानि न 'निष्पत्ति' का अर्थ अतः शब्द में व्याख्यान किया। भट्टनायक 'निष्पत्ति' का अर्थ 'उत्पत्ति' करते हैं अर्थात् उनका अनुसार अनुसृता गद्य में स्वयं ही 'उत्पत्ति' होता है। श्री शंभुकुच 'निष्पत्ति' का अर्थ अनुमिति करते हैं अर्थात् दास विभावानि द्वारा नट में स्वयं का अनुमान करना है। भट्टनायक 'निष्पत्ति' का अर्थ मुक्ति करते हैं अर्थात् शब्द विभावानि के सहाय में स्वयं का भाग करता है।

ध्वजनाथानां ज्ञानवधन न स्वयं का अर्थ माना तथा 'निष्पत्ति' का अर्थ अनिर्णय किया है। ध्वजनाथ के अनुसारा अभिनवगुप्त ने स्वयं स्वयं का अर्थ मानते हुए उद्यम 'निष्पत्ति' प्रकार का अर्थ प्रथमिनायक का नटानुसृत एव विभाव व्याख्या की। काठनाथ में आचार्य मम्मट विभवनाथ तथा पश्चिमतगत्र जगन्नाथ प्रादि सभी आचार्यों ने 'निष्पत्ति' का अर्थ यहाँ परिभाषा स्वीकार का।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में स्वयं का परिभाषा विविध हो सकती है। जो आचार्य स्वयं का विषयगत या अस्वयंगत मानते हैं—उनके अनुसार नाट्यशास्त्र में काव्य मन्द्य हो सकता है। उसका अनुभूति सामाजिक या पाठक का हृदय अनुभूति का रूप में होता है। नाट्यशास्त्र में भरत अलङ्कारशास्त्र नामक रचिताना कामन एव दण्ड तथा वक्रातिशास्त्र नामक के अनुसार रस का यही स्वरूप हो सकता है। इन आचार्यों के अनुसार स्वयं आस्वाद्य है।

जो आचार्य स्वयं का विषयगत मानते हैं व स्वयं का अस्वयं में नहीं अर्थात् स्वयं का अस्वयं में स्थापित करते हुए नाट्य मन्द्य या काव्यशास्त्र में अनित्य मानना-अनुभूति का ही स्वयं का अर्थ देते हैं। आनन्दवधन अभिनवगुप्त मम्मट विभवनाथ तथा पश्चिमतगत्र जगन्नाथ आदि आचार्यों का स्वयं का यही स्वरूप मान्य है। इस प्रकार आनन्दवधन में लकर अस्वयं यहाँ परिभाषा स्वयं का विभवजान-सी हो गया है। इनके अनुसार स्वयं स्थायाभाव का आनन्दमय आस्वाद्य रूप है।

रस का अर्थ—

स्वयं का प्रमुख दोन अर्थ हैं—विभाव अनुभाव एव व्यभिचारा भाव। इन सब का सामान्य गुणयोग से ही स्वयं-निष्पत्ति सम्भव बताई गया है।<sup>१</sup>

विभाव—

लाक मे प्रचलित हतु कारण अथवा निमित्त शब्दा क लिए रस-शास्त्र मे पृथक् रूप स विभाव' शब्द का ग्रहण किया गया है। शास्त्र मे वाचिक, आङ्गिक एव सात्त्विक अभिनय क सहारे चित्तवृत्तिया का विशेष रूप से विभावन अथवा ज्ञापन कराने वाले हेतु कारण अथवा निमित्त को 'विभाव' कहते हैं। 'विभावन' का अर्थ केवल ज्ञापन नही अपितु उसका अथ आम्वाद योग्यता तक पहुँचाना भी है। अतएव हम कह सकन हैं कि विभाव वासना-रूप मे अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अवस्थित रति आदि स्थायीभावा का आस्वादयोग्य बनाने हैं। ये दो प्रकार के होत हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन। चित्तवृत्ति विषय के विषयभूत विभाव को आलम्बन कहत हैं और उस निमित्त रूप यामया का जिमसे जागृत भाव अधिकाधिक उद्दीप्त होता है—उद्दीपन विभाव कहत ह।<sup>१</sup> आलम्बन क पुन दा भेद हाते हैं—विषय तथा आश्रय। रत्यादिभावा के जाग्रत होन म कारण स्वरूप विभाव ही विषय कहलात हैं तथा जिस व्यक्ति म स्थायी-भाव जागरित होत हैं वह उनका आश्रय होन म आश्रय कहलाता है।<sup>२</sup>

अनुभाव—

भावजागति के पश्चात् हान वाले अङ्ग-विकारा का अनुभाव कहत है। इनका व्युत्पत्ति के अनुसार (अनु पश्चाद् भाव उत्पत्ति ययाम् अथवा अनुपश्चाद् भावो यस्य सोऽनुभाव) स्थायी भावा के जागरित होन के पश्चात् उत्पन्न होने क कारण ह-हे कायम्य हा मानना चाहिए।<sup>३</sup> आचार्य विश्वनाथ ने रसोद्वाय का दृष्टि मे विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारा तीनों का हा कारण माना है।<sup>४</sup> षण्डितराज जगन्नाथ भा रस की अनुभावना कराने वाले कारणों को अनुभाव कहते हैं।

व्यभिचारी भाव—

व्यभिचारी शब्द मे वि + अभि + चर् धातु का योग दिखाई पडता है। अतएव वाक जङ्ग तथा सत्त्वादि द्वारा विविध प्रकार के रसानुकूल सचरण करने वाले भावा को व्यभिचारी अथवा सचारी भाव कहते हैं।<sup>५</sup> व्यभिचारा भाव स्थायी भाव के-

१ रसगङ्गाधर, पृष्ठ ३३

२ सा० कौ०, पृष्ठ ६

३ सा० द० ३।१३२-३३

४ सा० द० ३।१४

५ ना० शा० धी० पृष्ठ ८४

परिपोषक तथा उह रसावस्था तक पहुँचाने वाला होना है। अस्थिरता उनका विशेष गुण है। स्थायी भाव के साथ इनका सम्बन्ध वारिधि के साथ कल्लोला का सा है। उनका आविर्भाव विराभाव होता रहता है।<sup>१</sup> इसलिए उहे अचिर, अनवस्थित जन्म-वाला तथा सचारी भी कहते हैं। स्थायित्व के सहायक मात्र बड़े जा सकते हैं। 'काय प्रकाशकार' न स्पष्टत इह 'स्थायाभाव का सहकारी' कहा है।<sup>२</sup> इनकी सख्या तैंतीस मानी गया है।

स्थायी भाव—

स्थायी भाव मानव मन की सूक्ष्म वृत्तियाँ से सम्बन्धित जयवा वासना रूप से प्रमाना क चित्त म सदैव रहने वाले भावा को कहते हैं। कारण के अनुपस्थित रहने पर भी स्थायी भाव को सत्ता रहती है जब कि शेष भाव कारण के अभाव म निश्चय हो जाते हैं। ज्ञान्य म स्थायी भाव ही अनुकूल विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारा भावा के संयोग मे रस रूप प्राप्त करने म ममय होता है।

स्थाया भाव अपन विराधी अविरोधा कित्ता भा भाव स नष्ट नहा हात।<sup>३</sup> ये स्वय दूसर भावा का अपन में अन्तर्हित कर लेते हैं। अय भावा का अपन वशवर्ती कर लेते हैं। इनम चिरकालस्थायित्व आप्रबन्ध स्थायित्व अथवा अविच्छिन्न प्रवाह-मयता होती है। स्थायाभाव चवणीय एव आन-ददायी होत हैं। स्थायाभाव का वासनारूपता के सम्बन्ध म अभिनवगुप्त न सबप्रथम विचार किया, जिसका अनुसरण परवर्ती आचार्यों ने किया। भरत ने इनकी सख्या जाठ मानी है।<sup>४</sup> कालांतर म इनकी सख्या नौ दस तक पहुँच गयी। इनके नाम हैं—रति, शोक, हास उताह, क्रोध विस्मय जुगुप्सा भय तथा निर्वेद। निर्वेद यद्यपि एक व्यभिचारा भाव भा है किन्तु मात्त्विक निर्वेद (गानजय) शांत रस का स्थायीभाव माना गया है।

रस भेद—

मानव के अंतस मे जितने स्थायी भावा का कल्पना का जाता है उतने २१ काव्य म रसा की सख्या का गणना की गयी है। जेमा कि अभी कहा गया है कि

१ दशरूपक ४।७

२ काव्य प्रकारा ४।२७-२८ सूत्र ४३

३ दशरूपक ४।३८। सा० २० ३।१७४, रस० ग० पृ० ३१

४ अष्टौ नाट्ये रसा स्मृता ॥ नाट्य० २०

५ भरत नाट्यशास्त्र ६।१५ १६

आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में आठ रस<sup>१</sup> और आठ स्थायी<sup>२</sup> भावों की गणना की है। महाकवि कालिदास भी विक्रमोर्वशीय में 'अष्टरस'<sup>३</sup> का ओर संकेत करते हैं। भरत द्वारा आठ रस और आठ स्थायीभाव के सिद्धांत का समर्थन करने वाले कायाचार्य यह कहते हैं कि भरत 'शान्त' को रस के रूप में मान्यता नहीं देने और वे 'शम' अथवा 'निर्वेद' का स्थायी भाव के रूप में उल्लेख करते हैं। इस प्रकार भरत ने लेकर आचार्य भामह और दण्डी तक (शांत रस का छोड़कर) आठ ही रस का सिद्धांत काव्यशास्त्र में मान्य रखा।<sup>४</sup> आरम्भ में नाटक का प्रमुख उद्देश्य मोक्षजन ही था। अतएव शांतरस का सर्वाधिक विरोध नाट्याचार्यों द्वारा हुआ। शांतरस का सर्वाधिक विरोध करने वालों में नाट्याचार्य धनजय और घनिक प्रमुख हैं।

कालांतर में नाटक और काव्यलाव आध्यात्मिक तथा धार्मिक सदुपदेश देने के उत्कृष्ट माध्यम बन गए। रामायण-महाभारत से ब्राह्मणी परम्परा के महाकाव्यों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन कविता और नाटककारों ने अनेक धार्मिक काव्य और नाटकों की रचना की।<sup>५</sup> इस प्रकार जीवन में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) साधना के स्थान पर चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ-काम-मोक्ष) साधना का आदर्श प्रचलित होने पर साक्ष जीवन का चरम पुरुषार्थ माना जाने लगा। जीवन दशन में मोक्ष की महत्ता सर्वोपरि होने पर नाटक और काव्य के रसों में भी मोक्ष से सम्बन्धित 'शान्तरस' और शम अथवा निर्वेद स्थायीभाव को काव्य और नाटक में स्थान मिला।

उद्भट<sup>६</sup> प्रथम काव्याचार्य हैं जो नौ रस और नौ स्थायी भावों की गणना करने हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि 'उद्भट' ने ही भरत के 'नाट्यशास्त्र' में नौ रस, नौ स्थायीभाव तथा शान्तरस से सम्बन्धित श्लोकों को जोड़ दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि अभिनव से बहुत पूर्व ही उद्भट के समय तक 'शांत' को रस रूप में स्वीकार कर लिया गया था। रुद्रट ने नौ रसों की सख्या में 'प्रयान्' एक और रस को मिला लिया। अभिनव गुप्त ने रसों की सख्या पर विशेष विवाद नहीं किया, फिर

१ भरत नाट्यशास्त्र ६।१५-१६

२ वही, ६।१७

३ कालिदास विक्रम० ११।१८

४ एन० आफ० आर० पी० पृष्ठ २२

५ वी० राघवन दि नम्बर आव रसाज (१६४० ई०) पृ० २३

६ एन० आफ० आर० पी० पृ० १३



भा उहनि शान्त रस का नाट्य और काव्य दाना म प्रतिष्ठा का । आचार्य मम्मट भा शान्त का नवम रस स्वीकारत हैं ।<sup>१</sup> जमिनवगुप्त न यह भा सकत किया है कि कुछ विद्वान् तीन रसा की जोर बलना करने हैं—स्नेह, वात्सल्य और भक्तिरस, किन्तु उन्होने इनका पृथक् सत्ता स्वणत नही मानी ।<sup>२</sup> आचार्य हमबद भी इमा मत के समर्थक हैं ।<sup>३</sup>

आचार्य विश्वनाथ 'स्नेह स्यायाभाव क जास्वाद का वात्सल्य रस' मानत है ।<sup>४</sup> काव्यप्रकाशकार' न 'वात्सल्य और भक्तिरस का 'भाव'बनि' मे अतभूत कर लिया है ।<sup>५</sup> आचार्य मम्मट का यह मायता प्राचा परम्परा मे ता अनुप्राणित है ही साथ हा मुत्तिसगत भी है । वेम तो सहृदय का किसा भा चित्तवृत्ति का आस्वात् चमत्कारजनक प्रवात हा सकता है किन्तु उन सभा चित्तवृत्तिया क आधार पर यदि रस का गणना का जान लगेगा ता जनक रम हा जायगे किन्तु इस सत्या-गौरव स कोई काम भा न होगा ।

प्रबन्ध काव्य म रम मयाजन—

प्रबन्ध काव्य म विसा पात्र के जावन म सम्बन्धित घटनाभा का क्रमबद्ध चित्रण होता है । अतएव अनिवापत कवि को विषय मत हाना पडता है । यह सत्य है कि प्रबन्ध काव्य म कवि को रस चित्रण करन म विस्तृत आयाम या परिवेश मिलता है । किन्तु सहृदय कवि प्रबन्ध क समस्त अङ्गा (वस्तु चरित्र चिण, देशकाल, उद्देश्य) म अपनी अनुभूति का अनुस्यूत कर दवा ह इतालिए काव्य म निबद्ध वस्तु अथवा विषय एतिहासिक वस्तु या विषय से भिन्न हा जान हैं । वह प्रबन्ध वस्तु भी कवि की अनुभूति स रग जाती है । उसका बलना और अनुभूति स उसे एक कलात्मक रूप प्राप्त हाता है । इम प्रकार कवि वस्तु या विषय क प्रति न्याय करता हुआ भी अपनी रसामिव्यक्ति म कथानक स सहायता लेता है । फलतः सहृदय पाठक अथवा श्रोता भा उसम उसा प्रकार तन्मय हो जाता है जिस प्रकार कवि तन्मय हुआ था । महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्या म कवि का परिवेश बहुत लघु हाता है, क्योंकि उसम मानव जावन के एक पक्ष का ही चित्रण होता है । इमलिए कवि की चित्रना

१ का० प्र० सूत्र ४७ पृ० १३८

२ अमिनव भारती १।३४२

३ काव्यानुशासन ।

४ सा० ३० ३।२५१

५ का० प्र० सूत्र ४८ पृ० १४०

जीवानुभूति होगी, जितनी उसक राग में सदस्यता होगी जितना उसके चित्रण में स्वाभाविकता होगी, जितनी उसके शब्द चित्रण में वाक्यमयता होगी उतनी ही उसके कान्य में सजावना आयेगी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य में रस की सत्ता अनिवार्य है। रस-वादिना व अनुभूति बिना रस वर्णन के काव्य निष्प्राण, वृद्धिम और अस्थायी हो जाता है। भामह का मन है कि 'काव्य' का उद्देश्य केवल एक ही है—आनन्द।<sup>१</sup> काव्य में रस की प्रधानता का उपदेश करत हुए आनन्दवर्धन ने स्पष्ट कहा है कि—प्राधान्य कवि का प्रवृत्ति का निबन्धन रस बन्ध में ही होना चाहिए। इतिवृत्त-वर्णन उसका उपाय ही है, जैसे बालक चाहने वाले व्यक्ति के लिए दापशिक्षा।<sup>२</sup> मुकुटिका के व्यापार व मुख्य विषय रमादि हैं अतएव उन्हें उनके निबन्धन में सदैव अप्रमादी होना चाहिए।<sup>३</sup>

### अङ्गीरस तथा अङ्गरस—

प्रबन्ध काव्य में एक नायक व अतिरिक्त अनेक सहायक तथा उपनायक होते हैं और कभी कभी प्रतिनायक भी होते हैं। इसी कारण नायक, उपनायक तथा प्रतिनायक से सर्वाधिक अनेक स्थायीभावा पर आधारित अनेक रसों का समावेश होता है। उन अनेक रसों में से जो सर्वाधिक प्रधान रस होता है, वही अङ्गीरस की कल्पना माना जाता है और जो गौण होता है उसे अङ्गरस माना जाता है। काव्य में अङ्गीरस की कल्पना मूलतः भरत से ही प्रारम्भ हो जाती है। आनन्दवर्धनाचार्य ने भी इस बात पर विशेष बल दिया कि महाकाव्या में एक अङ्गीरस और अन्य सहायक रस होने चाहिए।<sup>४</sup> भामह "दण्डी, रुद्रट" आदि आचार्यों ने भी अङ्गीरस और अङ्गरस का विवेचन किया है।<sup>५, ६, ७</sup>

काव्य में कौन-कौन-सा अङ्गीरस होना चाहिए, इस विषय में विश्वनाथ

१ काव्यालङ्कार १।२ ।

२ ध्व० पृ० ३६६

३ ध्व० ४।५

४ ध्व० ३।२१, पृ० ४१५

५ काव्यालङ्कार १।२१

६ भा० १।१८

७ काव्या० १६।५

का महत्व है कि शृङ्गार रस, शांत रसात्मक रस को ईश्वर रस प्रधान रस महाकाव्य में हो सकता है ।<sup>१</sup>

(अ) कुमारसम्भव में अङ्गी रस—

'कुमारसम्भव' महाकवि कालिदास का प्रथम महाकाव्य माना जाता है । काव्य के नायक रस से यह ध्वनित हो जाता है कि इसमें कुमार कानिक्य के जन्म का कथा का वर्णन किया गया है । काव्य का मुख्य कथानक शङ्कर पावता के प्रेम-ध्यान तथा विवाह के माध्यम से विकसित हुआ है । काव्य के प्रारम्भ से ही कवि का मुख्य उद्देश्य शिव-पावता का सयोग कराना रहा है । इमनिष्ठ सम्पूर्ण काव्य-कालखण्ड में शृङ्गार रस का ही धारा प्रवाहित हुई है । यह शृङ्गार पूर्वराग में प्रारम्भ होकर प्रेम का समस्त अवस्थाओं का पार करता हुआ अन्त में (शङ्कर पावता के) सयोग (विवाह) में पर्यवसित हो जाता है । इमनिष्ठ प्राप्त जगत् कुमारसम्भव में प्रधान रस में अङ्गीरस शृङ्गार का ही स्वीकार करना चाहिए ।

साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने शृङ्गार को श्रेष्ठ तथा अधिक व्यापक स्वरूप में स्वीकार किया है ।<sup>२</sup> आलम्बनधन न मा उच्यते मधुर रस माना है (शृङ्गार एव मधुर पर प्रह्लादान्तरस) । शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है—सयोग<sup>३</sup> तथा विप्रसम्भ<sup>४</sup> । किन्तु दोनों ही अवस्थाओं में इसका स्थायित्व रति ही है जो विभाषा-नुभाव तथा व्यभिचाराभाव से पुष्ट होकर शृङ्गार रस रूप में प्रतिफलित होता है । नायक नायिका परस्पर इसमें आश्रय एवं आलम्बन होते हैं । उनमें परस्पर दशन कटाक्ष प्रस्वद, रामाक्ष, आश्रु, भ्रूविशेषादि आङ्गिक व्यापार अनुभाव कहे जाते हैं । इसमें तृतीया व्यभिचाराभाव होते हैं ।

'कुमारसम्भव' के नायक शङ्कर एवं पावती हैं । काव्य में एक बात अवश्य है कि प्रारम्भ के पंचम सर्ग तक पावती आश्रय हैं तथा शिव आलम्बन क्योंकि यहाँ तक के कथानक में शिव को प्राप्त करने के लिए पावती की ओर से प्रयत्न होता है, किन्तु पञ्चम सर्ग के उपरान्त (पावती-तपस्या सिद्धि के पश्चात्) आश्रय शिव ही जाते हैं और आलम्बन पावती, क्योंकि अब शिव को पावती प्राप्ति के लिए स्वरा हावी है । इस प्रकार उभयनिष्ठ होकर रति पूर्ण शृङ्गार योग्य बनती है ।

१ सा० सं०, ६।३१६

२ ना० शा० ६।४५ पृष्ठ ३००

३ सा० सं० ३।२६०, पृष्ठ १४८

४ सा० सं० ३।१८७, पृष्ठ २३३

शृङ्गार प्रधान होने के कारण कुमारसम्भव प्रेम-प्रधान काव्य है। सृष्टृत साहित्य के प्रेमाख्यान-प्रधान काव्या का अनुशीलन करने के बाद उनमें मुख्यतः चार प्रकार के प्रेम का स्वरूप समझ आता है।

प्रथम प्रकार के प्रेम की शक्ती हमें राम साता के जीवन में ललित होती है। यह प्रेम विवाहापरान्त स्वामाविक रूप में प्रारम्भ होता है तथा जीवन की विकट परिस्थितियाँ के आने पर और अधिक निखर उठता है।

दूसरे प्रकार का प्रेम गांधव विवाह के प्रसङ्गा में दखा जाता है। नायक-नायिका का अवस्मात् मिलन होना है और उनमें परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाता है फिर प्राप्ति के लिए व्याकुलता होती है। इस प्रकार की प्रेमकथा विवाह तक चन्ता है और विवाहोपरान्त उसका प्रसङ्ग ही समाप्त हो जाता है।

तीसरे प्रकार का प्रेम रत्नावली-प्रियदर्शिका इत्यादि नाटका में दृष्टिगाचर हाना है। वस्तुतः वह प्रेम नहीं बरन् वह रामाया के अन्त पुर में भोग विलास का चित्रण-मात्र है। इसमें प्रयत्न कही नहीं केवल फल योग है। उदयन सम्बन्धी प्रेमाख्यान में प्रायः इसी प्रकार का प्रेम मिलता है।

और चौथे प्रकार का प्रेम वह है जो चित्र-दशन, स्वप्न दशनादि से उत्पन्न होता है और फिर प्राप्ति के निमित्त प्रयत्न होता है तदनन्तर विवाह-चित्रण के साथ समाप्त हो जाता है जैसे—उषा अनिरुद्ध का प्रेम नल-दमयन्ती का प्रेम।

कुमारसम्भव' में भी वर्णित प्रेम चौथे प्रकार का है। इस काव्य के प्रथम मग में विमावरूप पावती के सौन्दर्य का चित्रण, शृङ्गार रस का उत्कृष्ट पापक है। क्योंकि कवि ने प्रायः उन्ही अङ्गा का वर्णन किया है जो यौवन के आनन्द पर अङ्गना में विशेष आवश्यक है उठने हैं जैसे मुख, स्मित, स्तन, कटि जङ्घा गति इत्यादि।

पावती की बायावस्था धीरे-धीरे व्यतीत हो गयी और उनके शरीर में यौवन फूट पडा है, ऐसा यौवन जो शरीर रूपा लता का स्वामाविक-शृङ्गार है जो मन्त्रि के बिना ही मन को मतवाना बना देता है और जो कामदेव का बिना फूलों वाला वाण है।<sup>१</sup> ऐसे अपूर्व यौवन का पाकर उनका शरीर उसी प्रकार निखर उठता है, जिस प्रकार तुलिका से ठीक-ठीक रङ्ग भरने पर चित्र खिल-उठता है और मूय की किरणों का सस्पण पाकर कमल खिल उठता है।<sup>२</sup> यौवन के भाट

१ कुमारसम्भव १।३१

२ कुमारसम्भव १।३२

३) ५५५५५

४) ५५५५५५५

५) ५५५५५५५

जैसे शुक। हुई जब वह हाव भाव में चलता है तो ऐसा प्रतीत होता है माना उनका बिछुआ में निकलने वाला मधुर ध्वनि का सीखने का लिए लनवाए हुए राजहंसान आना हाव-भाव भरा चान उह पहन हा मिला'गी २।<sup>१</sup> नाभि में प्रविष्ट रोमा की नया मूर्ध्म रेखा गसी प्रताप जाना है जैसे नीचा और मजला का मध्य जही मणि अपनी नीची प्योनि सिधेर रही हा।<sup>२</sup> उनकी कमर अति त्रग है और नवयोवन का कारण उदर पर पडा तान रमार्थे ऐसा प्रताप हाता है माना रामदेव का चरन का लिए नवयोवना ने मोपान बना रखा हा।<sup>३</sup> उनका घाटूले गिराय पुण्य में भी अश्वि मुकोमन है - "साणि ना कामेव न शिव म हार जान पर उनक मन में इहीं भुजाआ का पत्ता बनाकर पाल लिया था।<sup>४</sup> पावता का गान गान गुडोन श्रीवा तथा उनका उच्चस्वन पर पडा गान मानिया का द्वार तोर्ता हा एक-दूमरे का शामा वषक है।<sup>५</sup> पत्त रात्रि में चचनमना नदमा निवास हनु जब चन्द्रमा में जाता थी ता वह कमल की कामनता सोरभादि में वचित हो जाती था और त्ति में वमन में जाती था ता उम चन्द्रमा का मुखा में हाथ धाना पहता था किन्तु जब म पावता का मुख में बसी है तब म उमे दाता का आनन्द एक भाष प्राप्त हा जाता है। उनका रक्त हाठा २२ केना हुई मधुर मुम्बान का धवनिमा ऐसा प्यारा गगना है जैसे तान कोरना का मय्य श्वत पुण्य सिना हा अथवा स्वच्छ मूंगा का बाव जडा हा।<sup>६</sup> व जब मधुर वाणी बानती है तब ऐसा गगना था माना अमृत का घारा प्रवाहित हा उठा है।<sup>७</sup> बट बटे नत्रा का चितवन, अधिा म कम्पित नान कमला के समान चल हैं उह दक्षक ऐसा लगता है कि उह बला उन्हनि हरिणिया म सीधी है अथवा हरिणिया ने उनस।<sup>८</sup> उनका लम्बा मोहू बटे प्रपत्नपूर्वक माना लूलिका में बनायी गया हैं, त्रिस दक्षक कामदेव भा अपनी धनुष का मुन्तरता का जो घमण्ड लिए फिरता था—वह चूर चूर हो गया।<sup>९</sup>

१ कुमारसम्भव १:३४

२ कुमारसम्भव १:३८

३ कुमारसम्भव १:३६

४ कुमारसम्भव १:४१

५ कुमारसम्भव १:४२

६ कुमारसम्भव १:४४

७ कुमारसम्भव १:४५

८ कुमारसम्भव १:४६

९ कुमारसम्भव १:४७

उनके कथा की अनुपम सुन्दरता का दखकर हरिणियाँ भा अपने चँवरा पर इठलाना मूल जाती हैं ।

कवि द्वारा पावता का विश्व का सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चित्रित करना सकारण था—शायद यह थी कि विश्व का सृजनकर्ता ब्रह्मा जी पृथ्वी पर की सारी सुन्दरता समग्र रूप में एक स्थान पर देखना चाहते थे । इसीलिए तो उन्होंने सुन्दर अज्ञान माने बान सोन्दर की समस्त वस्तुओं को एक कर, बड़े ही यत्नपूर्वक उन्हें सब अज्ञानों पर यथास्थान सज्जित कर सुन्दरता की एकमात्र मूर्ति पावती का निर्माण किया था ।<sup>२</sup>

एक दिव्य सोन्दर का अविष्टानी पावनी एक दिन जब अपन पिता हिमालय के साथ बैठे थी, तो उसी समय कामचर नारद का आगमन होता है और उन्हें देखकर यह भविष्यवाणी करता है कि यह कथा अपन प्रेम स शङ्कर की एकमात्र अद्याङ्गिनी रनगा ।<sup>३</sup> नारद की यह उक्ति पार्वती के मन में शिव के प्रति प्रेम अकुरित करन के लिए शृङ्गार का उद्दीपन बनती है, जैसे अय प्रेमाख्यान में दूत, द्विज और बन्दीजना व वचन उद्दीपन का कार्य करने हैं । किन्तु महाकवि इतने से ही मन्मूट नहा होता । जिस भूमि में उसने प्रेम अकुरित किया है, उसको उस प्रेमाकुर के योग्य बनाने के लिए विविध पराक्षा लेता है । सबसे प्रथम तो यहाँ कि नारद जैसे देवपि की त्रिकालसत्य वाणी मुनकर भी पिता हिमालय को कवि इतना विनीत एवं निरभिमानी नहीं बनाता कि व अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को भूल कर कथा को लेकर शिव के पास पहुँच जाते और उसे शिव के चरणों में समर्पित कर देते । ऐसा करने पर न प्रेमाख्यान बनता, न भूति का योग्यता का पता चलता । अतः कवि कहता है कि 'हिमालय ने विचार किया, कि जब तब स्वयं महादेव जी कथा माँगने नहीं आते, तब तक अपने आप उन्हें कन्या देने जाना उचित नहीं । क्योंकि जहाँ सृजन लागू को निरादर का भय रहता है, वहाँ वे अपने काय में किसी मध्यस्थ की महायता लेते हैं ।'<sup>४</sup>

इस प्रकार आलम्बन का याचक रूप में प्रेम का आशय बनाने के लिए कवि न एक दूर की मजिल रखा है, जिस बीच प्रेमाग्नि में तपकर पावती ऐसी निखर उठगी कि परवर्ती प्रेमाख्यान के लिए आदर्श 'पति देवता' रूप में कही जायेगी । इसी प्रसङ्ग में शङ्कर को कवि इस रूप में सयोग में आलम्बन बनाना है जिसकी सारना

१ कुमार सम्भव १।४८

२ कुमार सम्भव १।४६

३ कुमार सम्भव १।५०

४ कु० स० १।५०

मो लोट व चन चवान है । तबिन दम्ने आग क्या हाता है । नारद न ता आग नग  
हो ग ।

पिता साधन-सम्पन्न थ । प्रलापय म उनका प्रतिष्ठा था । निरन्तर तपानान,  
स्वर्ग तपस्या का फल दन बान<sup>१</sup> भगवान् शङ्कर के तप म विघ्न न्न हान पर भा  
अपना पुत्रा का मुश्रूपा का अनुमति दन व विण राजी कर तत है । वस्तुतः  
प्रेमाभ्यास का साधन प्रदान करन के लिए हा कवि का बन्धना न यह कथानक  
कल्पित किया है ।

शिव धारणान नायक है । धार ना म्म कि अनिन्द्य मीन्य अमृतम मौवन  
निताउ एकान्त म उगामना व विर प्रस्तुत मुन्त्र का भा मुश्रूपा क लिए निर्विकार  
चित्त ग जाना दत है — क्याकि आ उच्छा धार महाभा हाता है उसका मत्र विकार  
उत्पन्न करन बाता वस्तुभा व बाध रहकर भा विचरित नही हाता । अत पावता  
प्रतिष्ठा नियमपूर्वक गिराग का पश्चिमा कर्ण गगता है । पावता वहाँ रहकर  
नियम म प्रतिष्ठा पूजा व विण प्ण चुनकर विधि स वदा का स्वच्छ कर नियम  
के लिए जन और कुग लाकर बिना यकावट व उनका मवा करन लगता है । क्याकि  
महादेव व मान पर बैठ हुए चन्द्रमा का तातन किरण पावता का यकान सदैव  
मिटाता रहता है ।<sup>२</sup>

पावती का यह परिषदा शङ्कर व प्रति प्रेम का अनुभाव रूप है त्रिसम प्रेम  
के प्रति उनका जास्या व्यक्त हाता है ।

इसा बीच देवता<sup>३</sup> म एक विशेष घटना घटता है त्रिसका सम्बन्ध सयोग स  
इन्ही दोना व्यक्तिया (शङ्कर-पावता) से है । इन्द्र का अना स मदन त्रि का पावता  
के प्रति स्नेहमय बनान के लिए प्रयत्न करन आता है क्याकि त्रि-पावता व सयोग स  
ही देवता<sup>४</sup> का सनासति टोम्र हा सकता है ।<sup>५</sup> इशलिए मदन रति-वसत्र का साथ  
लेकर पूर जाटान के साथ उम तपानन म प्रवण करता है जहाँ भगवान् स्वामु का  
आश्रम है और वहाँ वसत्र जन पूर मात्क प्रभाव के साथ व्याप्त हा जाता है ।

१ कु० स० १।५७

२ कु० स० १।५६

३ विकार हतो सति वित्रियन्ते यथा न चैतासि त एव धीरा ॥ १।५६

४ गिरिशमुपचचार प्रत्यह सा सुकेशो नियमितपरिवेदा तच्छिरस्चन्द्रपाद ॥ १।६०

५ अमो हि वीर्यप्रभव भवस्य जयाय सेनायमुत्तान्त देवा ॥ ३।१५

६ स मायवेनाभिमतन सख्या ररया च साराङ्गमनुप्रयात ।

अङ्गव्यपप्रायितकायसिद्धि स्यात्वाश्रम हेमवत जगाम ॥ ३।२३

मलयानिल बहने लगता है, सुन्दरिया के चरण स्पश की बिना प्रतीक्षा किए अशोक किसलय से आपूण हो उठता, (साल की मजरियों पर भ्रमरा की पक्ति इस प्रकार बैठी है मानो वह मदन का नाम लिख रही हो), कचनार, सुगन्ध न रहने पर भी अपने रूप सौन्दर्य से चित्ताकर्षित कर लेता है, पलाश के फाँके, लोहित पुष्प वनस्थला नायिका के शरीर पर नायक वसन्त द्वारा किए गए नखक्षत के समान दिखाई पड़ते हैं।<sup>१५</sup> रसान के अकुर का आस्वादन कर कपाय कण्ठ कोकिल, मधुर कूब करने लगा जो माना मानिनिया को मान छोड़ने के लिए मदन महाराज की आज्ञा है।<sup>१६</sup> इस प्रकार उस तपोवन के तपस्वी उस अकाल वसन्त समृद्धि को देखकर बड़े कठिनाई से अपने मन का वण म रख सके।<sup>१७</sup> और ता-और तियक एव सभी स्यावर-जङ्गम वसन्त के उस प्रभाव से विचलित हो उठते हैं। भारा अपना प्यारी भौरी के साथ एक ही फन की कटारा म मकरन्द पान करने लगा, काला हरिण अपनी हरिणी का साग से झुजलान लगा, जा उसके स्पश का सुग्न लेती हुई बैठी है। हयिनी प्रेमपूवक पराग सुवासित जल अपनी मूँड से निकालकर पिलान लगती है।<sup>१८</sup> कित्तर-राज गातो के वाच अपनी प्रियतमा के भुल का चुम्बन करने लगता है।<sup>१९</sup> वृष भी अपनी झुकी हुई डालिया का फैला-फैलाकर लताया का आलिङ्गन करने लगते हैं।<sup>२०</sup> किन्तु अम्भराशा के गात चृत्यादि भी शिव पर आशिर प्रभाव न डाल सके, क्योंकि शिव सच्चे योगिराज थे। इन बाह्य आकर्षण से वे तनिक भी विचलित नहीं होते और ध्यान में लीन रहत हैं क्योंकि जो अपने मन को बश में कर लेत हैं उसकी समाधि को कोई भङ्ग नहीं कर सकता।<sup>२१</sup>

वसन्त का यह सारा वणन उद्दीपन विभाव रूप में हुआ है।

इधर कामदेव शङ्कर का सेवक नन्दी की आँख बचाकर शिव के समाधि-स्थल में पहुँच जाता है किन्तु उनके दुग्ध रूप का देखकर मदन इतना भयभात हो उठता है, कि उसका हाथ से उसके धनुष बाण छूटकर बब गिर पडे उसे पता ही न, चल

१ दिग्दक्षिणा गद्यबह	३१४२५		
२ कु० स० ३१२६		३ कु० स० ३१२७	
४ कु० स० ३१२८		५ कु० स० ३१२९	
६ कु० स० ३१३२		७ कु० स० ३१३४	
८ कु० स० ३१३६		९ कु० स० ३१३७	
१० कु० स० ३१३८		११ कु० स० ३१३९	
१२ कु० स० ३१४०			



भवा ।<sup>१</sup> इसी समय पावता अपनी छतिया व साथ शिव-पूजा निमित्त बही जाना है । उता गगर लानमणि को भा सज्जित करने वाले अशोक क पता व मुनहर कर्णिकार के, उज्ज्वल मिधुवार क वासन्ती आभूषणों ता मुसज्जित है ।<sup>२</sup> प्रात काल व मूष व समान तान वस्त्र धारण किए हुए<sup>३</sup> तथा बटि म वसर-गुणा की मखला पहने हुए अनुपमय मुदरी पावता को दक्षर कामदेव को किंचिन् धेय मिलता है और उषता तुत शक्ति पुन जाग्रत हा उठती है ।<sup>४</sup> इसी समय पावता शिव को प्रणाम कर उनका अचना कर, उनके गले में कमल की माला पहनाता है और दधर कामदेव ठाक समय समक्षर अपना सम्मोहन नामक अबूक बाण धनुष पर चला लेता है ।<sup>५</sup> पावता का दक्षर महादेव व हृन्म में कुछ हलचल-सा हान लगता है और व पावती व विम्ब व समान रक्त ओष्ठा पर अपनी ललचाई आँसु डालन लगत है ।<sup>६</sup> परन्तु त कान हा मदादव जा साविधान हा जात है और इन्द्रिया का खलता का वध में कर लेत है । मन म उत्पन्न हुए विकार का कारण जानने व लिए - जब वह चारा और दृष्टिपात करत है तो दखते हैं, कि कामदेव वध अपना बाण उन पर चलान वाला है ।<sup>७</sup> तप म बाधा डालने वाले काम पर शिव इतना त्राधित हात है कि उनके त्रिनेत्र म अग्नि-बाला निकल पडती है और कामदेव तक्षण हा मस्म हा जाता है ।<sup>८</sup> यह दृश्य दक्षर पावता अपने रूप सौन्दर्य के प्रति बही ही सिन्न हा उठता है । किन्तु अनुराग सङ्ग को कामना इतनी प्रगाढ था कि वह तपस्या द्वारा शिव को प्राप्त करने का हृद निश्चय करती है ।<sup>९</sup> क्योंकि ऐसा निराला प्रेम तथा म्या निराला पति निना तपस्या व नहीं प्राप्त हा सकता ।

इस प्रकार तपोबल से शिव का प्रेम प्राप्त करने व लिए पिता द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-एश्वर्य ( भौतिक सुख ) का त्याग कर एक पूण तास्विना का वध धारण करती है । दर्शनश्रवणा पावती बहुमूल्य हार के स्थान पर प्रात वाच के मूर्य क समान लान बन्बल लपेट लेती है,<sup>१०</sup> तथा बेणी के स्थान पर लुहा बना लेती है ।<sup>११</sup> कमर में मूज की तिहरी भेषला तथा कोमल हाथों में रुद्राग की माला ले लेती है ।<sup>१२</sup>

१ कु० स० ३।५१

२ कु० स० ३।५३

३ कु० स० ३।५४

४ कु० स० ३।५५

५ कु० स० ३।५६

६ कुमार सम्भव ३।६५

७ कुमार सम्भव ३।६७

८ कुमार सम्भव ३।६६

९ कुमार सम्भव ६।७१

१० कुमार सम्भव ५।२

११ कुमार सम्भव ५।८

१२ कुमार सम्भव ५।६

१३ कुमार सम्भव ५।१०

गिता के शृङ्खल में पयच्छ पर शयन करते समय पुष्पो से अङ्गा के दब जाने पर सीत्कार कर उठने वाला पावती अब अपने हाथों का तर्किया बनाकर भूमि पर ही बैठे-बैठे सा जाती है ।<sup>१</sup> तप के समय वे ऐसी शांत दिखाई पड़ती हैं माना उन्होंने अपना हाव-भाव कोमल लताओं को एवं चंचल चितवन हरिणिषा का द दी हो ।<sup>२</sup> इस प्रकार पावती बड़े ही नियमपूर्वक अपनी तप-साधना प्रारम्भ करती हैं किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् जब इन प्रारम्भिक नियमों से तप में इच्छित सफलता नहीं मिलती तो वह अपने शरीर की कोमलता का विचार त्यागकर और भा कठोर तपस्या आरम्भ करती हैं ।<sup>३</sup> उनकी यह शारीरिक कोमलता तपस्या की आग में जलती हुई, शिव के प्रति उनके रतिभाव का और भी अधिक व्यक्त करती है । पावती ने मुनिया क समान कठोर धाना ले लिया ।<sup>४</sup> गर्मी के कष्टप्रद दिना में भी वह चारों ओर आग जला कर उसका बीच खड़ी रहने लगी तथा नत्र घातक सूर्य के प्रकाश को जीतकर भूय की ओर एकटव हा देखने लगी ।<sup>५</sup> किन्तु इस कठोर तप वेला में भी उनका मुख-कमल सूर्य की किरणों से तपकर कुम्हलाया नहीं बरन् कमल के समान खिल उठता है । यथाकि प्रिय की प्राप्ति का उनमें उत्साह है । वर्षा के दिनों में वह बरम हुए जल का ही पीकर रह जाती हैं तथा रात्रि में चन्द्र-किरणों से ही सन्तोष कर लेती हैं । इतना ही नहीं धनधोर वर्षा का श्लाघावातयुक्त रात्रियों में वह खुले मैदान में प्रस्तर षड पर ही पड़ी रहती हैं ।<sup>६</sup> पीय की रात्रियों में भी जब शीतल पवन तुपारपात करता हुआ प्रवाहित होता था तब पावता पूरा रात जल में बैठकर व्यतीत कर देता है और चक्रवा चक्रों का जोड़ा जो एक दूसरे से वियुक्त होकर करुण क्रन्दन करता है, उन्हें धैर्य बंधाया करती हैं ।<sup>७</sup> अब तक स्वयं झडकर गिरे हुए पत्तों को खाना ही तप की पराकाष्ठा समझी जाती रही किन्तु हमारी प्रियम्बदा ने तो उसे भी छोड़ दिया है<sup>८</sup> और अपर्णा बन गयी हैं । इस प्रकार अपने सुकोमल अङ्गों को तपस्या की आग में अहर्निश सुखाकर पावती ने कठिन शरार से घोर तप-सिद्धि करने वाले तपस्वियों की तपस्या को भी अवर कर दिया है ।<sup>९</sup>

पावता की उपयुक्त सारी चेष्टायें शिव के प्रति रति भाव की अनुभाव विभाव रूप ही कही जायेंगी । इस तपस्या से वैलाशपति की समाधि भी दहल उठती है और

१ कुमार सम्भव ५।१२

३ कुमार सम्भव ५।१८

५ कुमार सम्भव ५।२०

७ कुमार सम्भव ५।२५

९ कुमार सम्भव ५।२८

२ कुमार सम्भव ५।१३

४ कुमार सम्भव ५।१९

६ कुमार सम्भव ५।२२

८ कुमार सम्भव ५।२६

१० कुमार सम्भव ५।२९

य प्रज्ञाचारी यथा धारण कर तत्रावन म स्वय उपस्थित हाउ है, यथापि जभा मीलिक ( ११५ ) पराणा मना था । पावता बहा हा प्रदा म अनिधि न मकार कर तत्रावन म मदावन होता है । प्रज्ञाचारा आतिथ्य स्थाकार कर उनका कुशनोम पूछत है— ह दधि १ आरका इग तत्रावन म हवन याग्य शुमिधा कुशा तथा स्नान याग्य जल मिल जाता है न ? तथा जगन शरार का शक्ति क अनुसार हा तत्र कर रहा है न ? क्योंकि धर्म क त्रितन ना काय हैं उनम शरार ग्ना सबप्रथम काय है । पुन उपस्था का कारण जानते क निः पूछत है कि प्रज्ञा क वना म आरका जम हथा है । शरीर भी आरका त्रैतायानिगायी मुत्तर है घन का पूण मुग प्रम है फिर मा आरको तत्र परत का वना जायम्पकता था पना ।<sup>१</sup> यदि आर स्वग प्राप्त करन का इच्छा मे तत्र पर रहा है ता तत्रम्या स्वय है यथापि आरके विना हिमानय का त्रितना गम है उतन म ता तत्र त्रवता रहत है । और यदि आर माग्य पनि पान क निः तत्रम्या कर रहा है ना भा तत्रम्या स्वय है यथापि सशर म तत्र काई पुग्य नहा है त्रियको प्राप्त करन क निः आरका इतना कष्ट लेवना पडे ।<sup>२</sup> अर्था मह ता वनाग कि आर यह तत्रम्या क्व तक करना रहेगा । मीन प्रज्ञाचप का अवस्था म बहूत सा तत्रम्या इकट्ठा कर ग्ना है आर उसका आधा भाग उकर अना इच्छा पूरा कर तात्रिए विन्तु इतना रना दात्रिण कि वह पुद्य वीन है<sup>३</sup> ?

गिर क तन प्रग्ना म बहूत दवान पर भा पावता क प्रति अनुराग कही-कना पूर हा पडा है तथापि यह पनाणा-पग्न रतिमावना का जानन क त्रिण उपायन का काय करत हैं जेग अभि का वृषन क निः डाना गया पुन ।

प्रज्ञाचारा क त्रय आमायता पूण वचन का मुनकर पावती त्रिजित हो उठती है आर मुंह स कुछ नही कह पाती । अत्राग्व नेत्रा का किचिः पुमाकर सभी को चावन क त्रिण सकन करता है । यहाँ नेत्र टग करना अनुभाव तथा लज्जा भ्रमि-चारा भाव का मुत्तर व्यजना हुई है । तत्रम्या का कारण यथा डाग कहनाकर यहाँ पर कवि न तत्रा क अवगुष्ठन म आवृत्त पावता क मी इप वधन का एर बहुत बडा अदगर निहाला है जोर सखा मुधन पूवराग विप्रनम्म का मारी अवस्थात्रा का मामिक वणन विश्वस्त रूप म प्रिय के सम्मुख करवाया है । पावता तत्रम्या का कारण बताती हूँ मना प्रज्ञाचारा म कहना है—

१ कुमार सम्भव ५।३३

२ कुमार सम्भव ५।४१

३ कुमार सम्भव १।४५

४ कुमार सम्भव ५।५०

५ कुमार सम्भव ५।५१

“कामदेव न शिव वं टपू जा वाण चनाया, वह ता उनके हुड्कार भाय हा नीट गया, किन्तु मग्भीभूत हुआ, काम का वही वाण मेरी प्रिय सखी व हुय नगकर भारी घाव कर गया है” 1

यहाँ कार्यावस्था व्यग्य हा रहा है ।

‘तभी मे इनकी प्रेमाग्नि इनकी तीव्र हा गयी है कि वेजा म हरिचन्दन ल न्न पर ना तथा शिलागुण पर लेट रहने पर इन्हें किमी प्रकार बदन नहीं मिलता”

यहाँ सम्बन्धवस्था व्यग्य हो रही है ।

जब यह महादन जा र गात गान गगता हैं तो इनके वण स्वर्ग मुनव वनवामिना विन्नरा राजकुमारियाँ भी रोने लगती हैं ।<sup>2</sup>

यहाँ प्रलापनस्था व्यग्य हा रही है ।

रात्रि वं प्रथम प्रह्न म ही जाव गयी नहीं कि शीघ्र ही बादकर यह व चढाती हुई जाग उठती हैं कि—हे नालकण्ठ ! तुम वहाँ जा रहे हो और स्वप्न घामे म अपनी ब्राह्मण पैनाता है, माना शिव जा व कण्ठ म हाथ पाकर उह रा रहा हा ।<sup>3</sup>

यहाँ उन्मादावस्था व्यग्य हा रहा है ।

निद्रावस्था म ही उठकर यह स्वनिमित्त शङ्कर क चित्र का हा वास्तवि शङ्कर ममझकर उलाहना दन लगती हैं कि—“आप ता सबव्यापी है, फिर आप म हृदय का पाटा का बयो नहीं जान पाते—जा आपका सच्च मन से प्य करता है ।<sup>4</sup>

यहाँ प्रतिजति-अज्ञान अवस्था व्यग्य हा रहा है ।

भावा की इन उक्तियाँ में प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का मुदर चित्रण हुआ तथा इन अवस्थाओं के मान्यम म एक जनुमाधो द्वारा शिव-विषयक रति की मुत् यजना हुई है । जिस समय मत्वा तप के कारण का निवदन कर रही थी, उस समय मे शङ्कर व प्रेम भाव बहुत कुछ व्यक्त से हान लगे किन्तु अना का बिना व्यक्त किए व पावती म फिर पूछन हैं—‘क्या यह सत्य है अथ विना” ।<sup>5</sup> इसम शिर का उदकण्ठा अमियत होती है किन्तु अत्यन्त राज्ञाशी पावती कुछ बाल नहीं पातीं । कुछ क्षण पश्चात् लज्जा के कठोर आवरण की मे

१ कुमार सम्भव ५।५४

३ कु० सं० ५।५६

५ कु० सं० ५।५८

२ कुमार सम्भव ५।५५

४ कु० सं० ५।५७

६ कु० सं० ५।६२

कर किमा प्रसार बढ़ता है— यह सब मैं उन्हीं (गङ्गार) का प्राप्त करने के लिए कर रहा हूँ।<sup>१</sup> पावता के बचन सुनकर गङ्गार या पावती के प्रेम की परीक्षा करने के लिए शिव की बटी निष्ठा करत हुए बहते हैं— 'आप भा किम अपाय्य म प्रेम करने लगी। विवाह के मङ्गल-मृत म मुनिमित्त आगता यह आप गङ्गार के मय विप्ल हाथ का किस प्रकार छ सक्ता।<sup>२</sup> हृग छाया बुद्ध्या आर आ तपा रक्त का बूदें त्यक्ता साल पहन महान्त्य या का बौद्ध मय नहा हा मयता।<sup>३</sup> महाकर तप अपन पैरा का श्मशान का भूमि म बगे रनेगा।<sup>४</sup> मतवात हाथा का छात्रक वृत्त वैन पर वैरक जव आप पत्रिष्टुत्र त्रापता ता सभा आगता परिहास करेग।<sup>५</sup> श्रेष्ठ वर म आ गुण मात्र जात है उनम म एक गुण भा महान्त्य या म लगी है जलपव मङ्गल्य का पनि बनाना जासक विग उचित नहीं है। इग प्रकार (गङ्गार) मङ्गल्य या का मय प्रसार म अपाय्य सिद्ध करत हैं।

ब्रह्मचर्या के यह परीक्षा वासय स्नानार्थि का मधुर्नि कर्त म पट्टाव का काय करत है। यत् उद्घापन रूप म है जाय स्तम सवाग नाव श्राय का उच्य होता है।

ब्रह्मचर्या का अग्रिय उचित्या का पुनकर पावना प्राधारस्त हा उठता है। अनिष्टय श्राय के कारण वह कौपिन लगता है आर कठोर वचन कर्ता है।<sup>१</sup> जाय निश्चय हा मन्त्र्य या का भला प्रकार नहा जानत बसकि जा श्राय नाग हात है व मन्त्रमात्रा के असाधारण कर्षों का निष्पत्ताय उगत हैं।<sup>२</sup> अविचन जात दृग भा समस्त सम्पत्तियाँ उन्हीं के उच्यप्र हाता है। वह प्रताप्य स्वामा है। उनका वास्तविक स्वरूप ससार म कोई नहीं समग सक्ता।<sup>३</sup> ससार म अत्रित रूप शिवाई पन्त ह सब उन्हीं (शिव) के हैं इसलिए उनका श्राय गहला म चमकता हा अथवा सुपों म त्रिपटा हा, हाथा की श्राव धारण किए हा अथवा वस्त्र धारण किए हा गल म नस्त्रपाव की माना पहन हा या मस्तक पर चन्द्रमा धारण किए हा।<sup>४</sup> यह सब कुछ भा विचारणाम नहीं है कि व कैस हैं कैस नहीं हैं। उनके श्राय का स्पष्ट प्राप्त कर चित्त का श्राव भा पवित्र हा जाना है उनके श्राय म यत्त दुःख भम्म का दवगण ब्रह्म

१ कु० सं० ५१६३

२ कु० सं० ५१६८

३ कु० सं० ५१६६

४ कु० सं० ५१६७

५ कु० सं० ५१६८

६ कु० सं० ५१७०

७ कु० सं० ५१७४

८ कु० सं० ५१७५

९ कु० सं० ५१७७

१० कु० सं० ५१७८

थड़ापूवक मस्तक पर लगाने हैं।<sup>१</sup> खैर, आपन उन्हें जेसा सुना, वे वैम ही सही, परन्तु मेरा मन तो उही म रम गया है। जब किसी का मन किसी में लग जाना है, तब वह जनश्रुति पर ध्यान नहीं देता।<sup>२</sup> पावती के इन वचना से शिव क प्रति उनके एकनिष्ठ प्रेम की अभिव्यक्ति हाती है। उनका यह स्नह भावना मज्जिष्ठा राग की अवस्था तक पहुँच चुकी है और अब वह शिव का तनिक भी निंदा नहीं सुन सकता है। अतएव जब यह देखता है ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है तो वह अपना सखी से बहती है—इस ब्रह्मचारी के हाठ पडक रहे हैं और यह कुछ कहना चाहता है। इससे कह दा कि अब यह कुछ भा न बाने बयोकि जा बडा की निंदा करता है केवन उसे हा पाप नहीं लगता जो मुनता है उसे भा पाप लगना है।<sup>३</sup> इतना कहकर पावता चलन क लिए बड बग म पैर उठाता है किन्तु यह क्या ? परीक्षित का जगह स्वय आराध्य अपन वास्तविक रूप प्रकट कर मधुर मुस्कान सहित उनका हाथ पकड लत हैं।<sup>४</sup>

जब शिव का देखकर पावती व जा भाव उठे, उनको अभिव्यक्ति दन क लिए कालिदास की सारी काय प्रतिभा एक साथ मुखरित हो उठा है। ऐसा प्रसंग किसी महाकवि का अपन काव्य म देखन का सीमाग्र्य नहीं मिला है। भावो के सधि की यह मनोरम अभिव्यक्ति कालिदान की अनुपम निधि है। इय गङ्गा-जमुनी में जवगाहन कर सहृदय समाज अनंत काल तक आनन्दमग्न हुआ करेगा। शिव का देखकर पावती के शरीर म कँपकँपी छूटन लगता है जार वह स्वेद परिपूरित हो जाती हैं, उनके पैर वही रुक जान हैं तथा किन्तव्यविमूह हो न आगे ही बड पाती हैं न खडे ही रह पाती हैं।<sup>५</sup> शिव जी कहत हैं—ह मुदरा। आज से तुम मुझे तप द्वारा खरीदा हुआ अपना दास समझो।<sup>६</sup>

जैसा कि कहा गया है कि पावता-तपस्या प्रसङ्ग में सवत्र अनुभावा की ही अभिव्यक्ति हुई है। ब्रह्मचारी द्वारा तप कारण पूछने तथा शिव निंदा करना ये प्रसङ्ग उदापन विभावातगत बात है। पावती द्वारा ब्रह्मचारी को बुरा-भला कहना, वहाँ स उठकर जान लगना, तत्पश्चात् कँपकँपी छूटना, स्वेद प्रसवण होना, अनुभाव ह, जमूया, मोह, स्तम्भ, जडता व्यभिचारी भाव हैं। अब वियाग की कालरात्रि समाप्त हाता ह, संयोग तो हा ही गया, किन्तु अभा वियोग का ऊपाराल म हा दानो को

१ कु० सं० ५।७६

२ कु० सं० ५।८२

३ कु० सं० ५।८३

४ कु० सं० ५।८४

५ कु० सं० ५।८५

६ कु० सं० ५।८६

रचना काया । जेगा कि पश्य कहु पुत्र है—अथ आथय तदुत्तर एव आनन्दस्य वाचनी  
 ॥ अथा कथार तद माथया म पावता न गा तात् मिर का प्राप्त कर निवा किन्तु  
 उत साय म् हा यम प्राया उचित ॥ । तगा कथा पर उ कथय विव विमरात्र पूर  
 विवा का मताम हा तत् प्राया अतियु मागात्रिव र निवा का न उतपय प्राया है ।  
 मरिण व आना गुया क गुय म प्राय म कथाया है वि मय विवाह करन या न  
 करन वात मर निवा है । अत एवि आत गुमत विवाह करया कथा है ना पश्य  
 उनम जातर आया मात्रिय ।<sup>१</sup>

कानिनाय का मभा ताविकाय विव क एवि उताम प्रम क रान पर ना मराग  
 वा उ नपय न । कथना । तदु नगा न ना कथ मया प्रहाय कथा है - पोरव । प्रम  
 म व्यातुम हात पर ना है अत मा म कुय तता क गुयता । इम वात का  
 गुयकर मरुत आ का विवना तत् और विवना व्याहृतता ह्म हागा य कथय  
 उनका प्रमा ह्मय हा जात गता या । क पहा ही कथितनापूरक तथाम्बु  
 कथकर पावता का पर जात का अनुमति त है ।<sup>२</sup> त रथात् व यतपिया का  
 मरण करन है तथा उता विवा का शुभ-म ए विमरात्र क पाय म जात क  
 विव विमरात्र करन है । यतपियाय कथा प्रमथनापूरक विमरात्र क पाय जात है तथा  
 यदा विवमनापूरक भयथात् विव एव पावता क विवा क निव प्रायना करन है ।<sup>३</sup>  
 विमरात्र तथा विन का प्रया हा म ता थ हा अत कथिया का वात गुनकर एवत  
 प्रमम मान है । किन्तु यदुपुहम्य विवाह जेग शुभ वायों म पना का अनुमति नना  
 उचित ममता है अतएव क अतना पना मना म स्वाहृति मकर —अतना पुया  
 वा और दयन है किन्तु पावता कुय भा न कथर पुत्रया मिर नावा करत नात  
 कमन क पत्र गितन लगता है ।<sup>४</sup> कुमार ममभव का य एवय यदा हा मामिह एवं  
 यदुप ह्मय हायक ए रहा है । अत पूय विवा तथा मातपिया क ममम  
 पावता विव प्रहाय अत विवाह करन का वात क मकता है इमनिव व चुपचात  
 मिर नावा कर नती है और कमन क पने गितन लगता है । इमम विवा क प्रति  
 उनका स्वाहृति का अभिव्यक्ति हा जाता है । यती कमन पत्र गणना अयोमुभव  
 अनुमान तथा अवशिष्टा व्यभिचार भाव का गुण्य व्यजना हुई है ।

विमरात्र का अनुमति क पश्चात् विवा का विधि नात विन पश्चात् निगिन  
 हाता है । यह तान विन नगा मान युग है । शिवजा आ पावता का प्राप्त करन क निव

- |               |               |
|---------------|---------------|
| १ क० सं० ६११  | २ क० सं० ६१२  |
| ३ क० सं० ६१३  | ४ क० सं० ६१०८ |
| ५ क० सं० ६१०८ | ६ क० सं० १०४  |

अधीर ह, उनके लिए कवि न जान-बूझकर कर बीच में तीन दिन का समय रखा है।<sup>१</sup> भगवान् शङ्कर देवात्मा हैं, उनके लिए कुछ भी दुलभ नहीं। वह चाहते तो एक दिन में विवाह हो सकता था, किन्तु कवि पावता के साथ भी का समय 'याय (Poetic justice) करना चाहता है। जिस पावता न शिव को प्राप्त करने के लिए वर्षों घोर तप किया तथा कष्ट सहा उस पावती को प्राप्त करना सहज ही न था। उसे प्राप्त करने के लिए शिव का भी तपस्या करनी पड़ेगी, कष्ट सहना पड़ेगा, जिससे वह तपोरत व्यक्ति का व्याकुलता का अनुभव कर सके।

प्रेम में जब तक नायक नायिका दोनों में समान व्याकुलता नहीं होगी, तब तक उनका प्रेम अनन्य नहीं कहलायेगा। अतः शिव पावती की प्रेम-भावना में और अधिक निखार लाने के लिए महाकवि न विवाह के लिए तीन दिन का समय रखा। तभी तो वह कहता है— पावती जो से मिलने के लिए महादेव जो इतन उतावले हा उठे कि तीन दिन भा उठोने बड़ी कठिनाई से व्यतीत किए। जब महादेव जो जैसा (जिनि श्रया) का प्रेम में यह दशा होता है तब भला दूसरे ला। अपने मन को कैसे समाल सकते ह।<sup>२</sup>

वियोग की कठिन बला समाप्त हुई और विवाह का शुभ मुहूर्त आ गी गया। विवाह अवसर पर पावती के रूप-शुद्धार का एक बार पुन विशद चित्रण हुआ है। इस प्रसंग को पिष्टपेषण न समझना चाहिए। कुमार सम्भव में पावती का रूप वणन कई स्थान पर किया गया है, किन्तु सब जगह उसका आधार भिन्न भिन्न है। यहाँ पावती के मौल्य वणन विवाहयोग्य बताने के लिए हुआ है, विवाह के समय मङ्गल स्नान करने से पावती का शरीर अत्यन्त निमल हो गया है तथा विवाह के वस्त्र पहन हुए वह स्वच्छ तथा वास के पुष्पो से आच्छादित पृथ्वा के समान मुषो-भित हो रही है।<sup>३</sup> स्त्रियो न अगर चन्दन के धुएँ से उनके बाल सुखा कर बालो में पुष्प गूँच दिए, पुष्पा का माला जूँ में लपेट दी,<sup>४</sup> शरीर पर अङ्गराग लगा लिया तथा लाल वण गोराचन से उनका शरीर सज्जित कर दिया।<sup>५</sup> कानो में लटकते हुए जो के अक्षर तथा लौघ्र पुष्प एक गाराचन लगे हुए उनके गारे-गौर गाल बडे ही आरूपक प्रतीत हात हैं। स्वणाभूषण धारण कर पावती का स्वाभाविक मुदरता तो द्विगुणित हो उठता है। अपने इस सजाल रूप को दपण में देखकर स्वयं पावती

१ कु० सं० ६।६३

२ कु० सं० ६।६५

३ कु० सं० ७।११

४ कु० सं० ७।१४

५ कु० सं० ७।१५

६ कु० सं० ७।१७



ओ टगी-पी र? जाया है' और निरय म मिलने क लिए उतारया हा उटती हैं ।<sup>१</sup> महा पावती द्वारा उतारया हो उठना इत्यादि अनुभाव तथा औत्सुक्य विस्मय अभिचारा भाव को मुन्दर श्यत्रया हुई है । कातिनाम क शङ्कर भी सौन्दर्य मे पावता से किया प्रकार कम गये । शृङ्गार क लिए लाया हुई धामप्रिया के रूप मात्र से ही उनके शरीर पर सगी विजा की भस्म अङ्गराग बन गया, कपन हा गल क आभूषण बन गय, हस्तिचम ही दूध बन गया । मस्तक पर स्थित त्रिनत्र हा हरतान का मुन्दर तिलक बन गया, चन्द्रमा हा चूडामणि बन गया ।<sup>२</sup> अङ्गा पर स्थित सग उन-उा अङ्गा क आभूषण बन गय । मस्तक मे स्थित चन्द्रमा चूडामणि बन गया ।<sup>३</sup> जा उाकी अङ्ग की विवृतिमा था वे सब उनक सत्य मुन्दर विरूप का और मनारम करन के लिए अलङ्कार बन गयीं । बाराव लक्ष शङ्कर बडे धूम धाम म इन्द्रप्रस्थ की आर प्रस्थान करते हैं । घर क उय अप्रतिम रूप का चला जन जन म हा रहती है । पीर त्रियां हा उनके रूप सावण्य को दमकर अपनी मुध-बुध ही भुजा बैठता हैं । हिमवान बडे ही आदरपूर्वक उनका सरकार बरन हैं तथा सबक गण शिव का पावती क समीप से जान है ।<sup>४</sup> जेस शरद क आन पर लोग प्रसन्न हो जान हैं वैस ही चन्द्रमुख वाली पावती को दमकर शङ्कर क नय रया कुमुद लिल उठन है । पावता तथा शङ्कर जी के नेत्र कुछ क्षण क लिए मिलकर फिर हट जात हैं और इस प्रकार एक दूसर को देखकर उनके हृदय म बडा लग्जा जाती है ।<sup>५</sup> इसा वाच पुरोहित न पावती का हाथ शिव के हाथ म रख दिया । हाथ पकडन हा पावता रामाचित हो जाता है और महादेव जो की अंगुशिया स भा प्रसवण हान लगता है ।<sup>६</sup> अग्नि क चारा आर जब वे परिक्रमा करने लगन हैं तब एक दूसर को छून क कारण पावती एव शङ्कर जी मालि मूँद कर उस रूप का आन लने लगत हैं ।<sup>७</sup> शिव पावता क सारिवक भावा से उनका परस्पर रतिभाव बडे मनारम दन्त स अभिव्यक्त हुआ है ।

परस्पर नय मिनन गात्र स्पश पछाना छूटना, तथा रोमांचित होना इत्यादि अनुभाव हैं—हर्ष मोह बाडा इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं ।

विवाह परचाय अब शिव-पावता की रति (भाव) समोग म परिणित हा जाता । कवि न उनक समोग शृङ्गार वणन को बडे हा व्यापक रूप स किया है । कुमार

१ कु० सं० ७।३२

२ कु० सं० ७।३३

३ कु० सं० ७।३३

४ कु० सं० ७।३४

५ कु० सं० ७।७४

६ कु० सं० ७।७५

७ कु० सं० ७।७६

८ कु० सं० ७।८०

सम्भव का अष्टम सग ससृत साहित्य का समाग शृङ्गार छत्रकता घट कहा गया है। इस सग व प्रारम्भ में ही कवि पावती का चित्रण मुग्धा नायिका<sup>१</sup> रूप में करता है। एकान्त में जब कभी शिव जी उनमें कुछ पूछते हैं तो वह लज्जा के कारण कुछ भी नहीं कह पाती।<sup>२</sup> जब व अचल खींचने हैं तो वह भागने लगता है। जब वह आलिङ्गन करता चाहते हैं तो वह शांत बंठा रहती है तथा जब चुम्बन करना चाहते हैं तो अपना अघर ही उनकी ओर नहीं बढ़ाता। एकाएक जब शिव जी उनके समक्ष आ जाते हैं तो वह भयभीत हो घबरा उठती है। अकेले में जब शिव जी उनके वस्त्र याचने हैं तो वह दोनों हाथों में उनके नेत्र बंद कर देता है।<sup>३</sup> जब दपण में वह अपने शरीर के सम्भोग विह्वला का देखती है तब शङ्कर जी की छाया पड़ते ही बड़ी लज्जित हो उठता है।<sup>४</sup>

यहाँ शिव की चेष्टाएँ अनुभाव रूप में तथा पावती की चेष्टाएँ उद्दीपन रूप में अभ्रम, चलना ब्रीडा व्यभिचारी भाव हैं।

धीरे-धीरे पावती का मुग्धात्व मिटने लगता है और अब ईपत् प्रगल्भा मध्या नायिका<sup>५</sup> का स्वरूप पूणतया स्पष्ट हो जाता है। अब उनकी सारी सकोच और विश्वक समाप्त होने लगती है। जब शिव जी उनका आलिङ्गन करते हैं तो वह प्रसन्न होती है—अघर चुम्बन करने है तो वह अपना मुह नहीं हटाती और जब उनका मेखला याचन है तो वह आधे मन से ही उनका हाथ रोकती है। थोड़े ही दिनों में उनकी गतिविधियाँ से यह पता चलन लगता है कि वे आपस में घुल-मिल गये हैं तथा उनका प्रेम अब 'शूठमितरतराश्रयम्' हो जाता है।<sup>६</sup>

शृङ्गार के इन स्थला पर अनुभावों व्यभिचारियों की ही छटा सबत्र व्यजित होता है। बाच-बीच में प्रकृति का रम्य चित्रण नायक-नायिका के प्रेम में अधिक तात्रता जाने के लिए उद्दीपन विभाव रूप में किया गया है।<sup>७</sup> इस सर्ग के सभी श्लोक अति शृङ्गारिक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने 'वास्त्यायन कामसूत्र' का गहन अध्ययन किया है। सर्गान्त में तो पावती का वह रूप समक्ष आता है जो उस 'स्मराधा प्रगल्भा' की कोटि में रख द्योता है<sup>८</sup> और अघर शङ्कर भी दक्षिण नायक के समान उह सब प्रकार से प्रसन्न करते रहते हैं।<sup>९</sup>

१ दशरूपक २

२ कुमार सम्भव ८।२

३ कु० सं० ८।८

४ कु० सं० ८।७

५ कु० सं० ८।११

६ दश रूपक ३।१८, पृ० २०३

७ कु० सं० ८।१५

८ कु० सं० ८।३०-७३

९ प्राथि कु० सं० ८।७६ ८०

१० कु० सं० ८।१६

यहाँ वह स्थान है जहाँ त्रिसप्त वारण साहित्य के आचार्यों ने कवि द्वारा वर्णित सद्गुरु पापना के रति-वर्णन के अनौचित्य प्रवाह पर जगुना उठाया है।

इन प्रकार हम कह सकते हैं कि कुमार सम्भव में दाम्पत्य प्रेम का विशद व्यञ्जना हुई है किन्तु शृङ्गार गायना के शुद्ध एवं विलासमय चित्रों का भावना नहीं है। विनाश के हाथ चित्र जो कहाँ कहाँ पूज्य भावना मिश्रित हैं विरमात्मा शिव के प्रति भक्ति भावना के लिए विघात सिद्ध होते हैं। फिर भी 'कुमार सम्भव' में शृङ्गार का साक्षात्कार चित्रण परम्परा विर्याह के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। शृङ्गार का वाद भी मनोरम एवं कवि का यह ध्युत लगना न छूटने नहीं पाया है। इस काव्य में कानिदास ने शृङ्गार-वर्णन में जो स्वाभाविक-सफलता पायी है वह उनकी अपूर्व प्रतिभा से ही नहीं है। इसका एक यह भी कारण है कि कुमार सम्भव उनके आराध्य का चरित्र चित्रण था अतः उनका मन ही आरमा भाव से उठा था और उनकी प्रतिभा अनिश्चय मुगलिन ही उठी थी त्रिसप्त प्रत्येक वर्णन अपना चरम सामा पर पहुँच गया। न ऐसा नायिका का सी रूप ही उह मिला और न ही ऐसा नायक मिला जो मदन का शोभा ही और भी मदन शोभा ही। इसा ज्ञाक में सम्भवतः व संयोग शृङ्गार वर्णन करने के समान में भी कहीं-कहीं अनिश्चय कर गया और मर्यादा की रेखा भी पार कर गया किन्तु इसमें कवि का भावुकता प्रतिशय ही कारण है और कुछ नहीं।

रघुवश में अङ्गीरस

रघुवश महाकवि कानिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस काव्य में महाकवि ने रघुवश में उदरप्र महाराज रघु का तथा उनसे चलने वाला राजवश का काव्यात्मक वर्णन किया है। यह सस्कृत साहित्य का जनाता तथा अनुाम महाकाव्य है। एक वश के अनेक नायक महाकाव्य के नायक के रूप में इसा काव्य में दखे जाते हैं। सम्भवतः इसा का दखकर बाद के साहित्यकारों ने महाकाव्य का यह लक्षण किया—

एकवशभवाभूया कुलजा बहुवोऽपि वा । सा० इ० ६।३१६

अनेक नायकों के चरित से आरूप होने हुए भी इस महाकाव्य का अर्थ से इति तक प्रधान रस वोर है और उसा के विविध रूप इसमें चित्रित हुए हैं। कोई दानवार है तो कोई युद्धवार कोई धम वार है तो कोई दयावार और कोई दान और धम दोनों में वोर है। इस प्रकार प्रत्येक नायक अपूर्व साहस निर्भीकता, शीघ्र एवं

शक्तिमत्ता से मुक्त हैं। उनका चरित्र में दान, धर्म, दया, कर्मणा, अनुग्रह इत्यादि उदात्त गुणा का अपूर्व संग्रह दिखाई पड़ता है। अस्तु

रघुवंश के प्रथम उपायक महाराज दिलीप धर्मप्रवण नायक हैं। इस महाकाव्य में दिलाप का वधन केवल रघुवंश के प्रवर्तक महाराज रघु के हेतु भूत नरुण के रूप में किया गया है। साथ ही उनके दिव्य गुणा का प्रशंसा इसलिए की गया है कि जिससे रघु के गुणा का महनीय स्नान स्वाभाविक रूप में प्रसन्न किया जा सक। जैसा कि कवि ने स्वयं कहा है—

रूप तपोऽस्ति तदेव धीय तदेव नैसर्गिकमुग्रतत्त्व ।

न कारणात् स्वात् विविधे कुमार प्रवर्तितो दोष इव प्रदीपात् ॥

इस प्रकार महाराज दिलीप के सत्त्वगुणा का रघु के दिव्य गुणा के बताने के लिए भूमिका रूप में हुआ है।

वशवर कोई पुत्र न हाने से महाराज अत्यन्त दुःखा रहता करता है अतएव पुत्र-प्राप्ति के लिए कृच्छ्र उपाय करने के लिए अपनी प्रिय पत्नी साम्राजा मुदशिणा सहित गुरु वशिष्ठ के पास जान हैं और उनमें अपने आगमन का प्रयोजन बताने हैं।<sup>१</sup> मुनि वशिष्ठ अपने दिव्य शक्तु द्वारा सभी कारणों को ज्ञात कर, दिलीप का अनिष्टा नदिना को भवा में पत्नी सहित तत्पर हो जान का उपदेश देते हैं।<sup>२</sup> महाराज उनकी आज्ञा का शिराधार कर वही ही निष्ठापूर्वक, मनमा वाचा-कर्मणा मुनि का होम धेनु नदिनी की सेवा में पत्नी सहित तत्पर हो जाते हैं।<sup>३</sup> पुत्र के लिए वह कठिन शारीरिक यातना को भी प्रसन्नतापूर्वक सहते हैं और गुरु की धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाला या के पाछे पीछे उसकी परछाई के समान लगे रहते हैं।<sup>४</sup> किन्तु परम अनाष्ट पुत्र-प्राप्ति का लाभ होने से पूर्व ही उनकी एक ऐसी परीक्षा होती है जिससे महाराज दिलीप अतिमानव के रूप में दिखाई पड़ते हैं। मायाविह गौ का क्रिया भी तब पर छाड़ना स्वीकार नहीं करता है। तब उनका क्षत्रिय धर्म जाग्रत हो उठता है और वे पुत्र-प्राप्ति के भी मूलभूत अपने शरीर को गौ के बदले में अर्पित कर देते हैं।<sup>५</sup> धेनु की प्राणरक्षा के लिए जब उन्हें न वश चाहे न राज्य, न स्वयं, न पितृलाक। धर्म की रक्षा के लिए महाराज अपने त्रिवर्ग का भी त्यागने के लिए तैयार हो जाते हैं।<sup>६</sup> गजा की एकनिष्ठ भक्तिभावना को देखकर नन्दिनी अतिप्रसन्न हो उन्हें पुत्रलाभ का अर्पण वरदान देती है।<sup>७</sup>

१ रघुवंश १।२५

२ रघुवंश १।२१

३ वही, ३।१

४ वही २।६

५ वही, २।५६

६ वही, २।२७

७ वही, २।६२

इस प्रकार यही आशय शिवाय एवं आनन्दन सिद्धे के उमर द्वारा गा का अपना हिमा का शिखर बनना उद्धारन विभाव है । सिद्ध का बर बनने के लिए गजा द्वारा बाण बनाने के लिए उत्तर होना भी छाहन के लिए करण यचना करना तथा वह रयाग करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा अन्य मात्र जहता पिन्ना आयादि व्यभिचारा भाव हैं ।

इस प्रकार नन्दिना के इस प्रसङ्ग में शिवाय के धमवार का उन्वयन स्वल्प व्यञ्जित होता है । ये ऐसे अनुरम वार हैं जिन्होंने मात्र में शिवाय के आवाहार का भा सुन्दर व्यञ्जना हुई है । कवि ने उनका आवा भाव का आनन्दन आवाचा गया गाय का वातर आशिवें बताया है जिस दत्तकर शिवाय का अह्लावावर्णानय उमर पटना है ।

शिवाय के परवान् गणा कीर महापुरुष अथ आवातु वश के मिहामन का स्वामी बनता है जो अपने नैर्गम्य गुणा से वश का कृता कर्ताता है क्योंकि महागज दिलाय ने नन्दिनी में अनन्य कीर्ति में सम्पन्न वश का कृता हा पुत्र रूप में माया था । रघु के वाराचित गुणा के कारण इन्वातुवश अथ रघुवश के नाम में चले पड़ता है ।

शिवन का प्रारम्भ हान से पूव हा कवि ने रघु के वार चरित्र को व्यञ्जना हेतु इनका पराम्भ करने काता युद्धवोर का स्वरूप समग्र उपस्थित किया है । इन्द्र द्वारा अपने पूव पिता था के अश्वमघ-यन का जख अग्रहरण कर लिए जाने पर कुमार रघु प्राणारक्त हो उठते हैं और उच्च गम्भार स्वर में इन्द्र को सलकारन हुए कहते हैं — 'ह देवेन्द्र ! विद्वाना का कथन है कि यन का भाग सबप्रथम आपको हा मिलता है और भर पिता को आपके लिए ही मन कर रहे हैं फिर आप उनके यन् त्रिया में विधात क्यों डात रहे हैं ।' 'ह त्रैलोक्य-स्वामिन् ! यन-कायों में विघ्नकता का दण्डित करना ही आपको शोभा देना है, किन्तु यदि आप ही यन में बाधा डालेंगे तो सुसार में धम तो ही हो बिलुप्त जायेगा । इसलिये, हे इन्द्रदेव आप भर पिता के यन का अश्व छोड दीजिए, क्योंकि वेद का माग दिव्यान वान महामाया को एसा कलङ्कित काय करना शोभा नहीं देता ।' 'रघु के इन गवपूण वचना को सुनकर इन्द्र आश्चर्य-चकित रहे जाते हैं और रथ घुमाकर कहते हैं — 'ह राजकुमार ! तुम्हारा कथन सत्य है किन्तु शत्रुओं से अपने यन को रक्षा करना यशस्विता का परम कर्तव्य है । मैं तो यन करने का जो विश्वप्रसिद्ध यश अर्जित किया है उस तुम्हारे

१ रघुवश २।५२

२ रघुवश २।६८

३ वही, ३।४३

४ वही ३।८८

५ वही ३।४५

६ वही, ३।४६

पिता निरस्तृत करना चाहते हैं।<sup>१</sup> हम दवगण जिन नामा से विश्वविख्यात हैं, उस सत्ता को वाई अय धारण नहीं कर सकता।<sup>२</sup> इसलिए हे कुमार ! तुम इस अश्व को छुड़ाने का प्रयत्न मत करो। सगर के पुत्रों के माग पर पैर मत रखो।<sup>३</sup>

उद्दीपन विभाव रूप इन्द्र के इन वचना को सुनकर रघु उत्साहित हो उठते हैं, और निमय हास्य महित इन्द्र से कहते हैं—“यदि आप का यहो दृढ निश्चय है, तो शस्त्र उठाइए। रघु का परास्त किए बिना आप सफल नहीं हो सकत।” यह कहकर रघु बड़ी तस्परता से अपन जचूक बाण से इन्द्र के वक्षस्थल पर प्रहार करत हैं।<sup>४</sup> पुन उस पराक्रमी रघु न स्वनामांकित एक बाण द्वारा इन्द्र की भुजा पर प्रहार किया<sup>५</sup>, और मयूरपङ्क वाले दूसर बाण से उनकी ध्वजा का काट दिया। ध्वजा भेदन हा जान म इन्द्र अग्रे क्रोधित हो उठत हैं माना किसी न उनकी सुर-राजपत्नी का हा शिर कशच्छेदन कर दिया हो।<sup>६</sup> इस प्रकार परस्पर विजिगापु रघु और इन्द्र का तुमुल युद्ध होता है जिस देखकर देवगण भी विस्मयावित हो उठते हैं।<sup>७</sup> इसी बीच रघु बडे कौशल के माय अपने अधचन्द्र बाण से इन्द्र धनुष का डोरा काट डालने हैं।<sup>८</sup> धनुष को डारा कट जाने पर इन्द्र क्रोध से तमतमा उठत हैं और वे जग्नि के समान दग्नीष्यमान वज्र से रघु पर प्रहार करत हैं।<sup>९</sup> वज्र स आहत रघु पृथ्वा पर गिर पडते हैं किन्तु क्षण भर म हा व पुन इन्द्र से युद्ध करने क लिए जा डडते हैं।<sup>१०</sup> कुमार की इस असाम वीरता को देखकर इन्द्र अति सन्तुष्ट होते है और कहते हैं<sup>११</sup>—‘मेरे कठार वज्र की असह्य चाट को सहन बाल, है राजकुमार ! मैं तुम्हारी वीरता म अति प्रसन्न हूँ। इस अश्व के अतिरिक्त, तुम्हारा जा भी इच्छित हो मुझसे माँगो।’<sup>१२</sup>

यहाँ वीर के आश्रय रघु हैं। इन्द्र आलम्बन विभाव हैं तथा इन्द्र द्वारा अश्व-हरण उद्दीपन विभाव है। रघु द्वारा बाण संचालन, भुजाच्छेदन, ध्वजाच्छेदन, धनुषभेदन,

- १ रघुवश ३।७७
- २ वही ३।५०
- ५ वही, ३।५३
- ७ वही, ३।५६
- ८ वही ३।५८
- ११ वही ३।६१
- १३ वही, ३।६३

- २ रघुवश ३।७८
- ४ वही, ३।५१
- ६ वही, ३।५५
- ८ वही ३।५७
- १० वही, ३।६०
- १२ वही ३।६२

तथा इन्द्र को मुझ के लिए आदारा इत्यादि अनुभाव हैं। अमय, चरनता, मन् इत्यादि व्यभिचार भाव हैं।

गुमार रघु योवन के प्रथम चरण में है। महाराज सिन्धु, अतः इष्ट योग्य और पूज्य गमय पुत्र पर गुरवराज का यत्ना का भार छोड़कर मुनिवृत्ति का अनुसरण करता है। धर्मार्थमा नातिन और गुणन प्रभातक महाराज रघु यदा पुनःपुनः न उत्तर योग्य राघव का यत्नान्त करता है। अतः प्रभु के आगमन पर, शुभ मुहूर्त में एक दिन राज्य का त्यागना रघु जिन पूज्य गौरवार्ति मन्त्रित तर्ग रघु दिग्विजय के लिए निकल पड़ा है। अथप्रथम व पूज्य सिन्धु में पठेका है। विजया रघु माग में स्थित विमा राजा में कर तकर उभे मुक्त कर दा है विद्या को सिद्धाया च्युत कर दन है और विद्या का मुझ में धर्म्य कर दा है।<sup>१</sup> इय प्रकार माग के गमना कर्त्ता का दूर करत हुए व मुझ दन पठेका है। सिन्धु मुझ दन के राजाभा न विजया रघु का जपानता को स्थावार कर जपन प्राणा का र ता करन।<sup>२</sup> फिर यद्वाय राजाभा का मा परास्त कर रघु महाराजागर् व दाया में अपना विजय जताका स्थापित करन है।<sup>३</sup> तत्पश्चात् व कतिज्ञ दन पठेका है। कतिज्ञ तर्ग अपना गण गना के माय रघु का दृष्टकर सामना करता है।<sup>४</sup> वि तु त्रिग प्रकार तापी के जप न राघवनिपक कर राजाभा का राघवनामा मितता है उमा प्रकार मन्त्रभा का वाण कर्ता में स्नात कर रघु को विजय-जन्मा प्राप्त होता है।<sup>५</sup>

तुष्य वार महाराज रघु मुझ के समय भा धम का अचल क्षण भर के लिए नहीं छाड़न हैं। उनका मुझ धम मुझ हाजा है और उनको विजय धम विजय होता है। उनके इय धार्मिक स्वल्प का व्यजना कवि न उह ' धमविजया तृण ' कहकर का है। रघु परास्त शत्रुभा के साथ भी सदम्भवहार करता है इसलिए कभी बनाए गए महद्द पवत के राजा द्वारा अधीनता स्थावार कर लन पर रघु उह स्वतन्त्र कर देन है और उनका राज्य उहें वास कर दन है।<sup>६</sup>

यही वार रस के आश्रय रघु है। विभिन्न राजगण आगमन हैं। रघु द्वारा उह परास्त करना, उलाह केंकता, सिद्धासन च्युत करना विजय-जन्माका पहचाना पुन राघव वास कर दना इत्यादि अनुभाव हैं।

१ रघुवरा ४।२६

२ वही, ४।३५

३ वही, ४।४०

४ वही, ४।४३

२ रघुवरा ४।३३

५ वही, ४।३६

६ वही ४।४१

७ वही ४।४३

पूरुव दिशा स्थित राजाओं का भलीभाँति दमन कर, रघु दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। जिस दक्षिण दिशा में महाप्रवारी सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है वही अधुण्ण तेज वाले रघु की प्रबल शक्ति के सम्मुख पाण्ड्य नरेश न ठहर सकें और व अपन सचिव धन को सचिव यश के समान रघु को भेंट कर देते हैं।<sup>१</sup> तत्पश्चान् रघु पश्चिम दिशा की ओर मुड़ते हैं किन्तु पहले से ही रघु के शक्तिशाली पराक्रम क वशीभूत वहाँ के राजा तो उनकी अधीनता स्वीकार कर उह पयाप्त कर ही प्रदान करते हैं।<sup>२</sup> रघु यवनिया के मुख-कमन पर आसव का मद न सह सके।<sup>३</sup> तत्पश्चान् घुडसवार राजाआ क साथ रघु का धनधार युद्ध होता है। किन्तु अजेय रघु के सम्मुख का<sup>४</sup> राजा नहीं ठहर पाता, और रघु अपने भल्लबाणा से शहद क छत्ता की भाँति यवना क सिर काट काट कर पृथ्वी पाट देते हैं।<sup>५</sup> पराजित यवनगण लोह के टाग उतार-उतार कर रघु के चरणा में अर्पित कर देते हैं और उनकी आना शिरो-धाय कर लेते हैं।<sup>६</sup> सिन्धु दश में, रघु शक्तिशाली हूणों का दमन कर<sup>७</sup> कम्बोज-निवासी राजाआ को भा अपने वश में कर लेते हैं और परास्व राजगण रघु को तुरङ्ग, द्रव्य और धन प्रभूत मात्रा में भेंट करते हैं।<sup>८</sup> इस प्रकार महाराज रघु तीन दिशाओं में अपनी विजय पताका फहरान के बाद अन्त में उत्तर दिशा की ओर जाते हैं। हिमालय पर स्थित पवतीय राजाआ के साथ उनका भयङ्कर युद्ध छिड़ता है। रघु की सेना बाण-वपण करती है तो पवतीय सेना प्रस्तर प्रहार करती है। और इस प्रकार जब लोह और प्रस्तर आपस में टकराते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है।<sup>९</sup> रघु निरन्तर बाण-वर्षा कर उत्तमव सकेत-नामक किन्नरा के छक्के छुड़ा देते हैं।<sup>१०</sup> पराजित पवतीय राजगण रत्ना का राशि रघु का भेंट करते हैं। वहा से रघु असम में पहुँचते हैं। उनका असह्य सेनाआ के पैरा में उठी हुई अपरिमेय घूल से सूर्य भी लुप्त हो जाता है।<sup>११</sup> उस भयकर घूल को देखकर भयभीत असम नरेश ने अपनी जिन गजा की सेना स बड़े-बड़े शत्रुओं का नाश किया था, उहीं गजा को पराक्रमी रघु को उपहार रूप में भेंट कर दिया।<sup>१२</sup> जिन प्रकार मत्त पुण्य-माला से अपने आराध्य की पूजा करता है, उसा प्रकार कामरूप क नरेश स्वर्ण-पीठिका पर स्थित रघु-चरणों की छाया की रत्ना

१ रघु वश ४।४६

३ वही ४।६१

५ वही, ४।६४

७ वही, ४।७०

८ वही, ४।७८

११ वही, ४।८३

२ रघु वश ४।५०

४ वही, ४।६३

६ वही, ४।६८

८ वही, ४।७७

१० वही, ४।८२



स जचना करते हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार विजयो रघु सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपनी राजधानी बनाया लोट आन हैं।

दिग्विजय के इस प्रसङ्ग में अधिकांशतः अनुभावा का ही विस्तृत विवरण दिया गया है। तन्-नद-दश निवासो नृप-गण आलम्बन विभाव हैं जोर उनके काय उद्योपन विभाव हैं। रघु द्वारा राजाओं पर बाण-बर्षा करना, परास्त करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा अमप वित्तक, मद इत्यादि व्यभिचारो भाव हैं।

युद्धवीर जोर धर्मवार के अतिरिक्त रघु क चरित्र का एक पक्ष और है वह है उनकी अपूर्व दान-वीरता का। विश्वजित् यम म सबस्व दान कर देने के पश्चात् रघु के पाम मिट्टा का पात्र हा शेष बच जाता है। इसा समय गुरुदक्षिणार्थी वरतनु शिष्य को म रघु के पाम आता है। यशस्वी रघु उनका विधिपूर्वक आतिथ्य मत्कार कर विनम्र स्वर म कर्त हैं— 'हे भगवन् ! आपके आगमन मात्र म मरा हृदय तृप्त नहीं हुआ है, इसलिये मुझे कुछ मन्वा करने को आना दाजिए।'<sup>२</sup> रघु क उगार वचना का सुनकर तथा उनक हाथ में मृतान्न देखकर कोरस के समस्त मनोरथ शिथिल हो जात हैं जोर व बटु चिन्तित स्वर से कहते हैं ' हे राजन् ! पूया क प्रति श्रद्धा आन वश का धम हा है और आप उसम पूर्वजों को भा अतिशयित करत हैं। मैं आपके पाम कुछ धन माँगन आया था किन्तु मुझे आन में कुछ विलम्ब हुआ इसी का मुझे खद है।<sup>३</sup> हे राजन् ! आपन अपना सब कुछ दान कर दिया है अब क्वल शरार हा आपके पास शेष रह गया है।<sup>४</sup> चक्रवर्ती होते हुए भी अकिञ्चन हाकर आप क्षाणकला वान चद्रमा क समान मुशीमित हो रहे हैं।<sup>५</sup> हे महाराज ! आपका कल्याण हा। अब मैं कही अयम से गुरुदक्षिणा का धन प्राप्त करूँगा। चातक भी निगलितजन मेघ स याचना नहीं करता।'<sup>६</sup>

कोरस क इन वचना को सुनकर रघु बडे दु खित हाते हैं। गुरुदक्षिणा क लिए याचक रघु क पाम से खाला हाथ लोट जाएँ यह यश के लिए तथा रघुराज के लिए भा अभूतपूर्व कलङ्क था। अब रघु कोरस मे प्रार्थना करते हैं कि हे द्विजवर ! आप जैसा श्रेष्ठ वदविद् यरे द्वार से निराश होकर लोट जाएँ—यह अत्यन्त अनुचित

१ रघुवरा ४।८४

३ वही ५।११

५ वही ५।१४

७ वही, ५।१६

२ रघुवरा ५।१

४ वही, ५।१२

६ वही, ५।१५

८ वही, ५।१७

है अतः आप दो-तीन दिन विश्राम कीजिए तब तक मैं आपकी दक्षिणा का येन-वेन प्रकारेण प्रबन्ध करता हूँ।<sup>१</sup> इस प्रकार दान की महती प्रेरणा से उत्साहित होकर रघु बुधर पर आक्रमण करने का दृढ़ निश्चय करते हैं,।<sup>२</sup> किन्तु रघु के शक्तिशाली प्रताप से भयभीत बुधर उनकी इस इच्छा को जानकर स्वयं ही रात्रि में उनके कोप में अप्रत्याशित धन-वर्षा कर देते हैं। हर्षित रघु वह सम्पूर्ण धनराशि कौत्स को दे देते हैं।

वस्तुतः यह दानशीलता की पराकाष्ठा है। याचक के मनोरथ स भी अधिक दान-दान वान रघु व दान की यह महनीय गरिमा है। यहाँ रघु आश्रय और बोध आनन्दन हैं। कौत्स का रघु के पास धन माँगने के लिए आना कि तु धन-प्राप्ति की कोई सम्भावना न देखकर अथ के पास जाने का इच्छा प्रकट करना, उद्दीपन विभाव है। रघु द्वारा उन्हें न जाने देना, बुधर के राज्य में चढाई का विचार करना इत्यादि अनुभाव है तथा विपाद, अमप, चिन्ता, वित्तक, श्लानि इत्यादि व्यभिचारों भाव हैं।

कौत्स के अमोघ वरदान से रघु का अज-जैसा पुत्र प्राप्त होता है। अज रूप, बल और वाय में अपन पिता के समान ही हैं।<sup>३</sup> अज के जीवन में, यद्यपि अतिलौकिक पिता व कुमार होने के कारण तथा पूर्व से ही पिता द्वारा दिग्विजय में समस्त भूमण्डल का अधिष्ठित कर लाने के कारण, प्रारम्भ में शीघ्र का प्रवाह कम दीख पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि परम वीर रघु में सवाङ्ग वीर रस का वणन करने के पश्चात् महाकवि रस में कुछ परिवर्तन चाहते थे, जिससे एकश्रुति (Monotony) या मनहूसियत कुछ कम हो। और वीर के पार्श्व में शृङ्गार ही सुशोभित होता है अतः कवि ने अपन अभिनव मनोनीत नायक अज के लिए, युद्धवीर के रूप में उन्हें चित्रित करना चाहते हुए भा, शृङ्गार की मनोरम पृष्ठभूमि की आयोजना की। इन्द्रमती स्वयंवर के लिए अज प्रस्थान करते हैं। विवाह, शृङ्गार-रस का सौराज्य माना जाता है। अतः उसके नामोल्लस भात्र से शृङ्गार व प्रति साधारणीकरण के लिए सहृदय चित्त उ मुख हो ही जाता है। किन्तु वीरानुरागी महाकवि ने इस भय से कि वही सहृदय-गण मेरे लाडले राजकुमार को शृङ्गार के मोम का पुतला न समझ ले एक शौर्य-प्रसङ्ग उपस्थित किया।

१ रघुवश ५।२।

२ रघुवश ५।२५

३ वही ५।२८

४ वही, ५।२६

५ वही ५।३५

इन्दुमती स्वयंवर के लिए गमन करती हुई श्रान्त अञ्ज की सना, नमदा नदा क तट पर अपना पडाव डालती है । उसा समय सहसा एक मदांमत् वाय गज नर्मन्त के जल म निकल पडता है ।' वह हाया ज्यों-ज्या तीर का ओर वप्न लगता है त्या-त्या अपन गुण्णदण्ण का फेनाकर तथा पुन सञ्चुचित कर चिग्घांत्ता हुआ लहरों का बीरन लगता है और सेवार को अपन साथ खींचता हुआ तट पर वा पट्टेचता है ।' उस पवत-वाय वायगज का दम्बत हा सब तुरङ्ग वाचना का छिन्न मिन्न करके भागन लगत हैं रया क घुरे टूटकर मन्-पत्र बिम्बर जात हैं तथा स्त्रियां भयनात हो अपन सरलाप क लिए व्याकुल हा उठती हैं वह हाया माधा अञ्ज का हा लय्य करता हुआ आन लगता है । उसे दम्बकर विवका अञ्ज यह विचार करत है कि यह व गज है, इसका वष करना उचित नहीं है अतएव व अपन धनुष का किञ्चिन् खीच-कर, भागत हुए गज क मस्तक पर हल्का-सा प्रहार करत है ताकि वह लौट जा ।'

यहाँ अञ्ज का चारोचित उत्साह हा व्यग्य है । यहाँ अञ्ज जापय हैं वायगज आलम्बन है । गज द्वारा अञ्ज का ओर चपटना उद्दापन विभाव है । अञ्ज द्वारा वाण-सचानन अनुभाव है तथा मति विद्वर्क आदि व्यभिचार भाव हैं ।

इसक पश्चात् स्वयंवर मे अञ्ज न त्रिस प्रकार अपन अनुम मीन्त्य वाक्श्रेष्ठ आभिजाय एव नैसर्गिक गुणा के कारण जय-माल प्राप्त का उस हम उद्धार क प्रसङ्ग म दम्बेग । परिणयवद्ध अञ्ज, सौन्दर्य की एकमात्र अधिष्ठाता उस कवा रत्न (इन्दुमती) का लकर जब अपना राजधानी का आर चलत हैं ती मतिन चित्त अभि-माना नृपगण जिहानि बाह्य ह्य प्रदशन द्वारा जपन मनाविकारा का दिपाण मून्-नक्र ह्ण का भाति अञ्ज क प्रति दुर्भावना सजा रखी था प्रत्यम युद्ध क लिए उनक (अञ्ज क) माग म एकन हात हैं और उस युद्ध म जो सम्भवत राम रावण-युद्ध क पूर्व उस वश में सर्वाधिक मयङ्कुर युद्ध हुआ । अकल अञ्ज सारा सना का जपनी जनीक्व जति तथा गणव-कुमार-द्वारा प्रदत्त जस्व स किस प्रकार पराजित करत हैं इस कवि न बटे आकषक ढङ्ग स चित्रित किया है । उसका विवरण कुछ इस प्रकार कहा जा सकता है—अञ्ज तथा विरोधा राजाओं में भीषण युद्ध छिड जाता है । वेदल-वेदला स रयवाने-रयवालों से घुदसवार घुदसवारा स, गजसवार-गजससवारों से भिन्न जात हैं ।" धोर तूयनाद क कारण परस्पर शब्द मुनाई नहीं पढता

१ रघुवश ५।४३

३ बहो, ५।४८

५ बहो, ७।३७

२ रघुवश ५।४५

४ बहो ५।५०

है। अतः वाणों पर अस्त्रित अक्षरों से ही योद्धागण अपने नामों का परिज्ञान कराने हैं।<sup>१</sup> घोड़ों के टापा से उठो अपार धूल राशि व वारण, मूय भा निरोद्धित हो जाता है, और मन्त्र अधकार व्याप्त हो जान के कारण सैनिक अपने शत्रुओं को भी नहीं पहचान पाते, अतः वे अपने-अपने राजाओं का नाम लेकर परस्पर युद्ध करते हैं। युद्ध-भूमि में विजृम्भित रज-अधकार में शस्त्रों से दान अथवा, गजा तथा योद्धाओं के शरीर में निःसृत मधिर-प्रवाह भी वातावरण के समान प्रताप हीन लगता है।<sup>२</sup> इस प्रकार युद्ध-भूमि में इतना अधिक रक्तपात होता है, कि उत्थित अपार धूल राशि भी शान्त हो जाती है।<sup>३</sup> शस्त्र प्रहार के कारण भूच्छिन्न हो जाने से अनेक योद्धाओं को उनके सारथी किस प्रकार वापस ल आते हैं।<sup>४</sup> जिन धनुषधारियों का हाथ शस्त्र-मचालन में निपुण थे, उनका वाण यद्यपि शत्रुओं के वाणों व वाच में ही टूट ही जाते हैं, तथापि उनमें इतना विश्वास है कि वे लक्ष्य पर पड़ें ही जाते हैं।<sup>५</sup> तेज चक्रों से क्षिप्त हाथावाला व सिर बहुत देर के पश्चात् पृथ्वी पर गिरते हैं क्योंकि उनके लम्बे-लम्बे केश ध्वज (बाजा) के नवा में उलट जाते हैं के कारण वे ऊपर ही टंगे रह जाते हैं।<sup>६</sup> प्राणा का भाव चिन्ता न करने वाले कवचधारी योद्धा जब अपनी तलवार से शायिया के दाँतों पर प्रहार करते हैं तब परस्पर अग्नि-स्फूर्णित निवृत्त व कारण भयाङ्कित हाथा शृङ्गादण्ड के जल से अग्नि शांत करने लगते हैं।<sup>७</sup> इस प्रकार वह युद्धक्षेत्र मृत्यु देवता व उस मन्दिरालय का प्रताप हीन लगता है, जिसमें बट हुए सिर ही भाग्य हीन हैं, च्युत शिरस्त्र ही प्यास ही तथा प्रवाहित रक्त ही मन्दिर ही।<sup>८</sup> जिन योद्धाओं के सारथी कालकवचित हो जाते हैं व स्वयं चलाकर युद्ध करने लगते हैं, किन्तु जब उनका अश्व भा क्षत हो जाते हैं तो स्वयं से उतरकर पैदल हो गदा में युद्ध करने लगते हैं और जब उनका गदाएँ भी भंग हो जाती हैं तो वे मर्त्य युद्ध करने लगते हैं।<sup>९</sup> यद्यपि विरोधी शत्रुओं की सेना अज की सेना को परास्त कर देती है तथापि त्याग्य महापराक्रम अज प्रलयवना में भगवान् वाराह के समान शत्रुसनाका भक्षण करते हुए आगे बढ़ते चले जाते हैं।<sup>१०</sup> वे इतनी शास्त्रता से वाण-मचालन करते हैं कि कब तूणों में हाथ डालना और कब वाण निकालना, यह पता ही नहीं चलता। अद्वितीय वीर

१ रघुवश ७।३८

२ रघुवश ७।४१

३ वही ७।४०

४ वही, ७।४३

५ वही, ७।४१

६ वही, ७।४५

७ वही, ७।४६

८ वही, ७।४८

९ वही ७।४६

१० वही, ७।५२

११ वही, ७।५५

अज अत्यन्त रोष से चगने के कारण रक्त बोधित बाने तथा भौंटा का विकृति कर अपनी आर वग से बन्त हुए राजाआ के शिग्रद्वेन से पृथ्वी को आच्छादित कर दन है ।<sup>१</sup> अज के निस्सीम शीय का देगकर, असफल मनारम बाने राजगण प्राधित हो उठत हैं और वे बने हुए अपन रथ छोड तथा पैदल गैन्व सहित ताण अस्त्रा से पूर प्रयत्न म एक साथ अज पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दन हैं । राजाआ के असम्य अस्त्र-वपण से अज का रथ ढब जाता है और जैम निहारोच्छास्ति प्रभात का पना धुंधल मूय को दसकर होना है, वैम ही अज का पता उनके रथ के ध्वजाप्रभाग को दसकर होता है ।<sup>२</sup> तब रघुभुज कामवर् कमनाय अज प्रियवद द्वारा पदत्त गा धव अस्त्र राजाओं पर छोडत हैं ।<sup>३</sup> अन्व विमाचन मात्र म हा उन राजाआ के हाथ एसे स्तम्भित हा जान हैं कि वे बाण संचालन करने म असमथ हा जान हैं । उनके शिरस्त्र गिरकर के वा पर चूत जान हैं तथा सम्पूर्ण सेना ध्वजा के सहारे सा जाता है ।<sup>४</sup> म प्रकार उम विवाहात्तर शीय पराप्ता म अज पूण सफल हात है ।

यहाँ अज जापय हैं तथा राजगण आनम्बन । राजाआ का माग रावकर लड हो जाना उद्दीपन विभाव है । अज द्वारा बाण-संचालन, राजाआ का शक्तिहान बना देना, शिग्रद्वेन गा धवबाण प्रयाग द्रव्यास्ति अनुभात है तथा अमथ चपलता विक्र इत्यास्ति ध्यानिचारो भाव हैं । इन सबम अज का युद्ध विषयक उत्साह प्रकृत होता है । युद्ध के इस दाध प्रसङ्ग म सट्टया म के वा वैरस्य न उत्पन्न हा जाए अनएव महास्त्रि ने बडा निपुणता से शीय के प्रसङ्ग म भी गाव बाव म वितो का युद्ध लिया है । परम्पर युद्ध रत दो बारा का चित्रण कितन अदृष्ट दृङ्ग से किया गया है 'दो बार एक दूसरे के प्रहार म एक साथ मारे जान हैं । दाना देवता हाकर जे स्वग पहुँचत हैं तब वहाँ एक ही अप्परा पर दोना आत्मक हा जात हैं और इस प्रकार वहाँ भा के परम्पर युद्ध कर्त गगत हैं ।'<sup>५</sup>

इसके पश्चात् कवि ने विजयालास से भर बीर अज का भी एक दा चित्र प्रस्तुत किया है जिस पर शृङ्गार कितना लट्ट हा सकता है इसका अनुभात सहृदय-गण ही लगा सकते हैं—(राजाआ का परास्त कर दन के पश्चात्) अम विन्दुआ से छादित ललाट बाने तथा शिग्रद्वेन उतार दन के बाण्य त्रिवरा मौलिकाल अज धनुष के एक सिरे पर अपना एक हाथ यस्त कर युद्ध के कारण भयभीत इन्दुमता के

१ रघु.का. ७।५८

२ रघु.का. ७।५६

३ वही, ७।६०

४ वही, ७।६१

५ वही, ७।५३

समोप आकर कहते हैं— 'शैदर्भी ! चलो, देखो तो मुडभूमि में राजा साग इस प्रकार सोये पड़े हैं कि बालक भी उनके शस्त्र छीन सक्ते हैं । देखो न, इसा पीर्य व वन पर य तुम्ह मेर हाथ से छीनन बले थे । '

यहाँ मुड में विजयी आश्रय अज का वीरोचिन उस्ताह ही व्यग्य हा रहा है । बुध्र समय पश्चात् त्रिया का अस्तामयिक मृत्यु न अज के हृदय में शक्ति का अयाह सागर मर दिया, जिस पार करता अज व लिए असम्भन हा गया । जय उनका यह शोक रोग भिषजामसाय हा जाता है तर महाराज मूयवश का परम्परा के अनुसार राज्य का भार पुत्र पर गोंप कर शरार त्याग कर देत है ।

अत्र पुत्र दशरथ बडे महारथा, जितन्द्रिय तथा दश प्रजापानक हैं । उनस राज्य मे प्रजा सब प्रकार स सुखी और धनधाय स पूण है ।<sup>१</sup> रघुवश में वणिन दशरथ के जीवन मे कुछ नवानता नही दीख पडती । कवि न दशरथ में लकर राम तक का कथा का वणन वाग्मीकि रामामण के आधार पर ही किया है । दशरथ के जायन में हमे धम विषयक उस्ताह तथा दया विषयक उस्ताह का ही मुख्य रूप में पालवन हाना हुआ दिगार्ई पडता है । कौगिल्या, मुमित्रा वैक्या आदि तान रानिया व हान हुण भा महाराज पुत्र मुख से सबथा वचित हैं । इसलिए गुरुजना का जाना स अपन वश की परम्परा को अधुण्ण बनाय रखन के लिए वे पुत्रेष्टि यन करत है । यह एक धार्मिक वृत्य है । यन का सफन ममाप्ति पर देवताओं के पुण्य वरदान-स्वरूप चार पुत्र रत्ना का जन्म हाता है । महाराज अपन पुत्रा को इतना स्नह करा हैं कि एक क्षण के लिए भा उह अपन नेत्र स विलग नही करत । अतएव जब मुनि विश्वामित्र अपने यज्ञ का रथा व लिए राम-लक्ष्मण को लेने आने हैं, तब राजा अत्यन्त विह्वन हा जात हैं । उ हान अपने पुत्रा को बडे ही तपस्या स प्राप्त किया है, इसलिए उनका अलग करना उनक लिए अत्यन्त कष्टकर काय है । फिर भी मुनि वे यन रथा जैसे महनाय काय का सम्पन होने दन के लिए महाराज तत्काल राम लक्ष्मण को मुनि व साथ भेजना स्वीकार कर लेन हैं, कयाकि 'रघुकुल को सदा से यह रीति चली आयी है कि कोई प्राण भी मरिे ता व विमुख नही हात ।'<sup>२</sup> इस प्रसङ्ग में धम विषयक उस्ताह की मुदर व्यजना हुई है ।

१ रघुवश ७।६६

३ वही, ६४

५ वही, ११।२

२ रघुवश ८।६३

४ वही, १०।४

दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि मन करना तथा विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण को भजना अनुमान है ।

धर्म विषयक उत्साह का चरम निष्पन्न महाराज द्वारा कैकेय का शिष्ट गये यथन पालन के प्रसङ्ग में वर्णित होता है । राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास की जो कठोर माँग कैकेय ने दशरथ के समक्ष रखा उस मुनकर उनका वशुल शिष्ट्य चोकार कर डाला 'आर व विद्वान् हा जान है ।' किन्तु 'ह' प्रतिभ राजा दशरथ अपने वचन का रक्षा के लिए अपने स्व का कोई मूख्य नहीं समझते और राम का राज्य-निवृत्त की आज्ञा देते हैं । तब म राम के वियोग में राजा का बड़ा दुःख होता है और व शहर-याग मात्र का ही अपना बुद्धि का ठाक उपाय समझते हैं ।<sup>२</sup>

यह राजा राजा शरथ के धर्म विषयक उत्साह का कथन उनके दया विषयक उमाह का स्वरूप प्रजापालन जयवा लोकानुरजन के प्रसङ्ग में लिखा पढ़ता है । विरोधा राजा का व साथ भा व कमा भा कठोर आचरण नहीं करते हैं । कवि कहता है कि उनके द्वारा जनक राजा का कल्याण भा हुआ और अकल्याण भा । जो राजा उनका आता बिना विरोध के स्वाकार कर लेते हैं उनके साथ व दया का व्यवहार करते हैं किन्तु जो उनसे टकराने पाते हैं उनका व भवनाश करके शांत होते हैं ।

शिकार का यथन तो राजा का रहना ही है । किन्तु शिकार के क्षण में दशरथ क्रूर नाति नहीं अपनाते और उनका हृदय सदैव स्नेह की निमल धारा से सिक्त रहता है । उनके इस दयानु प्रवृत्ति का व्यञ्जना कवि ने बड़े ही सुन्दर उपाय का है— इन्द्र के समान शक्तिशाली राजा दशरथ ने देखा कि वे जिस हरिण का मारना चाहते हैं, उसका सहचरी सहमा गध म आकर खड़ा हो गया है । व स्वयं इतने मृदु-आत्मा तथा प्रमा हृदय थे कि अपने हरिण के लिए हरिणा का यह प्रेम देखकर उनका हृदय त्याग समा अभिभूत हो जाता है कि व आकणवृष्टमपि बाण की उतार लेते हैं ।<sup>३</sup> वे अथ हरिणा का भा अपने बाण का चमक बनाना चाहते हैं, किन्तु हरिणा के भयाङ्कित नश्रा को देखकर अपने प्रिया के चचन नश्रा का स्मरण हो जाने के कारण उनके हाथ बाण संचालन में शिथिल पड़ जाते हैं ।<sup>४</sup>

१ रघुवश १०।४

२ रघुवश १०।१०

३ वही, ८।६

४ वही ६।५७

५ वही, ८।५८

यह आश्रय दशरथ हैं। बाण-सचानन के लिए उद्यत होना किंतु न चलाना, दया न पूण हा जाना इत्यादि अनुभाव हैं, तथा स्मृति, मोह मति, इत्यादि व्यभिचारा भाव हैं। इस प्रकार यहाँ दया विषयक उँसाह की ही सपन व्यजना हुई है।

महागज दशरथ क पश्चात् मूय-कुन म राम का अवतार हाना है। रघुवश के मुख्य नायका के विवचन मे, विद्वाना न कई प्रकार की मामानायों प्रस्तुत का हैं। विशेषकर रघु और राम के तुलनात्मक यत्तित्व व विषय म कुछ विद्वाना न रघु का, इस महाकाय म महाकवि द्वारा प्रधान रूप से वर्णित, नायक स्वीकार किया है। अत उनका कहना है कि उँहो क नाम के आधार पर इस महाकाव्य का नाम 'रघुवश' रखला गया है। उनक युद्ध तथा दान की कथा वर्णित हा सही किन्तु महाकवि ने दंड विस्तार तथा अनुराग के साथ उसका चित्रण किया है। साथ ही दूसरे विद्वान् जो इस महाकाय का प्रधान नायक राम को मानत हैं रघु मे लेकर दशरथ तक क वर्णन का उसकी भूमिका मानत हैं तथा परवर्ती कुश से लेकर अग्निवर्ण तक क वर्णन को उपमहार। उन विद्वाना क अनुसार कालिदास को पूर्वापरीया से एकदम पृथक राम का अभिनव कल्पना से नलाम वर्णन करना अभीष्ट था। राम का जा स्वरूप आदि कवि बान्मीकि ने अपने रामायण म प्रस्तुत किया है वह विश्वप्रथिन था किन्तु महाकवि की अप्रतिम प्रतिभा न उम चरित्र मे भी जिन विशिष्ट ज्योतिमयी रेखाओं का आकनन किया उसस राम इस काय के नायक बन गये। और तो और काश्य क सघाट भवभूति न भा अपनी सदश्रेष्ठ कृति उत्तररामचरित क लिए रघुवश क राम का उधार ले लिया।

राम क जीवन म महापुण्यत्व एव दि यत्त्व क लक्षण गौशव काल म ही प्राप्त हान लगत हैं जिससे यह प्रतात हान लगता है कि किमी उद्देश्य (Mission) को लेकर यह महापुण्य अवतरित हुआ है। अभी राम बाल्यावस्था की ही डेहूरी को लाध पाये हैं कि उनक अतिमात्वीय गुणो स परिचित विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा हेतु उँहे लेने जात हैं। पिताश्री की आज्ञा से विश्वामित्र क साथ राम-लक्ष्मण वन के लिए प्रस्थान करत हैं। अभी थोडा ही माग तय कर पाये है कि कवि राम के शोय का प्रसङ्ग उपस्थित करता हुआ कहता है—माग मे उँहें सुकेतु-कथा ताडका राक्षसो मिनती है, जिसने माग को ध्वस्त कर डाला है, और जिसक शाप का कथा महर्षि विश्वामित्र न पहले ही राम को सुना दी थी। उसे देखत हा शोतो कुमार धनुष को



पुत्रों पर टकराव का रिया का बड़ा मत है ।<sup>१</sup> दत्ता राजकुमार के धनुष का डारा का टकराव के ध्वज का मत है। कर्ण का धनुष धारण किए अमानस्य का रात्रि के समान काया-तन्त्र का तादृश उक्त ममता इम प्रकार गहा हो जाता है माना बनाता-पत्ति-म मुक्त काता यत्ना ॥। अन तात्र धम म माग के वृत्ता का ध्वज करता हूँ। तितना करता हूँ प्रवृत्त धारण किए हुए तादृश गम पर दूरे पटना है। उमा ममता का के समान जाता भ्रमाश्री का उपाय हुए तादृश का टकराव निमय राम म्ना वर के प्रति पूजा नया बाण दाता एक गाथ दाहन है।<sup>२</sup> राम के शक्तिमान्ता बाण म विद्वि हायर तादृश का विधा के ममान कठोर व स्थित विधाप हा जात है और वर नूमि पर गिर पटना है। उमके पतन म सम्पूर्ण वन हा नहा अतिवृत्ताम के पगदर म अतिवृत्ताम का गत्रन मा भा कम्पित हा जाता है।<sup>३</sup> राम के अर्धभुव पगदर म प्रमद हायर महति विभामित राम का रागमा का सहायक विधास्य मात्र महिन प्रमान करत है।

यही राम आज है नया तादृश आनम्य। तादृश द्वारा भयदूरे गजन तात्र गति न जायमन राम पर आक्रमण इत्यादि उपायन विभाव है राम द्वारा शर्म-मवानत अनुभाव है। अमय मर दुगु मा मति न याति वरभिचारा भाव है।

अन्वित शक्ति सम्पन्न राम-लक्ष्मण बड़ा उत्तरवृत्त म समस्त विघ्ना म यन का रणा कर हा रत्न ध कि इमा बाच पद-वृत्ता पर रत्न जिन्दुभा का स्वकर वस्तु क्रियण यन करना ममान वर दत्त है। यर दम्बर गम उत्तत्रिव हा उक्त है और विघ्न का कारण जान करत के विघ्न जेम हा जाका म दृष्टिगत करत है वैम हा अपन वार भाव का जानम्यन बना गिद्व के पथा के समान हिनता हुए भ्रमाश्री म पुन रागमा का मना का दम्बर है।<sup>४</sup> फिर क्या था राम शान्त हा अपना वायव्यास्य सधान कर और पत्रत म भा विगात तादृश पुत्र माराव का बाण म उदाहर वैस हा दूर फर दत्त है जेम कोई पुगता पाता पत्ता हा।<sup>५</sup> मुवाहु नामक दूमर रा त्त का भी जा अपना माया म इतस्वन सवरण कर रहा था बाण म दुकड़े-दुकड़े करके राम आश्रम के बाहर मार गिरात है।<sup>६</sup> मय के समस्त विघ्ना के अपास्त कर लिए

१ रघुवत् ११।१६

२ वही,

३ वही ११।१६

४ वही ११।२५

५ वही, ११।२८

७ रघुवत् ११।१६

८ वही ११।१७

९ वही ११।२१

१० वही ११।२८

जाने पर ऋषिगण दोना कुमारों के जद्मुत विक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा करने हैं ० मुनि विश्वामित्र व्रतु का क्रियार्थ सम्पादित करते हैं ।<sup>१</sup>

यहाँ माराव तथा मुवाहु आपन्नत हैं । यत्र पर खून की वूदा का गि उद्दीपन विभाव है । राम द्वारा वायव्य अस्त्र मधान करा, राक्षसों का वध का इत्यादि अनुभाव है तथा चपलता, अमय व्यभिचारी भाव हैं ।

इसी समय मिथिला-पति जनक एक स्वयंवर की आयोजना करने हैं । उन निमंत्रण प्राप्त कर विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित मिथिला पुरा को प्रस्थान करने भाग म हा कवि राम के अलौकिक जीर दिव्य स्वरूप की व्यजना हेतु गीतम अहिल्या उद्धार का प्रसङ्ग उपस्थित करना है,<sup>२</sup> जिसके पत्रस्वरूप राम का पोस्त ० भी दण्ड्यमान हा उठना है ।

स्वयंवर म राम ने शिव-धनुष भङ्ग कर अपन जिम दिव्य पराक्रम और शक्ति मत्ता का परिचय दिया वह उनके वीरोचित गुणा के मन्वथा अनुकूल है किन्तु श का धनुष भङ्ग हा जान मे क्षत्रिया के सहायक परशुराम की क्रोधान्ति भभव उठती और वे राजधाना की ओर लौटत हुए, अस्मान् प्रकट हो राम का मार्ग अवरोध न हैं । पिता का मृत्यु पर क्रोध म क्षत्रियवर्ग का नाश करने की अकाट्य प्रतिज्ञा व वाते परशुराम का दखकर दशरथ बड़े हो चिं तत हा जात हैं किन्तु राम ता भा भयभात ननी हान । क्योंकि कालिदास के सभी नायक प्राय निडर होत हैं नायक का निभय होना उसके लक्षण म सम्मिलित है । इधर युद्ध के निण ० परशुराम मुग्ठा म धनुष पकडकर जैगनिया मे वाण नचात हुए निभय राम स न हैं मेर पिता का वर करके क्षत्रिया ने मुनमे शत्रुता मोल ली, उह अनेको बार कर मेर ल्घ्य हृदय को शान्ति मिली । किन्तु तुम्हारे इस पराक्रम को मुनकर शरीर मे क्रोधान्ति प्रज्वलित हो उठी है ।<sup>३</sup> पहले समार म 'राम शब्द' के उच्च से, लोग मुझे ही समझते थे, किन्तु तुम्हारे उत्कर्ष के कारण वह अर्थ तुम्हारे ना साथ जुडन लगा है— यह देवकर मुझे लज्जा होती है । जिस शक्तिशाली परशुराम अस्त्र पवतो म टकराकर भा कुण्ठित नहीं हुआ—उसके आज तक दो ही शत्रु अपर वर्ता हुए, एक मेर पिता का कामधेनु के वरम का हरणकर्ता सहस्रनाहु, और दू मेरी कीर्ति का विध्वंसक तू ।<sup>४</sup> अत क्षत्रिया के विनाश कता मेरा पराक्रम मुझे

१ रघुवश ११३०

२ रघुवश ११३४

३ वही, ११६३

४ वही, ११७०

५ वही, ११७१

६ वही, ११७३

७ वही, ११७४

तब शोभा नहीं देता, जब तब मैं तुम्हें पराजित नहीं कर सकता ।<sup>१</sup> हे राम ! शिव जो कि जिस धनुष का ताड़क तुम मन्दारपावन बनत हो, उगरी बढारता तो सिन्धु जान पहचान हो रहा था । अतः उभे तो कर तुम आने झूठे शीघ्र का दम्भ मत करो, क्योंकि जिस युद्ध का जडा का नशा का प्रबण्ड धारा न पहचान हो साधना कर दो उभे वायु क मनु शक्ति म पतिन हो जान म क्या समय लगता है ? अतः देगा राम ! हमारा युद्ध तो वा म हागा, पहचान तुम मर इम धनुष को प्रत्येक युक्त करा । यदि तुम धनुष का प्रत्येक युक्त करा म सक्त तो आश्राग तो मैं अपना पराजय स्वीकार कर लूंगा ।<sup>२</sup> परशुराम का इन गर्वोक्तिया का मुनकर बीर राम मधुर मुस्कान सहित धनुष का इस प्रकार हाप म न उठा लत हैं, माता परशुराम के यत्नों का वला समय उत्तर हो ।<sup>३</sup> तत्रस्था राम न धनुष का एक भाग पृथ्वी पर निमित्त कर जैम हो उभे पर भाग चढात है वैम हो ग्निनाथ परशुराम उक्त अग्नि क ममान निप्रभ हो जान हैं जिसम कवन भूम हो शप रट गया है ।<sup>४</sup>

यहाँ राम क युद्धवार का मुनर अजना हुई है । परशुराम जानम्बन हैं उनका गर्वोक्तिया तथा राम का ताडन क लिए धनुष दना उद्घातन विभाव है । राम द्वारा क्षणमर म धनुष का डार बना दना मधुर मुस्कान इत्यादि अनुभाव है । समय विपा म चिन्ता, जमूया इत्यादि अभिचारा भाव हैं ।

राम क युद्ध विषय उल्हास का सफन यजना रावण क युद्ध प्रसङ्ग म हुई है । पाता राम रावण द्वारा अपना प्रिय पत्नी साना क अपहरण कर लिए जाने पर राम वानरा का विशान मना लेकर रावण का नगर लङ्का पर जाक्रमण कर दत हैं और उभे चारा आर म घेर लत हैं ।<sup>५</sup> रागसा जोर वानरा का मयङ्कर युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और राम रावण क जयघाप म दसा शिशाण विजृम्भन हो उठनी हैं ।<sup>६</sup> इसा वाच लामण द्वारा मूपणला का नासिकाच्छेदन कर लिये जान से रावण की प्रोधानि जोर भक्क उठनी है । और क (राम और रावण) दाना हो रणस्थल पर डटत हैं माना दाना का अपना वारता प्रदशन का आज ही शुभ अवसर प्राप्त हुआ हो ।<sup>७</sup> शीघ्र ही रावण की सेना राम की घोर मना से परास्त होकर बाल कवलित हो जाती

१ रघुवश ११।७५

३ वही ११।७७

५ वही ११।८१

७ वही, १२।७२

२ रघुवश ११।७६

४ वही, ११।७६

६ वही १२।७१

८ वही, १२।८७

है और अनेक रावण बंध माना है।<sup>१</sup> जिस रावण ने इन्द्रादि लोकपालों का भा विजित किया था, अपने सिर को काटकर शिव को अर्पित कर दिया था तथा वैष्णव पर्वत का उर्तिष्ठ कर दिया था, उस सत्यबोध और शीघ्र से सम्पन्न रावण का देव कर राम ने यह समझ लिया है कि यह कम पराक्रमी नहीं है।<sup>२</sup> अर्थात् युद्ध ही हा रहा था कि ब्राह्मण रावण राम की वाम-भुजा में शर प्रहार करता है और इधर राम का शर भी रावण के वक्षस्थल छेदन में सम्पन्न हो जाता है। दोनों यादों एक दूसरे का लक्ष्यकरत हुए तथा अस्त्र को शस्त्र से काटते हुए युद्ध कर रहे हैं। उनका क्रोध भी बढ़ा जा रहा है जैसे विजय प्राप्त करने के लिए शास्त्राध्यय करने वाला का क्रोध बढ़ता है।<sup>३</sup> कर्मा राम अधिक पराक्रमी प्रतीत होता है तो कर्मा रावण। किन्तु राम काई मारण धनुषधारो नहीं है। रावण-बंध के लिए अपना अर्थात् ब्रह्मास्त्र धनुष पर चढ़ा लेते हैं और क्षणभर में रावण के दमा सिरों का इस सफाई के साथ छेदन कर देते हैं कि रावण के उन सिरों को तनिक भी कष्ट नहीं होता।<sup>४</sup>

यहाँ राम आश्रय तथा रावण आलम्बन है। रावण द्वारा राम पर शर-संचारन उद्घाटन है। राम द्वारा ब्रह्मास्त्र संधान, शिरश्छेदन, आकाश से देवताओं द्वारा पुष्प-वर्षण इत्यादि अनुभाव हैं तथा हृष्य चपलता, तर्क, अमप व्यभिचार-भाव हैं।

रघुवश में राम रावण के युद्ध का वर्णन वड ही साधारण ढङ्ग से किया गया है। अज तथा विराधी राजाओं के युद्ध प्रसङ्ग में कवि ने अपनी जिस युद्ध-लिप्पु प्रवृत्ति का पञ्चम्य किया वह फिर किसी भी प्रसङ्ग में मुखरित न हो सकी। इसका एकमात्र कारण यही कहा जा सकता है कि महाकवि यह भली-भाँति जानते थे कि राम-रावण का युद्ध तो लोकप्रसिद्ध है और लोग उसमें अत्यन्त तरुह में परिचित हैं। इस तथ्य की ओर उद्घाटन स्वयं संकेत भी किया है। अतः उस प्रसङ्ग में कुछ विशेष कहना अनैतिहासिक हो जाता है। इसलिए कालिदास ने उसे कोई महत्त्व न देकर शीघ्रता से कुछ परिमित श्लोकों में ही युद्ध कथा को समाप्त कर दिया है।

मनस्वी और पराक्रमी राम के जीवन का एक पक्ष और है, वह है धर्मवार का। लोक धर्म की रक्षा के लिए वह अपनी प्रियतर वस्तु का त्याग करने में तनिक भी विचलित नहीं होता है। प्राणेश्योऽपि प्रियतरा अपनी पत्नी सीता पर, जिसके लिए

१ रघुवश १२।८८

२ वही १२।९०

३ वही, १२।९६

४ रघुवश १२।८६

५ वही, १२।८२

६ वही, १२।८७

उह रागण जैम दुराग्रहा म भा मोर्चा सता पडा, और अगस्य कष्ट भेवने पडे, प्रजा द्वारा लगाए गए बलरू की मुनकर वैद्यू व प्रेम म पगा राम हृदय तत साहसन मे आहन लौट क समान विष्णु हो जाता है । क्तव्याक्तव्य के वाच दातायमान उनका चित्त यह निश्चय हा नगी कर पाता कि वह निर्णय प्रिया का त्याग कर दें, अपथा लोकायता का न न कर दें ।<sup>१</sup> किन्तु मनस्वा तथा धैरवान राम तत्काल ही यह निश्चय कर जन है कि माता-त्याग द्वारा हा जगवित्र बलरू का परिमाजन हो सकता है क्याकि याम्बिक्यों का जनना यश जन शरार स भा जयिक प्रिय हावा है फिर स्त्री आदि नाग्य वस्तुओं का क्या गणना ?<sup>२</sup> इस प्रकार अपन हृदय का किसा प्रकार मयन करके विष्णु राम लम्पण प क्तन हैं—मैं यद्यपि मन्त्राचारा हाने क कारण परिप्र हैं कि तु जैम बाप म दपण मनिन हा जाता है वैम हा मूयवश मर कारण कथिङ्कन हा रहा है । जिन प्रकार हाया अनाम न घायकर उम उखाड फेंकन को चला कता है वैम हा अब म इस अवयग का मन्तन नहा कर सकता ।<sup>३</sup> साता गभिणा है किन्तु बलरू प्रधाननाथ पितृ आता न जिस प्रकार मैंन राग्य का त्याग कर लिया था वैम हा साता का भा परित्याग कर दूंगा । पुन लम्पण का आना न्त हुए यथाथभाया राम क्तन है— तुम्हारा गभिणा मामी तपावन-गान का इच्छुक है, अत तुम इसा बहान इ ह वा-माकि आयम म छोड आओ ।<sup>४</sup> इस वाक्य का कहत समय राम का किन्ता जमाम वत्ना हुई हागा इम कवन उनका शाक सत्त हृदय हा जान सकता है । किन्तु वणाथम धम की रभा तो करनी ही है अत जन शाक का किसा प्रकार निपट्ट कर व राग्य काय म व्यस्त हा जात है ।

वस्तुत यह राम क धम विषयक उत्साह का पराकाष्ठा ही है । प्रजा द्वारा लगाया गया बलरू उदापन विनाय है—सीता का त्याग करना अनुभाव तथा शाक, बिनक, भ्रम मति धृति व्यभिचारा भाव हैं ।

सीता का त्याग करने क परचात् अब राम एकमात्र पृथ्वा क हा पति रह ग्य है ।<sup>५</sup> व अमा राग्मे कर हा रह थ कि एक बडा अनहानी घटना घटित हागी है । एक ब्राह्मण कुमार की अकान मत्यु हा जाता है । ब्राह्मण अपने बालक पुत्र क मृत

१ रघुवश १८।३

वही १।२५

२ वही १४।८

३ वही १५।८५

४ रघुवश १४।३८

५ वही १४।२७

६ वही १४।३६

७ वही, १५।३८

शरार का राजा के द्वार पर रखकर कर्ण प्रन्दन करन लगता है ।<sup>१</sup> हे पृथ्वा ! तुम दशरथ के हाथ मे मुक्त हाकर राम के हाथ मे आकर बटे कष्ट म पड गयी हा । तुम्हारी दत्ता अत्यन्त शान्तीय ही गयी है ।<sup>२</sup>

प्रजाभालक राम ब्राह्मण क शोक की कथा मुनकर अत्य त लज्जित हा जाते हैं, क्याकि इन्चाकुवशाय किसी भी राजा के राज्य मे किसी का भी अकाल मृत्यु नहीं मुना गया था ।<sup>३</sup> महाराज, ब्राह्मण को आश्वासन देत हैं कि 'तुम थोडा देर ठहरो, मैं अभी तुम्हारा शोक दूर किए दत्ता हूँ ।' यह कहकर वे यमराज को विजित करन की इच्छा से पुष्पक विमान का स्मरण करते हैं ।<sup>४</sup> धनुष लकर ज्या हा वे चलन क उद्यत हाते हैं तयो ही उह यह आकाशवाणा मुनाई पन्ती है—'हे राजव् ! तुम्हारी प्रजा म कुछ दोष आ गया है । उमे खोज कर दूर करगे तभी तुम्हारा उद्देश्य पूरा हागा । इस आप्त वचन का मुनकर राम चतुर्दिशाओं म गतिशील हा जान हैं । भ्रमण करत हुए व एक स्थान पर दक्षते हैं कि—एक पेड का शाखा पर उनटा लटका हुआ एक मनुष्य नीचे मुख किए घुजा पीकर तप कर रहा है । धुएँ व कारण उसक नश रक्त हो गये हैं ।<sup>५</sup> राम उसस पूछते हैं - 'आपका क्या नाम है और आप किस वश क हैं ?' वह तपस्वी उत्तर देता है - 'मैं देवपद लाभ क निमित्त तप कर रहा हूँ । मेरा नाम शम्भूक है और मैं गूद्र हूँ ।<sup>६</sup> यह मुनकर महाराज विचार करत हैं कि गूद्रो का तप करन का अधिकार नहीं है । इम अनधिकारी क ही कारण मेरी प्रजा म जनवस्था पैर रहा है । जत भीष्म ही उमका बध करन का निश्चय करत हैं ।<sup>७</sup> वे शम्भू से उसका शिरच्छेदन कर देत हैं । राम मे दण्डित हाकर गूद्र को वह शुभ गति मिल जाता है जा उस कठोर तप करने पर भी नहीं मिल सकना थी ।<sup>८</sup>

यहा राम आश्रय हैं शम्भूक जालम्बन । ब्राह्मण कुमार का अकाल मृत्यु और पिता द्वारा कर्ण रोदन उद्दीपन है । राम द्वारा मृत्यु का कारण जानने क लिए तत्पर होना, ब्राह्मण को धैर्यावनम्ब कराना गूद्रवध करना इत्यादि अनुभाव तथा ब्राडा, वितक अमप चिन्ना, विपाद व्यभिचारो भाव हैं । इस प्रकार यहाँ धम-विषयक उत्साह का मुन्दर व्यजना हो रही है ।

१ रघुवश १५।४२

२ वही, १५।४५

३ वही, १५।४४

४ वही, १५।४०

५ वही, १५।५३

२ रघुवश १५।४३

४ वही, १५।४६

६ वही, १५।४६

८ वही, १५।५१

इसमें पशुवाण, रघुवश म राममण भरत शत्रुघ्न पंचवि प्रतिष्ठित नायक क रूप म नहा अस्तितु उपनायक क रूप म ना सम आत हैं किन्तु महाकवि न उनक प्रमद्व म भा वारस का हा प्रधानता ना है जीर मय प्रकार उद् घटना विभय का नायक बनारर जङ्गलर का प्रधानता का नष्ट ना हात मिया है । वामानि रामायण म भरत जीर लमण क चरित्र का ता मूय विकास हुआ है किन्तु शत्रुघ्न क वीरचित गुणा का चचा नहीं क वरावर दुद है । अतएव महाकवि न इस संवधा उचित नायक ( शत्रुघ्न ) का अपन काय म स्थान मिया जीर उन वारव का एसा वाना पहनाया—कि सद्दयगण उसम भा प्रभावित नूण विना नहीं रह सकत ।

लवणामुर द्वारा उदासित तपस्विगण जन दु प-निवारणाय राम का शरण म उपस्थित हात है । अवतार राम मुनिया का रण का भार शत्रुघ्न का सीपत है माना शत्रुघ्न द्वारा शत्रु का संहार कराकर उनका शत्रुघ्न नाम चरिताथ क दना चाहत हा ।<sup>१</sup> निभय शत्रुघ्न राम ना आशावा प्राप्त क वन की आर प्रस्थान कर दत हैं । महाराज राम शत्रुघ्न स्वय दन पोषवान् थ कि मना उक्त त्रिण यर्थ हा था । फिर भा महाराज राम का जाना म मना का व साथ ल लत है । 'जम समय क मधुपहन नगर म पद्वैचत है उमा समय रावण भगिनी शुम्भानसा का पुत्र लवणामुर जनक पशुना का वध कर दम प्रकार वन म जा रहा था माना वन म उम यह सज कर रूप म मिता हा ।<sup>२</sup> शम्भ रक्षित लवणामुर की जवला दलकर उसक वध का यहा उचित अवसर समयकर शत्रुघ्न उम चारा आर म घेर लत हैं कयाकि जो शत्रु क शक्तिहात हात पर प्रहार करता है, वह अवश्य हा विजया हाता है ।<sup>३</sup> शत्रुघ्न का दयकर लवणामुर गरज उठता है— 'आज म भोजन की सामग्री कम था यह दयकर प्रज्ञा न डर कर मरा भोजन पूरा करत क त्रिण तुम्ह यनी भज दिया है । यह कह कर वह शत्रुघ्न का वध करत क त्रिण एक भारा प उखा लता है । जना हा वह उस वृ का शत्रुघ्न पर पेंवना है तथा ना वार शत्रुघ्न धाच म हा उसक टुकडे कर डालत हैं । वृ क नष्ट हो जान म लवणामुर एक भयङ्कर त्रिण म शत्रुघ्न पर प्रहार करता है पर शत्रुघ्न तेद्र अम्भ म उम भा चूर चूर कर दत हैं । तथा अ न म क्राधित लवणामुर अपना दक्षिण भुजा उपर उठाण नूण शत्रुघ्न पर लपटना है ।<sup>४</sup> शात्र हा

१ रघुवश १५।६

२ रघुवश १५।६

३ वही १५।१५

४ वही १५।१७

५ वही १५।१८

६ वही, १५।१०

७ वही, १५।२१

शत्रुघ्न अत्यन्त निपुणता से उस पर वैष्णव शर संचालन करने हैं। वैष्णव वाण से विद्ध होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है।<sup>१</sup> इस प्रकार जब लवणामुर का शत्रुघ्न ने बंध कर डाला तो उन्हें यह मतीप हुआ कि अब मैं मेघनाद का मारने वाला तेजस्वी लक्ष्मण का सचमुच धगा भाई हूँ।<sup>२</sup> अपना काय पूण हुआ देखकर तपस्विगण उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, और जाना प्रशंसा मुनकर शत्रुघ्न शील के कारण लज्जित हो जाते हैं।<sup>३</sup>

यहाँ शत्रुघ्न जाश्रय है तथा लवणामुर आलम्बन। लवणामुर द्वारा आत्म-विकृत्यता करना, वृक्ष प्रहार करना, शिवा-प्रहार करना तथा शत्रुघ्न पर थपटना उदापन विभाव है। शत्रुघ्न द्वारा लवणामुर का घेर लेना, अस्त्र से प्रहार करना-अनुभाव तथा अमप मति, चपलता, ब्रीडा व्यभिचारी भाव हैं।

पुष्पात्तम राम के अपने परम धाम को प्राप्त कर लेने के पश्चात् कुश राजगद्दी पर आसीन होने हैं। राम-पुत्र कुश अपने पिता के समान ही पराक्रमी, जितेन्द्रिय, तथा तेजस्वी हैं। कुशल शासक कुश अभी अपने याग्य गुणों द्वारा प्रजानुरजन कर ही रहे थे कि घोष्मनु का आगमन होता है, और कवि उनकी वाय-स्वप्न की यजना हेतु जनक्रांटा का प्रमत्त उपस्थित करता है—

ग्राम्य ऋतु मे सरयू के शीतल जल में सुगन्ध स्नान का जानद लन के लिए कुश अपनी रात्रिया के साथ जल में उतरते हैं। सरयू का तरङ्गा में राजहंस युगल तैर रहे हैं, और लताआ से झड़े हुए पुष्प प्रवाहित हो रहे हैं।<sup>४</sup> अभी कुश जलक्रीडा का मुग्ध में हो रहे थे, कि ऋषि अगस्त्य द्वारा प्रदत्त जैत्र आभूषण, जिस राम ने राधाभिषेक के साथ कुश का दिया था, जल में गिर पड़ता है।<sup>५</sup> जल विहार के पश्चात् जब कुश को यह बात हाता है कि उनका दिव्याभूषण जल में गिर गया है तो वे बड़े दुःखी होते हैं, और धीवरण को आभूषण-अवपण की आशा देने हैं।<sup>६</sup> अथक प्रयत्न के बाद भी जत्र आभूषण नहीं मिल पाता, तब धीवरण राजा के पास आकर सविनय निवेदन करते हैं कि 'हू देख ! कठार परित्यक्त करते पर भी हम आभूषण को न प्राप्त कर सक, ऐसा लगता है कि जल निवासी कुमुद नामक नाग न लाम से उसे हरण कर लिया है।'<sup>७</sup> यह मुनकर कुश के नेत्र कावारक्त हो जाते हैं, और तट पर

१ रघु.शश १५।२१

२ रघु.शश १५।२४

३ वही १५।२७

४ वही, १६।५४

५ वही, १६।७२

६ वही, १६।७४

७ वही, १६।७६



ही स्थित हो व नागा को नाग करने वाला गन्धर्व चढा सन है। धनुष व चरने ही सरपू का जल दाभित ही उठता है और र्ग प्रकार गजन करने लगता है जैम गह्वर म काई गज चिगाए रहा हा ।' जन का समुद्र व समान मया जाता हुआ दमकर छत्र जान भयमान हा उठते हैं, और छत्रा अपना कथा व साथ नाराज कुमुद जन म प्रकट शाने हैं जैम काई कल्पवृा निकन आया हो। कुमु व हाय म आभूषण दमकर कुा न गरडास्त्र उतार लिया कथाकि मञ्जनगण उन पर त्राध नहा करते जा नम्र हाकर आग आते है। प्रणाम कर कुमुद कथा है— जान गणा पा वध करने बाल विष्णु व ही द्वितीय रूप हैं। अत जान पूजनाय हैं। फिर मैं नवा आरम वैम वैर कर सकता हैं।

यहाँ जाश्रय कुश है तथा आनम्बन कुमुनाग। नाग द्वारा आभूषण चुरा सना उतारन विभाध है। महषा त्राधित हा जाना आला का रक्त हा जाना गन्धर्व चतान व लिए उचत होना इत्यादि अनुभाव है तथा अमय मनि, आवग व्यभिचारी भाव।

इसक परवान् रघुवश म मूपवशा राजाभा का का' विस्तृत वणन नया प्राप्त हाता। कवि न कुछ सामिन श्लाका म हा उनका कवन परिगणनमात्र कर लिया है अथवा एक दो श्लोका म विशेषणा के माध्यम से उनकी युद्धवारता धमवारता ज्ञानवारता तथा दयावारता इत्यादि की ओर सकन मात्र कर लिया है। अतिथि निपध, नम्र पुष्करक, दोमधवा दवनाक चन्निग परिपात्र शिव, उन्नाम, बज्रनाम शङ्खण भूपितामत्र विश्वसह हिरण्यनाम, कौमय, वृहस्पिष्ट पुत्र पुष्य, ध्रुवर्माथ मुदशन इत्यादि राजाभा का वणन काव्यात्मक न होकर वणनात्मक ही रह गया है।

रघुवश के अन्तिम सम्राट् जम्बवण का विस्तृत परिचय कवि न लिया है। अम्बवण बडा हा विलासा और कस्तुर्ययुत राजा है। दश म सबत्र शांति हान के कारण उसका कामुकता और भी बढ जाता है और राज्यकाय स विमुक्त हाकर वह जन्त पुरवामा हो जाता है। अम्बवण रघुवशा राजाभा के बीर स्वरूप जा अपवाद कहा जा सकता है। किन्तु भोज ने शृङ्गार प्रकाश म शृङ्गाररत्न के सोलह नदा म एक भेद शृङ्गार वार मानकर उस भा रत्न के अत्रगत स्थान द दिया है और इस प्रकार रघुवश व मुख्य रम वार का अधुष्णता नष्ट होने से बच जाती है।

१ रघुवश १६।७७, ७८

३ वही, १६।८२

२ रघुवश १६।७६, ८०

४ शृङ्गार प्रकाश भोज

मेघदूत मे रस व्यञ्जना—

महाकवि कानिदास का प्रतिभाविलास खण्डकाव्य 'मेघदूत' विप्रलम्भ-शृङ्गार का जट्टितीय सज्जना है। काव्य का नायक प्रवासित यक्ष है जो राज्य काय मे प्रमाद दिलाने के कारण अपवापति बुबेर द्वारा प्रिया से दूर जान के त्रिण अभिशप्त हाता है। अब प्रमी यक्ष अपना नवाडा पत्नी मे वियुक्त ही नही हाता, अपितु उसे सवाविक कठोर दण्ड यह मिलता है कि शाप की अवधि मे वह अपना पत्नी से कदापि नही मिल सकना। अत वह घर से प्रवासा हा जाता है और दूर दक्षिण की वि य श्रेणिया के मे य कही रामगिरि आश्रमा में जा बसता है।

काय का प्रधान रस विप्रलम्भ-शृङ्गार है। 'कायानुशामिन' के अनुसार विप्रलम्भ शृङ्गार की निरक्ति इस प्रकार है—'सम्भोगमुखास्वादलाभेन विशेषेण प्रलम्बेन आश्माञ्जेति विप्रलम्भ'। तात्पर्य यह है कि नायक गायिका के परस्परानुराग मे मितन राशय ही विप्रलम्भ है। इसीलिए नायकदपणकार कहते हैं—परस्परानुरक्त-योरपि विनासिनो पारतन्त्र्यादर घटन चित्तविश्लेषणे वा 'विप्रलम्भ'। आचार्य विश्वनाथ विप्रलम्भ के स्वरूप का विवचन करते हुए कहते हैं—इसमे नायक-गायिका का परस्परानुराग हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नही होन पाता।<sup>१</sup>

वियोग मे रति का भाव लगा रहता है और यही रति भाव विप्रलम्भ शृङ्गार को कर्ण से भिन्न बनाता है। पुनर्मितन की जाणा वियोग मे सयोग का सुख स्वप्न दिखाना है। सयाग मे जो अ न द प्रियजन के मिलन से होता है वह वियोग मे प्रियजन के चिन्तन तथा गुणकथनादि के मा यम से हाता है। इसमे प्रतिक्षण नायक का स्मरण होता रहना है। इस स्मरणजन सयोग मे जा सुख है वह उस प्रत्यय सयाग मे भा अधिक श्रेष्ठता देता है। इसमे गुरुजनो की लज्जा का न भय है, न वियोग का उत्साह न्य करन वाला शङ्का। इसालिए लाग वियोग का सुखद माना करते हैं।<sup>२</sup> यदि वियोग मे यह सुख न हाता तो दुःख सहकर भा प्राणा वियोग मे मग्न क्या रहन ?

विप्रलम्भ शृङ्गार के चार भेद हैं—पूवराग, मान, प्रवास जीर कर्ण।<sup>३</sup> पूवराग के जनक कारण उपनिबद्ध किए गए हैं जिममे श्रवण, प्रत्यक्ष दशन, चित्रदशन, स्वप्न दशन, दैवपारत श, मानव-पारत श इत्यादि हैं। इसमे दस प्रकार की क्रमिक काम या

प्रेम दशापै सम्भव है—अभिप्राय चिन्ता स्मृति गुणव्ययन, उद्वेग, सम्प्रदाय उन्मात्  
 ध्याधि, जटता जीर मृति (मरण) । प्रथम का अभिप्राय १ काय वग शाप वग  
 जयवा सम्भ्रमवग नायक का दगा-उत्तर-गमन । प्रथम विप्रवम्भ म नायिका का जयव  
 प्रकार का चष्टाण हुआ करता है—अज्ञानानिय बन्धमालिन्य एकवणा धारण,  
 निश्वास उच्छ्वास राग्न भूमिपत्रन आदि । १ और इमम इस प्रकार का दम काम-  
 दशापै दृष्टिगाचर हाना है—अज्ञा का असौष्ठव सत्ता पाण्डुता, सुवचना, जर्नि  
 अधारता, अनानम्बवता तमयता उन्मात् तथा मूच्छा ।

मधुदूत म शापक प्रवास का ही विस्तृत वणन किया गया है । प्रिया क चतुर  
 कथाया म ही मन्त्र निमग्न रत्न वान प्रथमा मय क निग मितन की अयुग्ता रत्न  
 रण भी प्रिया-ममागम दुःख हो जाता है और उसकी विरह विह्वलता वामना परि  
 पक्व वृद्धि का विषय बना डालना है । वह अरुणाविप्रयुक्त यम विमा प्रकार शाप क  
 अभा मुद्ग ही माह उतार कर पाया था कि ज पाठ क प्रथम त्ति ही पवत का मनु  
 म मय को आश्रय करत दम्बर उसका विरह-वर्णा पुन उगात हा उन्मा है ।ार  
 वह प्रिया क पाम अपना शुभ सादग भेजन क निग व्याकुल हा उठता है । विरह का  
 असहायता न यम का इतना दान बना लिया है कि वह अपना मुष-मुष ला बैठता है ।  
 उसकी विचार शक्ति इतना निबल हा गया है कि वत् चतन-अचतन का भा निगप  
 नहीं कर सकता । अय कोई उपाय न दम्बर विवश यम जल स हा प्रिया क पाम  
 प्रणय-म-देन ल जान का आशा मरा प्रायना करन लगता है । १ पूर्वमय म अकापुगा  
 जान तक क भाग का विस्तृत परिचय देने क परवान् उत्तरमय म अपना प्रिया का  
 विस्तृत परिचय दता हुआ कहता है ह मय ! दुःखी-पतला शिखर पवित्र के समान  
 दौता वाला पक टुण विम्बाजन क समान ओछा वाला धाण कठिवाता चकित हरिणा  
 के मयना क समान नत्र वाली गहरा नाभि वाली, नितम्बभार मे मत् गतिवाला  
 स्वता म कुछ यका हुई स्थिया म जा ब्रह्मा का प्रथम रचना (सब मुन्त्रा) वही गणा-  
 उने हा मरा प्रिया समयता ।

नायिका प्रथ । म इस प्रकार का वणन करना कानिनाम का अभ्यास सा का  
 गया है । जो विश्व में ब्रह्मा का सर्वश्रेष्ठ रचना, जनिच मुन्त्रा हाता है उस हा कवि  
 अपन काय का आलम्बन (नायिका) बनाता है ।

मेघदूत वस्तुतः यश की अपनी प्रेम-कहानी है, जो विरही है। अतः कवि ने बड़ी कुशलता के साथ विप्रलम्भ रति का चित्रण किया है। राम गिरि पर बैठा यश स्वयं रति विप्रलम्भ, क्षीणदह विरह की प्रतिमूर्ति बना है।<sup>१</sup> पति-वियोग में व्याकुल अपना पत्नी की जिस वियागावस्था की वह कल्पना करता है और जिसका उमन स्वयं भ्रूयोभ्रूय अनुभव किया है तथा जिसके स्पष्टीकरण के लिए वह मध में भी कहता है कि 'तुम केवल मेरे कहने में न मान ला वरन् तुम स्वयं उभे जाकर देख लेना—' यहा विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ किया गया है। प्रारम्भ में नायिका क ही विरह का वर्णन हुआ है अतः यहा यश आश्रय और यशिणी आलम्बन बनते हैं। यश अपनी पत्नी के रति का जो चित्रण करता है वह केवल रति भाव का उभयनिष्ठ बनाने के लिए ही है।

विरहिणा यशिणी न प्रिय के वियोग में बहुमूल्य वस्त्राभूषणा का त्याग कर भस्मिन् वस्त्र तथा एक-वर्णा धारण कर लिया है। जो न तो उस विषय के प्रति आकर्षण है और न शृङ्गार के प्रति माहुर,—क्याकि उन सब का आलम्बन प्रिय का प्रवासा ही गया है और जब मिलना तो दूर रहा देखना भी दुःख ही गया है। सारा जगत् खूब ही गया है। दिन भर वह चुप रहती है। प्रिय के बिना तो अब विरह के दिन बड़ा कठिनाई से व्यतीत होत हैं। अत्यधिक विरह-वेदना से हिमहृत कमलिनी के समान उसने मुख की कांति भी विवर्ण हो गयी है।<sup>२</sup>

विप्रलम्भ के मुक्तभोगी महाकवि ने विरहविधुरा यशिणी का शिशिर मथिना यशिणी के रूप में जो हृदय-द्रावक चित्र खींचा है—उसमें प्रवास का परिपाण सचमुच बहने प्रगाढ़ एवं ममस् शीं हा उठा है। यशिणी को तुपाय से मारी कमलिनी के समान कहने से उसका क्षीणता की स्पष्ट व्यञ्जना ही रही है, साथ ही शोक विपाद, चिन्ता इत्यादि व्यभिचारिया की भी सुंदर व्यञ्जना ही रहा है।

यश को अपने प्रेम के प्रति असम विश्वास है और वह यह निश्चय रूप में जानता है कि 'मेरे वियोग में मेरी पत्नी अत्यधिक रोदन के कारण सूजी हुई आँखा वाली, निश्वासोच्छ्वास के कारण फाँक अधगच्छवाला, एक पाश में लटा हुई तथा लटकते हुए कशा के कारण स्पष्ट मुख न दिखाई देने वाली, भयाच्छांति ही जानने के कारण शीघ्रप्रकाश वाल चन्द्रमा के समान बड़ी ही दीन दशा का धारण कर रही होगी। कभी तो वह देवताओं का आगमना कर रही होगी कभी अनुमान न भग

चित्र बना रहा हागा जोर वभा पिजरस्य सारिका स पूछ रहा हागा कि ह मधुर-  
वचना । क्या तुझे कभी अपन प्रिय की याद आता है क्याकि तू तो उनका  
प्यारा थी ?

इस सारिका सम्भाषण के माध्यम से यशिता का उत्कण्ठा का सुन्दर व्यञ्जना  
हो रहा है । प्रारम्भ के इन शब्दों में विरहिणी यशिता की चट्टाआ का ही परिचय  
मिलता है ।

यहाँ मतिनाथ ने भी प्रवासावस्था में विरह वरना का असकाम दशाभा का  
उल्लेख किया है—व इय प्रकार है—नयनसङ्ग मनसङ्ग सक्न्य जागर वृशता  
जगति नज्जा दयाग उमात् मूच्छा जात या मृत्यु । इम म नयनसङ्ग गीर वजु -  
प्राणि ना सयाग स पूव होना है जोर यहाँ यश यशिता का सयाग ता ही चुका था  
जत इस दशा का वणन कवि ने नहीं किया है । इस प्रकार प्रथम तथा अतिमावस्था  
के अनिरिक्त जय सभा दशाभा का चित्रण कालिदास अनुपम रूप में प्रस्तुत करते हैं ।  
यथा मधुम बहुता है—‘ह सोम्य । मतिन वसन अद्भुत म वाणा की रत्नकर मर नाम  
वात गो को उच्च स्वर में गान की इच्छुत वह प्रिया अश्रुविन्दुना से जाद वाणा के  
तारा का जैम तम पाछकर (किन्तु मरा स्मरण हो जान के कारण) पुन पुन  
स्वरचित स्वरा के आरोहावराह को ही भ्रूवता हुई निम्नार्द दगा ।’

यहाँ ‘मनसङ्ग’ दशा का चित्रण है ।

किर सङ्कल्पावस्था—का चित्रण करने हैं—मर विरह के प्रथम दिन से हा  
वह दहला पर नित्य पुष्प रत्नकर गिन रही होगी कि अब विरह के कितने मास शेष रहे  
गय है जयवा वह भर साथ किए गए रति मुख का मन हा मन जानद ल रहा होगा  
क्याकि प्रियतम के विरह में स्त्रिया के प्रायः एस हा विना हुआ करते हैं ।

‘जागरावस्था का भी वणन इस प्रकार हुआ है—‘ह सोम्य । कायों में व्यस्त  
रहने के कारण तुम्हारा सखा को दिन में भरा दुःख विरह ने पाडिन करता हो गा,  
किन्तु रात्रि में मनाविना का कुछ उपाय न होने के कारण समय बड कष्ट से व्यतात  
हाता होगा इसलिये अधरात्रि के समय उस साधवा का मर सद्दश से पर्याप्त सुख  
पहुँचान के लिए भवन के आरोस में स्थित होकर दखना वधाकि उस समय वह पूण  
निद्रा न आने के कारण भूमि पर पडा मिलगी ।’

हूँ माई ! मेरी प्रिया जिन्हें गयाग क समय पूण रति-मुग का जानद लेना हुई व्यतीत करता था, उही विरह के कारण दोष राना का मानसिक व्यथा म शीघ्र विरह शय्या पर एक हा करवट लेटी हुई, पूव व चिन्त्र मे वचन एक वनामात्र शेष रहन वानी चन्द्रमा का आकृति व समान दुन व होकर विरह व उष्ण अशुभा का बहा-बहा कर व्यतान कर रही होगी ।<sup>१</sup> यहाँ वार्तावस्था का वणन हुआ है ।

यहाँ यतिना की विरह वदना का यडा ही सुन्दर चित्रण कवि न किया है । उसकी दशा कवल एक कला-शेष बचे चन्द्रमा के समान हो गयी है । जिम प्रकार प्रमान पान पर चन्द्रमा का अंतिम कला भी नष्ट हा जाता है उसी प्रकार यग का तास्य यह है कि यदि मेरी पत्नी का शाघ्र हा मरा तुगन रादश न मिभगा ता वह चन्द्रमा की अंतिम कला व समान शीघ्र ही मर जायेगा ।

गयाक्ष माग से प्रवश करता हुई अमृत व समान शातल चन्द्र विरणा व। ओर पूव प्रीति के कारण प्रिया मुह कहेगी किनु विरह व कारण नन व क्रिणें उने तप्त करन नरेंगी ता अपन दु ग के कारण अमुआ म भारी वनी पलवा सं नेत्र वत् करसी हुई वात्ला म आच्छादित दिन म न विकसित जोर न जविकसित स्यनकमलिना क समान न जागती हुई ओर न सोगी हुई मरा प्रिया दिखाई दगी ।<sup>२</sup> यहाँ 'विषय-द्वेष या अरति' का वणन हुआ है ।

ह मघ । विरह वान म आजकन कोर जल से स्नान करन व कारण मूछे ओर बिना सँवाग हुए वान, उसके गान पर वार वार लटक कर किसलय जैसे मृदु हाठा का मुनुसा दन वान नि श्वासा म हिल र्ण होगे । स्वप्न म किसी प्रकार मरा सम्भोग प्राप्त हा सक यह समझकर आँवा म नीद बुला रही होगी किनु निरंतर प्रवाहित होन हुए अशु उसको आँवें नही लगन देती हागा ।<sup>३</sup> यहाँ लज्जा त्याग का वणन हुआ है ।

हे मित्र ! विरह के प्रथम दिन से ही कुमुम माल की हयागकर एक वेणा धारण कर लिया हागा जो शापात म विरह मे रहित हुए मेरे द्वारा खोना जान वाना है, स्पश म वनेशदायक, कठार तथा उनचे हुग अपन बाला की बिना कटे हुए नायूना घावे हाथ से कपाना पर मे वार वार हटाती हुई मेरी प्रिया दिखाई दगी ।<sup>४</sup> यहा चित्त विभ्रमदशा का वणन हुआ है ।

ह मध ! अत्यधिक दुःख व कारण मरणा व मध म पशु हृदं जाभूरण विह न कामन शरीर का धारण करने वाला उम अमला को दमनर तुम भा उसका दशा पर अपन नवीन जन्मया अथु गिराण विना न रहू गारोगे क्याकि दयातु हृदय बान प्राय गभा नाग इमरा व तु ल का दमनर द्रवाभूत हा जात हैं ।<sup>१</sup> इध प्रकार यही मूत्रा वस्था का वणन हुआ है ।

इस प्रकार प्रिया का विहावस्था व विस्तृत परिचय दन व पश्चात् य मध का विश्वास त्रिनाता है कि ह मगा । मी जो कुछ भा कहा वह असत्य गही है । तुम्हारा सगी का हृदय मर प्राति अनुगाण स पूण है । जत अपन का मुभग समपन का भाव हा मुझे वाचान नया वता ग्या है अविनु ह वधु ! जत तुम मरी प्रिया व पाम जायोग तो मय कुछ तुम्ह शाघ्र हा प्रत्यय हा जायगा ।<sup>२</sup>

इसक पश्चात् यध अपना प्रिया का विरह ग्राहता का जा विस्तृत परिचय दता है वह मय अनुभाव री शक्ति म नी थाया है । यध मध म कता है— ह मध ! जत तुम उसने पास पढ़ेबोगे, तत उम मृगनयना का वह वाया जीव पत्रक उठगा जिस पर वात दन ह्य हाग जा अजत न लगान म रखा हा गया हागी तथा बहुत दिना म मदिरा पान न करने व कारण भीडा व विनास का भूल गयी होगी । ह मध ! तुम्ह दमन हा बदली व तन के ममान गोरवण उसका जीव भी पडक उठगा जिस पर मर नलगत अद्विज य किनु तुभाय से तुम्ह जत मर हाय व न तो नल तन के बिह्न ही वन मिलेगे और न उस पर मुता जाल ही ।<sup>३</sup> इमी क्षण यध का कुट्ट स्मरण हा जाता है जोर वह मध का समझाना हुआ कहता है ह मध ! यदि उस समय मरी प्रिया निरा का आनन्द ल रहा हा ता पुनचात उसका पाछे बैठकर क्षणभर प्रतीक्षा करना जिससे वही स्वप्न म वह मरा आलिङ्गन कर हा त ता मर कण्ड म पडा हृदं उसका भुजाए निशविच्छेद के कारण छूट न जाण ।<sup>४</sup> जत एक प्रहर ठहरन पर भी व जीवें न खान ता तुम मरा प्यारा का अपन जन का शातल फुहारो ने जगा दना और धीम गजन व शय्या म कहता ह सोभाग्यवती ! मैं तुम्हारे पति का त्रिय मित्र मध तुम्हारे पास उमका (शुभ) सादश लनर जाया हूँ । ह अवला ! तुम्हारा वियाग सहकर रामगियायम पर कुशन स है और तुम्हारी कुशलता को जानन का इच्छुक है ।<sup>५</sup>

१ उ० मे० ३५

२ उ० मे० ३७

५ उ० मे० ३६

२ उ० मे० ३६

४ उ० मे० ३८

६ उ० मे० ४०

७ उ० मे० ४१

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मेघदूत में विप्रलम्भ का चित्रण उभयनिष्ठ है अतः नायिका का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् अन्त कवि सादेश कथन के माध्यम से यक्ष के विरहावस्था का वर्णन प्रारम्भ करता है। यहाँ से जन आश्रय यक्ष है और यतिणी आलम्बन है और यक्ष की समस्त चेष्टाएँ अनुभाव रूप हैं। यक्ष कहता है कि 'हूँ मेघ ! मरी प्रिया मैं कहना कि तुम्हारे प्रिय का माग बैरी ब्रह्मा रोके बैठा है अतः वह तुमसे मिलने में असमर्थ है किन्तु वह अपने क्षीण शरीर अत्यन्त सतताप, अश्रुयुक्त उत्कण्ठित एवं दीर्घ उच्छ्वास लेन वाले अङ्गा से यह ममत्व लेता है कि तुम भी उसी प्रकार क्षाण, सतत, अश्रुयुक्त, निरन्तर उत्कण्ठित, उष्णोच्छ्वासे त रहो' ।<sup>१</sup>

यहाँ नायक नायिका की ममदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है, उत्कण्ठित होना, उच्छ्वास लेना अश्रुविमोचन, इत्यादि अनुभाव है तथा दैव विपाद व्यभिचाराभाव है।

विरहकाल में विरहिणियाँ के चित्त बहलान के कुछ उपाय होते हैं जिन्हें मनोविनाद के साधन कहा जाता है जैसे सादृश्यदर्शन, चित्रदर्शन स्वप्नदर्शन प्रियाङ्गु स्फुटस्पर्शन इत्यादि इन सभी मनोविनोदों को कवि ने बड़ी ही निपुणता से प्रस्तुत किया है।

सादृश्यदर्शन—

'हे प्यारी ! मैं यहाँ बैठा प्रियङ्गु की लताओं में तुम्हारे शरीर की चकित हिरणियाँ को चितवन से तुम्हारे दृष्टि विनासा की चन्द्रमा में तुम्हारे मुख शोभा की मयूर के पंखों में वशों की तथा छोटी-छोटी नदी का तरङ्गा में तुम्हारे भ्रूविनासा की कल्पना करता हूँ। परन्तु हे प्रणयकुपित ! मुझे खेद है कि इनमें किसी भी एक वस्तु में पूणतया तुम्हारी समता नहीं मिल पाती ।'<sup>२</sup>

चित्रदर्शन—

'हे प्रिया ! शिखाखण्ड पर प्रणयकुपित तुम्हारा आकृति बनाकर ज्याहा अपन को तुम्हारे चरणों में गिराना चाहता है, त्वाही दारम्बार प्रवाहित होने वाला अश्रुओं से आँखें भर जाती हैं जिसमें मैं तुम्हें ठीक से देख नहीं पाता। निदयी देव उस चित्र में भी हम दोनों का समागम सहन नहीं कर पाता ।'<sup>३</sup>



स्वप्न दशन—

जब कभी स्वप्न में किसी प्रकार तुम्हें दखरर प्रगाढ़ जानिङ्गन करने के लिए अन्त हाथ ऊपर फैलाना है तो उस समय वनस्पति भी मरी तशा पर दुला हाकर अपन माना के समान बड बडे अधुनण वृग के कामन परतों पर गिराया करने है ।<sup>१</sup>

प्रियाङ्गुमृष्टम्पजन—

ह प्रणशान ! दकताह के बारता के पुता का शाप्रता में स्थावर उनस बहन वात रम से गुगधित दुर्द दणिणावन न बहन वाता हिमावन के पवन का मैं यह समय कर जानिङ्गन करता है कि सम्भरत इसन तुम्हारा अङ्ग का स्पण किया हागा ।<sup>२</sup>

यद्य पुन अपना विरहाल्लषा का कयन करना हुआ कहता है ह चषवनयन ! मैं मन में यहा प्राधना करता है कि किसी प्रकार लम्ब-लम्ब पहरा वाता रात्रि क्षण की भांति छाया हो जाए तथा तिन भा सत्र क्रतुना में म-म-म धूप वाता हो जाए तिनु मरा यह सत्र प्रार्थना तुलभ से गया है और सन्तापपूण मर हृदय का तुम्हारा विरह बन्नाभा न अमहाय बना दिया है ।<sup>३</sup>

पुन स्वयं हा वह अपना प्रिया का पिय बाना हुआ कहता है—ह प्रिये ! जनक प्रकार से माच विचार करता हुआ मैं जन जापकी हा पिय बंधाता है इसलिए ह चुनग ! तुम भा अत्यधिक कानर न हा । मुव जीर दुख ता पहिय के चक्र के समान मरैव जान-जान हा रहत है ।<sup>४</sup>

वास्तव में वियोगा प्राणी के लिए जाशा हा सत्रम बडा जबलम्ब होता है— जाचित रहने के लिए । वियोग के पश्चात् मितन को आशा ही उह बठिन से बठिन तुम का सहन का प्रेरणा दना रहता है । यदि वियागा जाशावती न हागा तो सम्भव है उनकी मृत्यु हा जाए इसालिए ता यश प्रिया का आशा बधाता हुआ कहता है—ह पुन ! विष्णु भगवान् के शेषशय्या से उठन के पश्चात् मर शास का अंत हा जायगा । अत विरह के शेष चार महान किसी प्रकार आल निमावन कर यतात कर दा । इमक माता हम शरद् क्रतु की पूणरपण विकसित चांतिना वाली रात्रिया में विरह न त्रिगुणित हुद जनक अभिलाषा-ना को पूण करण ।

यहाँ अपना परना को विश्वास तिलाता हुआ अभिमान का कयन करता हुआ कहता है—ह जनक ! पहल मर गल में लगकर सोना हुई, तुम कुछ ज्व्व स्वर से रा

१ उ० मे० ४६

२ उ० मे० ५०

उ० मे० ५१

४ उ० मे० ५०

५ उ० मे० ५३

कर जाग पड़ी थी और मर बारम्बार पूछने पर ह मिनवा तुमको किसी स्त्री क साथ  
रमण करते हुये स्वप्न म देखा है—इस प्रकार तुमन मन-ही मन मुस्कराने हुए  
उत्तर दिया था ।'

यश का प्रेम एकनिष्ठ है और वह अपना प्रिया से अपार स्नेह करना है  
इसलिये वह कहता है—ह काली नखवाली । पहिचान का यह चिह्न दन व कारण मुझे  
कुशल समझकर तुम लोक निन्दा से मुझ पर अविश्राम न कर बैठना । कहने हैं विरह  
म प्रेम कुछ कम हो जाता है किन्तु सत्य ता यह है कि भोग न कर सकन व कारण  
अभिलषित वस्तु के प्रति बड़े हुए रसवाना होकर, प्रेम पु ज बन जाता है ।<sup>१</sup>

वस्तुतः विरह ही सच्चे प्रेम का कसीटी है । वियोग म प्रेम और अधिक तीव्र  
और विश्वसनीय बनता है । उपयुक्त श्लोक के द्वारा कवि न प्रेम का सुन्दर व्यञ्जना  
की है । प्रेम अवस्था नेद स्नेह स बड़ा माना गया है । रमाकर मे स्नेह का उम  
चरम काटि को प्रेम कहा गया है, जिसम क्षणभर का भी वियाग अमह्य हा जाता है ।

इस प्रकार प्रथम वियोग के कारण दु खी अपनी प्रिया को भली प्रकार धिया-  
वलम्बन कराकर<sup>२</sup> यश मेघ स पूछता है कि हे प्रिय सखे ! क्या तुमन अपन मित्र व  
काय करन हतु निश्चय कर लिया' । यक्ष वास्तव मे विरह म इतना उन्मत्त हा  
गया है कि मेघ के मौन का स्वीकारोक्ति समझ लेता है ।<sup>३</sup> और उसके मुखमय भवित्य  
की कल्पना करने लगता है ।<sup>४</sup>

इस प्रकार मेघदूत विप्रलम्भ यश एव यशिणा की विरह व्याकुलता का अभि-  
राम चित्र प्रस्तुत करता है । काव्य म एक दूसरे क वियाग स दु खी, परस्पर  
जालम्बन और आश्रय बने नायक नायिका के अनुभावा का ही अधिकांशत वणन  
हुआ है । आपाड स प्रथम दिन मेघोत्थान का दर्शन करना उद्दीपन विभाव है ।  
नायिका द्वारा निश्वासोच्छ्वास लेना, शय्या पर करवटें बदलना, गीतगायन, सारिका  
से सम्भाषण करना, आभूषणा का त्याग कर देना, भूमि पतनादि अनुभाव हैं तथा  
पश्चात् म आश्रय बन हुय यक्ष द्वारा प्रिया आनिङ्गन करन के लिए हाय उठाना,  
चित्र बनाकर चरण म गिरना, प्राथना करना, अश्रुविमोचन इत्यादि अनुभाव हैं ।  
विपाद, दैन्य, ओरसुख्य, मोह, चि ता, वितक इत्यादि व्यभिचारा भावो की यथा-  
स्थान सु दर यजना हुई है ।

१ उ० मे० ५४

२ उ० मे० ५५

३ उ० मे०

४ उ० मे०

५ उ० मे०

## ऋतुसंहार—

महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'ऋतुसंहार' प्रवृत्ति का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। इसमें ऋतुभा का अधिकतर उद्दीपन विभाव रूप में वर्णन होने का कारण तथा सिंगिष्ट आनन्दवन एवं आश्रय का स्पष्ट उल्लेख न होने का कारण साधारणाकरण का प्रक्रिया नहीं हो पाया और सहृदयता का रसानन्द नहीं मिल पाया। ऐसा प्रतीत होता है जैसा कवि भविष्य का शृङ्गार निम्नण का यागता के लिए एक प्रकार की उद्दीपन सामग्री एकत्रित कर रहा है। ग्राम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'सूर्य का धूप बहून तापण हुआ गया है, रात के समय चाँद प्रिय लगता है, शीतल जल में बहून दर तक नहाया जा सकता है सूर्या मुग्धवती हो गयी है और प्रमिया में कामदेव का बग मन्द पड़ गया है।'<sup>१</sup>

ऋतुवर्णन में कालिदास ने जीव नाक कान आदि बाह्य इंद्रिया में ग्रहात हात वान प्रवृत्ति के गायक रूप और मानव जीवन पर उनके स्थूल प्रभारा का वर्णन साधे-साधे रूप में कथन के रूप में किया है। वाक्य में सूक्ष्म बन्धना का प्रायः अभाव-मा है। मानव जीवन पर ग्राम का प्रभाव का एक लौकिक दृष्टि—स्त्रियाँ न बहुत बढ़त हुआ रक्षमा साक्षात् पढ़न कर उस पर करघना बाँध ला है चन्दन में पुन स्तना पर हार धारण कर लिए हैं और स्नान के पश्चात् छटा की भीनी मुग्ध में मुग्धचित्त कर दिया है। अतः जब प्रेमी लोग उनमें मिलन आन हैं तो इन शीतल उपचारों के कारण उनका भावपल्लव मिट जाती है।<sup>२</sup>

विद्वाना ने ऋतुसंहार का कालिदास का प्रथम रचना माना है। उनका कथन है कि यह सर्वप्रथम रचना है इसलिए इसमें प्रमा का उदात्तता एवं परिमार्जित रचि नहीं जा अप्रिय पायी जाता है। यद्यपि इसमें शृङ्गारिक पृष्ठभूमि में प्रवृत्ति का सूक्ष्म निगमन एवं चरित्र चित्रण है तथापि इसमें शृङ्गार में सर्वत्र वासना का आधिक्य है।<sup>३</sup> ग्राम का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— इस समय लोग कामदेव को उसी प्रकार जगान हैं जैसा बाद श्रा जयन मुग प्रेमा का चन्दन में मुग्धमित शीतल जल से आद्र पद्मा के हवा में या हारयुक्त स्तन प्रेमा के वाक्य पर रत्नकर या वाणा के साथ मधुर गाय या गायक जगाया करती हैं।<sup>४</sup>

१ श्ल० सं० १११

२ श्ल० सं० ११४

३ 'कालिदास की कला और संहृति', प० देवीदत्त शुक्ल पृ० ५११२

वषा ऋतु में स्त्रियाँ अपने भारी भारी नितम्बों पर केश सटकाकर, काना में सुगन्धित पुष्पा के कणफूल पहन कर, गले में माला पहनकर मदिरा पीकर अपने प्रेमिया के मन में प्रेम उकसा रही हैं।<sup>१</sup>

उद्दीपन विभावात्तगत प्रकृति का चित्रण बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है—श्वेत कमल के समान उज्ज्वल वाल लज्जित पहाड़ी चट्टानों का चूमते चलते हैं और जिन पर मयूर नृत्य कर रहे हैं, उन चट्टानों से बहती हुई निवरणियों को देखकर प्रेमिया के मन में हलचल मच जाती है।<sup>२</sup>

वषाऋतु में प्रकृति सुन्दर यदि विदग्धा का तरह प्रतीत होती, तो शरद् में नववधू के समान। शरद् काल में जहाँ एक ओर सम्भोग शृङ्गार की सुन्दर छटा लीख पड़ती है और प्रकृति के उन्मादक रूपा का दबकर कामिया का मन जावाडोल ही उठता है, तो दूसरी ओर विप्रलम्भ की भाँललित छटा लक्षित होती है—जब विदेश में गए हुए लोग नील कमला में अपनी प्रियतमा की काली आँखों की मुन्दरता देखते हैं, मस्तिष्क का ध्वनि में सुनहरी मखता की रत्नझुन सुनते हैं और वधुजीव के पुष्पा में अधरा का रश्मि शोभा देखते हैं, तो वे मुग्ध रुब खींचकर रदन करने लगते हैं।<sup>३</sup>

यहाँ नील कमल में नश्रदशन, हस-ध्वनि में मेखलास्व श्रवण वधुजीव में अधर दशन करना उद्दीपन है तथा अश्रुपान करना, भ्रातृचित्त होना अनुभव है। भ्रम व्यभिचारा भाव।

शरद् के मादक प्रभाव से चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर मुखवाली कामिनियाँ अपना सब गाना-बजाना त्यागकर, अत्यंत कामातुर होकर अपने सुन्दर कमलवत् हाथ अपने प्रेमिया के हाथों में डालकर उन घरों में चली जा रही हैं जहाँ सुगन्धित पुष्प शय्या बिछी हुई है।<sup>४</sup>

यहाँ कामातुर होना, हाथ में हाथ डालना, घरों में गमन करना इत्यादि अनुभव हैं।

हममें ऋतु का उद्दीपक वर्णन तो काम क्रांटा का आवृत्त रूप में प्रस्तुत करता है। इस ऋतु में जलबली स्त्रियाँ अपने नितम्बों पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल एक कुमकुम के रंग में रमे मनाहर हार नहीं पहनती। न तो वे कामिनियाँ अपनी भुजाओं पर कङ्कन और भुजबन्ध ही पहनती हैं, न नितम्बों पर रश्मी वस्त्र और न ही स्तना

१ ऋ० स० २।१८

२ ऋ० स० २।१६

३ ऋ० स० ३।५

४ ऋ० स० ३।२३

पर महीन वस्त्र धारण करता है।<sup>१</sup> आजकल सम्भागच्छा से यह शरीर पर चम्पू लगाती है मुँह पर बेल बूट बनाती हैं और वेश कालागुरू के धूप से मुर्गाधन करती हैं। सम्भाग के थम से पीन और म्लान मुखवाली कामिनियाँ हसन का बात पर भी यह समझ कर नहीं हँसती कि प्रिय के दाँता न क्षण ओठ टूट खन न लगे।<sup>२</sup>

अनुभावविभावात्तगत प्रेमा द्रष्टा के उद्दाम शृङ्गार का भा वणन मिलता है जो वासना से अभिभूत है।<sup>३</sup> समस्त रात्रि प्रिय के साथ रतिक्राण्ड में व्यतीत करने के कारण किमी युवता की नानी नौली आँखें प्रजागर होकर लाल लाल हो गयी हैं, वेशराशि व्यस्त हो गयी है और वह प्रान वान के मूष का कोमल त्रिणा का भवन करती हुई सा गई है।<sup>४</sup>

यही दशा शिशिर का भा है। इन दिना प्रान वान में स्त्रिया के मुँह लाल लाल लाल लाल बारा से मज्जत आँखा कंधे पर लहरान वेशा से युक्त दमकन हुए मुखों का देखकर ऐसा लगता है माना घर दर में लक्ष्मी आ बसी हा।<sup>५</sup>

ऋतुराज और रसराज का तो सदैव से साथ रहा है। वसंत का लुभावना संग, छिटकी चौदना वीर्यन की कुरू मुर्गाधन पवन मतवाल नौरा के गुजार जोर रात्रि का आसवपाल जाति सभा कामदेव का शयन करन के रसायन हैं।<sup>६</sup> परदश में स्थित मात्रा या हा वियाग से क्षाणकाय हा जाता है, उस पर जब वह मंद मंद प्रवाहित पवन के शक्ति से दायायमान तथा मुनहरे घोर गिरान वाल पुष्पित धाम्न वृक्षा को देखकर तो वह काम के वाणा का चोट खाकर मूर्च्छित होकर गिर ही पडना है।<sup>७</sup>

यह सम्पूर्ण सग शृङ्गार से परिपूर्ण है। इस सग को देखकर ऐसा प्रताप होता है कि कवि को प्रारम्भ में ही वसंत ऋतु के वणन के प्रति विशेष अनुराग रहा है जिसका प्रतिफलन उनके अन्य काव्य (कुमार सम्भव आदि) में हुआ।

इस प्रकार ऋतु सहार में रस का सश्लिष्ट चित्रण नहीं प्राप्त होता। कामि निया का वेशभूषा, प्रकृति के विभिन्न उपमानों तथा ऋतुआ के आगमन से मानव में होने वाले परिवर्तना एवं उनका प्रतित्रियाया का ही काव्य में विस्तृत वणन प्राप्त होता

१ ऋ० सं० ४१३

२ ऋ० सं० ४१६

३ ऋ० सं० ४१२२३

४ ऋ० सं० ४१५

५ ऋ० सं० ४१३३

६ ऋ० सं० ६१३५

७ ऋ० सं० ६१३०

है जो उद्दीपन विभाव के हा अतगत हात है। इसमें कवि की शृङ्गारलिप्सु प्रवृत्ति की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

### (१) अङ्गभूत रस—

महाकाव्य में प्रधान रस के अनिरिक्त जय रस भी अङ्गरूप में यदा-कदा निष्पन्न किए जाते हैं।<sup>१</sup> महाकाव्य में मानव जीवन का साङ्गापाग चित्रण किया जाता है और जीवन में सदैव एक ही रस या भाव नहीं बना रहता। कभी हाम परिहास है तो कभी रादन-विलाप, कभी उत्साह है तो कभी अपार शाकावेग, कभी वात्सल्य की सरस धारा बहती है तो कभी श्लोक का प्रचण्ड ताण्डव देवन को मिलता है। जीवन की इसी विविधता में ही आनन्द है। कुमार सम्भव में भी अङ्गीरस शृङ्गार के अनिरिक्त करुण, रोद्र, वीर, भयानक इत्यादि रसों का निरूपण हुआ है। अङ्ग जयवा सहायक रसों का काव्य में विनियोजन अङ्गीरस को पुष्ट करने एवं उसमें प्रवाह तथा तीव्रता लाने के लिए किया जाता है। ये (गौण) सहायक रस मुख्य कथानक के विकास में सहायक होते हैं।

कुमार सम्भव—

### (२) भयानकरस—

किसी भयावह वृत्ति या वस्तु को देखकर जो भय नामक स्थायीभाव का उत्पन्न होता है उसी का परिपोष भयानक रस कहलाता है। उस भयावह आनन्दन का देखकर सारे शरीर का कांपन लगना, रोमांचित होना, पसीना छूटना, मुँह सूखना, मुँह का पाना पडना, चित्ता हाना इत्यादि इस रस के अनुभाव हैं तथा दैव सम्भ्रम, प्रास इत्यादि व्यभिचारा भाव हैं।

शृङ्गार प्रधान प्रेमाख्याना में भयानक रस का प्रस्थान प्रायः नहीं मिलता। कुमारसम्भव में भी ऐसा प्रसङ्ग बस एक बार आया है किन्तु कवि का प्रतिभा से यह सस्वृतसाहित्य का स्मरणीय प्रसङ्ग हो गया है। प्रसङ्ग है शङ्कर के तपावन में मदन के प्रवेश का। यहाँ समाधिस्थ शिव का जो दुग्ध स्वरूप है वह बड़ा ही रोमांचकारी है।<sup>२</sup> उन्होंने वीरासन लगा रखा है, शरीर स्थिर है तथा दाता कंधे खुले हुए हैं।<sup>३</sup> जयकलाप भुजङ्गों में बंधे हैं दाहिने कान में रुद्राक्ष माना लटक रही है तथा कटि से मृगधाला कमी हुई है।<sup>४</sup> भीह तनी हुई है, और नत्र स नासिका के

१ अङ्गानिसर्गोऽपि रसा । सा० द० ६।३।१७

२ कुमारसम्भव ३।४४

३ कुमारसम्भव ३।४४

४ वही ३।६६

अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर है और शरीर व चलन वात पवना का राक कर इस प्रकार वेठ हुए हैं माना निवान स्थान पर निष्कम्पित प्रत्याप हा अथवा तरङ्गा स रहित निश्चन कोई नान हा ।<sup>१</sup> उनक विनम्र स जा नत्र निस्मरित हा रहा था वह कमल-तनु म भा अनिश्चय कामन वातचन्द्रमा का शाभा का भा अनिश्चित करन वाला था । इस प्रकार ध्यान-मग्न भगवान् शङ्कर अपन उस अविनाशा जात्मा का ज्याति का त्पन भातर दम रट् थ जिम नाना लाग अपना नवा इन्द्रिया व द्वार को राक कर मन का समाधि म वश म करक हृदय म सा तात्कार कर पान है ।<sup>२</sup>

मन तथा बुद्धि स अगाधर विनम्र व एग रूप का समाप म दमकर मन्त्र व अनुभाव रूप म यह प्रतिव्रिया हानी है कि भय व कारण उसक हाय एम तान पड जान ह कि वह यह जान हा नहा पाता है कि उसक हाय म धनुष वर गिर गया । उसकी मारा शक्ति तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है । वस्तुत यह भगवान् शङ्कर का समाधिस्य शान्त सात्विक एव सौम्यतम रूप है किन्तु जैम चार पुत्रिम का दखकर टर जाता है वैम हा शिव का शान्त रूप कामचार व मन म भय उत्पन्न कर दता है ।

यही शङ्कर का दुबग रूप जालम्बन है । हाय डाल हो जाना, शक्ति नष्ट होना आदि अनुभाव हैं । सम्भ्रम ग्राम जादि अभिचारा भाव हैं । इस प्रकार भयातक रस का परिपोष हाता है ।

### रोद्ररस—

रोद्ररस का स्थायाभाव [ अविषकमय ] क्राय है । जानम्बन शत्रु अथवा कोई अनिष्टकारी व्यक्ति हाता है । शत्रु को चष्टाय उत्पादन विभाव व जतगत जाता ह । भीला का टका हाता, जीवा का लान हा जाना तात पानना, होठ चबाना इत्यादि अनुभाव हैं । अमप, गव उग्रता वपनता मन् जमूयानि इमक सभारा भाव हैं ।

भयावहृशिव का दखकर भा मन्त्र हिम्मत नहीं हारता । अनिश्च मुन्त्रा पावता व वहाँ उपस्थित हो जान पर उसका निर्वाण भ्रूषिष्ठ भा शीघ्र पुन द्विगुणित हाकर सधुणित हा उठना है आर वह अपना शर सन्धान प्रारम्भ करता है । शर सन्धान क परिणामस्वरूप शिव किंचित विनुष धेय हो जात हैं और व पावता क

१ कुमारसम्भव ३।४७।४८

३ वही ३।५१

२ कुमारसम्भव ३।४६

४ वही, ३।५२

विम्बाफनाधरोष्ठ पर अपनी स्नेहमयी दृष्टिपात करन लगते हैं।<sup>१</sup> किन्तु जितेन्द्रिय त्रिनयन तत्काल ईन्द्रियशोभ को बलवत् प्रशान्त करने, अपन चित्त के विकार का हेतु जानन क लिए दिग्गत मे जब दृष्टि दौडाते<sup>२</sup> हैं ता प्रहार के लिए उद्यत धनुष की प्रत्यक्षा खीच, उह क्रोध का जालम्बन काम दिलाई पडता है। वस फिर क्या था, अपन तप म विघ्न उपस्थित करन वाले काम पर इतन ब्राधित हो उठते है कि तत्पण ही उनका त्रिनयन मुल जाना है और ग्रहसा उसमे से क्रोधाग्नि की प्रचण्ड ज्वा नाएँ निकल पडती हैं।<sup>३</sup> आकाश मे भयभीत दबगण हाहाकार कर उठने हैं—हे प्रभो ! अपन क्रोध को राकिए-रोकिए, किन्तु दु ख कि उनका यह प्राथना शिव तक पहुँच भी न पायी था कि अग्निज्वाला ने कामदेव का जलाकर भस्म ही ता कर दिया।<sup>४</sup>

विज्ञान का कहना है कि विद्युत की गति ध्वनि की गति म तेज होती है जा विद्युत त्रिनेत्र स निकली वह उस ध्वनि स कही अधिक तीव्र थी जो दबता-जा की आकाश स चली थी। वस्तुतः महाकवि की प्रतिभा स कोई नान परोक्ष नहीं रहता। उम भी तो आचार्यों ने कवि का तृतीय नत्र कहा है।<sup>५</sup>

यहाँ शिव आश्रय हैं तथा कामदेव आनम्बन। काम द्वारा शर-सन्धान करना उद्दीपन विभाव है। त्रिनयन स अग्नि ज्वाला निकलना, दबता-जा का हाहाकार करना थादि अनुभाव हैं तथा अमर्ष, उग्रता इत्यादि यमिचारी भाव हैं।

यहा शिव ने काम का भस्म करन क लिए जा अतिशय क्रोध किया, वह विवेकसगत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि काम न जो भी कृत्रिम किया वह इतना धय न था जिसके कारण उसे इतना बडा दण्ड दिया जाता। इसालिए तो शिव को तमोगुण का प्रतीक माना जाता है।

रीदरस की हल्की याकी पचम सग के पावती तपस्या प्रसंग मे दृष्टिगोचर हाती है। उद्दीपन रूप म ब्रह्मचारी के मुख से अपन इष्ट शिव की निन्दा सुनकर पावती के होठ क्रोध से कापन लगते हैं आँखें लाल हो जाती हैं मीह विकृ चित हो जाता हैं। व ब्रह्मचारी की आँख तरर कर दखती हुई कहती हैं।<sup>६</sup> जा शिव क वास्तविक स्वरूप को नहीं जानने व ही उनने जलोकसामान्य कार्यों की निन्दा करने हैं। वे सवशक्तिमान श्रीलोकय नाथ हैं, सत्र का कल्याण करने वाले हैं उनके वास्तविक स्वरूप को सधार म कोई नहीं समझ सकता। वे पवित्रात्मा हैं जीर बडे-बडे देव-मुर्ति

१ कुमारसम्भव ३।६७

३ वही ३।७१

५ वही ३।७२

२ कुमारसम्भव ३।६६

४ वही, ३।७२

६ वही, ५।७४



अहनिश उनकी पूजा किया करत हैं, उस इश्वर क ज'म और बुल को कोई किस प्रकार जान सकता है । इसलिए यह विवाद अब समाप्त काजिए ।

इतनी खरी खोटा मुनन क बाद भा ब्रह्मचारा पुन कुछ होठ फ'काना है किन्तु पावती अत्यन्त श्रोधाभिभूत हो जाता हैं और रापत्रूण स्वर म सखी स कहता हैं इस ब्रह्मचारा के हाठ पुन फ'क रह हैं और यह कुछ और कहना चाहता हैं । निन्तु इमे मना करा ।'

यहाँ ब्रह्मचारा जानम्बन है । उसकी उन्टा सावा उत्तियाँ उद्दापन विभाव है पावती क नेत्र लात हा जाना होठकम्पन भौहा का तन जाना तथा ब्रह्मचारा का प्रताडित करना इत्यादि अनुभाव हैं । अमप उग्रता इत्यादि पमिचारीभाव हैं ।

#### ( ४ ) करण रस —

करण रस का स्थायी भाव शोक है । यह शोक वनशविनिपति अष्टजन-विप्रयाग, विभवनाश वद व'धन, उपद्रव उपधानाँ कारण से उत्पन्न होता है ।<sup>१</sup> धनजय का वधन है कि— शोक' या तो इष्टनाश क परिणाम स्वरूप होता है या अनिष्ट की प्राप्ति म हाता है ।<sup>२</sup> वित्त वैद्युय का शोक कहा गया है । शोक का आस्वाद ही करण रस है । इसका आनम्बन दीनदशा को प्राप्त कोई प्रिय व्यक्ति जाना है । उद्दापन विभाव प्रिय व्यक्ति के स्नेहादि गुणा का चिंतन स्मरण तथा कर्ण दशा का श्रवण इत्यादि होता है । अनुभाव मूच्छा रतन उच्छ्वाम विलाप, दवनि ग नाय निदा आदि हैं । रगानि व्याधि विपाद स्मृति, निर्वेद आनि सचारा भाव हैं ।

यद्यपि कर्ण रस शृङ्गार का परमशत्रु है और उसका साथ इसका स्थिति सम्भव नहीं हा सकती है किन्तु आश्रयभेद अथवा अज्ञाति रूप म रखन पर उसका विराध नहीं रह जाना एसा आचार्यों का मत है ।'

शिव की बह्लावाला म मदन के भस्मावशप हा जान पर उसका प्रिय पत्ना रति का विलाप करण रस का मार्मिक दृश्य उपस्थित करता है । पति क नम्माभूत हा जान क पश्चात् मूच्छित रति अपन नव वैधव्य का अमह्य वदना सहा क लिए सपाल'घ हा उठता है'<sup>४</sup> और चारा बार किकतव्यविभूत्ता आख फाड फाड कर दखन लगता है ।<sup>५</sup> किन्तु अद्ध मूच्छावस्था म— है प्राणनाथ ! तुम जावित हा—यह

१ कुमारसम्भव ५।८३

२ नाटय० शा० अध्याय ४ पृ० २१६

३ दशरूपक ४।८१ पृष्ठ ८१६

४ प्व० ३।२०

५ प्व० ४।

६ वही, ४।३

कहती हुई वह ज्या ही खड़ी हानो है—यो ही स्तम्भित रह जाती है—वहाँ तो पुरुष आचुनिकार हरकोपानल में भस्म एक राख का ढेर ही पृथ्वी पर पड़ा है ।<sup>१</sup> उम देखकर वह अत्यन्त कानर हो उठती है जीर मिट्टी में लाठ पोट कर, बाल बिखेर कर विलम्ब विलम्ब कर रोन लगता है और कण्ठ स्वर में कहती है—हे प्रिय ! तुम्हारे अनुननाय मु दर घरार का इस दशा में देखकर मेरा हृदय विदाण क्या हो गया । सत्य है स्त्रिया का हृदय बड़ा कठोर होता है ।<sup>२</sup> तुम्हारे हाथ में अपने प्राण जपित करन वाली मुझ जभागिन से नाना ताडकर तुम इतनी शाघ्रता से वहाँ चले गये ।<sup>३</sup> तुमने कभी मेरा अप्रिय नहीं किया, न मैंने कभी तुम्हारे प्रतिकूल आचरण किया, फिर आज रोती हुई अपनी रति का दशन क्या नहीं देने हो ?<sup>४</sup> पुन वह अपने दोषा का स्मरण सा करती हुई कहता है—एक बार जब गोत्रस्लनन के कारण तुम्हें मेखला न बांध दिया था अथवा जब मैं आन कान में पहन हुए कमल से तुम्हें पाटा था, तब उसका पराग तुम्हारे आँवा में पड़ जाने से, वे दुखन लगा थी—क्या उसे स्मरण करके तो तुम मुझमें नहीं रुठ गये हो ?<sup>५</sup> तुम मुझसे जो माठा मीठी बाने बनाया करने के कि तुम मेरे हृदय में सदा रहता हो—वह सब प्रवचना था क्याकि यदि वे सब औपचारिक बात न होती तो तुम्हारे राख हो जान पर यह रति जीवित कैसे बची रह गयी ? अभा घाड़ी देर पहले जब तुम मेरे पैरा में महावर लगाने बैठे थे और केवल दक्षिण पैर में ही लगा पाए थे कि इसी वाच कठोर हृदय दकताओं ने तुम्हें अपने काय निमित्त बुला लिया । अब आकर मेरे इस वाम पैर में भी महावर क्यों नहीं लगा जात हो ।<sup>६</sup> हे अनन्द ! तुम चन्द्रमा के बड़े प्रिय मित्र थे । जब जब उस चात हो गया है कि तुम्हारा शरीर केवल क्या मात्र ही रह गया तब वह निष्फल उठित हुआ चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में भी अत्यन्त कठिनाई से अपना दुबलापन छोड़ पायेगा ।

इस प्रकार रति कभी अपने भाग्य का जीर कभी अपने कृत्या को स्मरण करके बला वर्ण विलाप करता है । क्याकि आम्र मजरिया, गुनगुनाने भीरें, मधुर कूक करती हुई कायन का दखकर वह और भा विह्वल हो उठती है । पति के विना एक क्षण यतीत करना उसके लिए दूभर हो जाता है और दान स्वर में हे प्रिय ! जब तक स्वर्ग का चतुर अप्सरायें तुम्हें आकर्षित करे—उसके पहले ही मैं जाग में जलकर

१ कुमारसम्भव ४।३

२ कुमारसम्भव ४।४

३ वही ४।६

४ वही, ५।७

५ वही ५।८

६ वही ५।६

७ वही, ४।१६

८ वही ४।१३

तुम्हारी जङ्घापाशा बन्दगी हैं।<sup>१</sup> पुन कुञ्ज विचार करवा हुई कहता है—यद्यपि मैं तुम्हारे पाञ्च पीछे आ रहा हूँ किन्तु मग माथ पर बलझु का टाका तो लग हा गया कि कामदेव क न रहन पर रति थोड़ी दर तक जानी रह गया।<sup>२</sup>

रति इस प्रकार जब विराम रहा था तब उमा समय कामदेव का प्रिय मित्र वसन्त वहाँ उपस्थित होता है। वसन्त को देखकर रति और भा फूट फूट कर राने लगता है क्योंकि दुःख म स्वजना का देखकर दुःखी प्राणा का दुःख द्विगुणित हा जाता है।<sup>३</sup> वह वसन्त का सम्बाधित कर पूछने लगता है—हे वसन्त ! बता-ना तुम्हारे मित्र का यह दशा कैम हो गया। यह दशा ! वह रात्र बना पडा हैं।<sup>४</sup> फिर पति को सम्बाधित करता हुई कहता है—हे काम ! तुम्हारा मित्र तुम्ह देखने क विण उठा उतावला है उस दशन दा। क्योंकि पुरुष अपना पत्ना म प्रेम करने म प्रमान करे, किन्तु अपन प्रिय मित्रा म ता उमका प्रेम अटन हा हाता है।<sup>५</sup> और इस प्रकार रति अन्त में प्राणात्सम करने का तत्पर होता है किन्तु उसा समय आशाशवाणा होता है—कि तुम्हारा पति म पुनमिनन हागा—यह मुनकर उम किंचित धैय हाता है और प्राण याग का विचार छाड दनी है।

इस प्रकार कुमार सम्भव चतुथ सग रति विलाप के माध्यम म कर्ण रम का मार्मिक चित्रण उपस्थित करता है। यहाँ काम म आत्मीयक वियाग हा रति क शोक का आनन्दन है। भूमि पवन क्रन्तन धून म ताटना, पूवधटित घटना-ना का स्मरण उलाहना दना दत्तानि मन्त्र अनुमात्रा का हा मुन्त्रतया बयन हुआ है। दुःख चिन्ता मोह विषाद इत्यादि व्यभिचार भाषा का सह अभिव्यक्ति हुई है।

कालिदास क इस कर्ण प्रसङ्ग पर संस्कृत साहित्य क आचार्यों ने यत्न-यत्न आड निरखे कुञ्ज खरा खाटा मुनाई है। आचार्य सम्भट का बयन है कि कुमारसम्भव के चतुथ सग म कामदेव क मस्म कर दिय जान क पश्चात् रति विलाप का जा वणन किया गया है उमम जयमाह्वपरायणा सत्रा (१।१) स कर्ण रम का प्रारम्भ किया गया है उसक आरम्भ म जय शब्द दिया गया है जा रम को प्रारम्भिक दाति को सूचित करता है। उमक बाद अथ सा पुनरव विह्वना (४।६) इत्यादि म जय 'तथा पुन शब्द म उम रस का दाति करके 'तमवक्ष्य स्तोद सा भृगम् (४।०६) इत्यादि म कर्ण रम को फिर उद्घात किया गया है।<sup>६</sup> इस प्रकार एक हा उभयुन

१ कुमारसम्भव ५।२०

२ वही, ५।२७

५ वही ५।२८

२ कुमारसम्भव ५।२१

६ वही

६ का० प्र०, पृष्ठ ३७१

रस का बार-बार बणन उपभुक्त कुसुमपरिमल के समान सहृदयों के लिए वैरस्योत्पादक हो जाता है अतः दोष है। पुनः पुनः रमोद्दीपन का निराकरण आचार्य जान देवधन भी करते हैं। उनका कथन है -

परिपोष गतस्त्रापि धीन पुण्येन दीपनम् ॥

रसस्य स्याद्विरोधाय, बल्यनोचित्यमेव च ॥<sup>१</sup>

इस प्रसंग में इतना निबन्ध है कि यहाँ महाकवि ने कामदाह के रौद्र प्रसंग में उद्दिग्ध सहृदयों को हृदय को विभ्रान्ति देने के लिए करुण रस उपस्थित किया है क्योंकि रौद्र के पश्चात् पावती या पुनः तपस्या के लिए आन में दूसरे भावों का प्रदर्शन करना पड़ता। इस नाटक के लिए जब तक रङ्गमंच बदलाना न जाय उसका समीचीनता सदिग्ध हो जायेगा अतः कवि ने करुण रस लाकर नाटक के मुख्यवर्णन में मयात्तर का योजना सा का है। अतः यदि आचार्यों ने रतिविलाप को दोष कहा है तो उद्दिग्ध काय की नाटकायता नहीं समझी। क्योंकि काय का यहाँ प्रयाज है—ध्यान निक्षेप करना।

रस प्रकार रस याजना की दृष्टि से यह निर्दोष तो है ही साथ ही जीवित्य का दृष्टि से भी यह दोष रहित है। सम्पूर्ण प्रसङ्ग का पयवेक्षण करने पर यह तथ्य पात हो जाता है कि पहले केवल रति के भस्मीभूत शरीर को देखकर अनाथ रति का शोक उमन्ता है अतः उसके सारे विलाप उन दोनों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध है, किन्तु जैसा कि महाकवि का प्रतिभा ने विवरण दिया है कि दुःख में स्वजनों को देखकर शोक सनत प्राणा का दुःख जनेक द्वार से फूट पड़ता है अतः मिन बसन्त के जाने पर रति का दुःख पुनः उमड पड़ता है। यदि रति उस समय कुछ न कहता, तो सम्भवतः उद्दिग्ध आचार्यों का रति के शोक में मदह हानि लगता। इसलिए उसका द्वारा विलाप अत्यन्त समीचीन है। पता नहीं इन आचार्यों को रति के विलाप से इतना चिढ़ क्या है।

वीर रस —

वीर रस का स्वायी भाव उद्वेग है। यह उद्वेग शक्तिसम्भूत होता है। शक्ति दो प्रकार की होती है—एक आन्तरिक तथा दूसरी बाह्य। आन्तरिक शक्ति को हम मनोबल कह सकते हैं और बाह्य को सहाय्य। अतः अन्तर्गत विभाव कोई समर्थ स्थित शत्रु, ऐश्वर्य, साहसपूर्ण काय तथा यथादि होता है। शत्रु की ललकार युद्धभंगी इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। आत्मा का लान हो जाना, शस्त्र प्रहार, होठ चवाना,

सौम्य संचालन, चर्चाई करना तथा आवेश, रोमांच, इत्यादि अनुभाव हैं। मति, धृति, गव उग्रता इत्यादि व्यभिचारा भाव हैं।

कुमार सम्भव क नृताय सग म इन्द्र-कामदव सवात् म कामदव का गर्वोत्थिया का वणन हुआ है तथा उन गर्वोत्थिया क माध्यम स उत्साह स्याया मार का किंचित झाका दिखाई पड़ती है। इन्द्र का आना स काम उनक दरबार म उपस्थित हावा है तथा जान ही अपनी शक्ति का परिचय सा दना हुआ कहता है— ह स्वामी ! आप जाना दाजिए ! ताना लाक म ऐसा कौन सा काय है जा आप मुचम बरवाना चाहत हैं।<sup>१</sup> कहिए—ता ऐसा कौन पुरुष उत्पन्न हा गया है, जिसन बहुत बडा बडा तपस्याय करव आपक मन म ईष्या जगा दा है। आप उसका नाम मान बवा दाजिए ता मैं जाकर उस अपने धनुष वाण स गण भर म जान लाता हूँ।<sup>२</sup> ऐसा कौन सा शत्रु है जा भवकनन से चक्राकर मुक्ति पान का तत्पर हा उठा है मैं उस अना मुदरियो क कटा म म फौमाण ददा हूँ।<sup>३</sup> यदि आपका वह शत्रु शुक्राचाय म भी नाति पत्कर जाया हागा ता मैं जत्यन भाग का इच्छा को ऐमा न्न बनाकर उसक पास भेजता हूँ जा उसक धम अर्थ दाना को नष्ट कर दगा।<sup>४</sup> अथवा ऐसा कौन कामिना आपक चचन मन म बैठ गया है —मैं उस पर ऐमा काम-वाण चलाऊंगा कि वह शात्र हा आपक कण्ठ म जा लगेगा।<sup>५</sup> ह बार ! जाय प्रसन्न हा विश्राम काजिए। मुझे बताइए वन कौन देत्य है जो मर शर प्रहार म ऐसा शक्ति विहान हो जाना चाहता है, कि काप स विस्फुरित जधर धाला छा तक उम टरा द।<sup>६</sup> इस प्रकार विकल्पनाश्री का प्रवाप करत हुए वन इतना उत्तेजित हो जाना है कि बडे गव स यह कह उठता है कि यदि आपकी वृषा हा ता मैं वसन्त का साथ लेकर पिनाकधारा शिव को भा धैयहीन कर दूँ फिर अथ धनुर्धारिया की बात हा क्या है।<sup>७</sup>

य सारा गर्वोत्थिया अनुभाव रूप हो कहा जायेंगा। क्योंकि उसन जात्मशक्ति का जा बलान किया वह उसक उत्साह के अनुभाव रूप है गव उग्रता, चपनता इ यादि व्यभिचारा भाव हैं।

शान्त रम —

वास्तविक नान के उदय हान के परिणामस्वरूप प्राणा का जगत् स निर्वेद या वैराग्य होना है तत्र वह निर्विषय नानी सासारिक सुख-दुःख अपना पराया राग

१ कुमारसम्भव ३।३

३ वही, ३४।५

५ वही ३४।७

७, वही, ३।१०

२ कुमारसम्भव ३।४

४ वही ३।६

६ वही ३।६

दोषादि भेद बुद्धि का त्याग कर समदर्शी बन जाता है। वह आत्मा क वास्तविक स्वरूप को पहचानकर सच्चे ज्ञान का प्राप्त करता है—यही स्थिति ब्राह्मी स्थिति है जत इसका स्थायीभाव निर्वेद या वैराग्य है। समार से विमुख वैराग्य इच्छुक्त सारासी ही इसका आश्रय नहीं होता जतिनु समार म रहने हुए सामारिक मारागोह से पर स्थित यक्ति भी इसका आश्रय हा सकता है। समार का धानभगुरता या अस्थिरता ही इस रस का जालम्बन विभाव है। सन्त समागम तीयदशन, स्मशान-दशन, इत्यादि उद्घापन है। अश्रुविमाचन, पश्चात्ताप, रानि, भगवद्भजन रोमाच जादि अनुभाव तथा हृप, धृति, मति सचारीभाव हैं। यहा एक बात अवधेय है कि निर्वेद एक व्यभिचारा भाव भी है किन्तु व्यभिचारो रूप निर्वेद तमागुणप्रधान है तथा स्थायारूप निर्वेद मरुव गुण प्रधान है।

कुमार सम्भव क प्रथम सर्ग के अंत म कवि न शिव का जो आशिक परिचय दिया है उसम ज्ञान रस की सुष्ठु अभिव्यक्ति हुई है। पिता द्वारा अपमानित हान पर सता न उनकी यन्त्राग्नि म जबमे प्राणात्मग कर दिया था तभा से विमुक्तसङ्ग भगवान शिव ने दूसरा विवाह नहीं किया।<sup>१</sup> इतना हा नहीं जितद्रिय तथा गज चम ज्ञान वान शिव टिमाभय की एव चोनी पर जाकर तपस्या करने लगत हैं जहा गङ्गा जी अपन जन प्रवाह म देवदारु को निर तर सीवती थी तथा गंधवगण दिन रात गान करते थे। उनके पास ही सर पर नमर क कोमन पुष्पमाना बाघे, शरार पर भोज पत्र धारण किए प्रथमगण चट्टाना पर बैठे पहरा दिया करते । उनके समीप उनका गर्वीला नादी वृष भी रहता था। इस प्रकार तपस्याजा के स्वय फलदाता भगवान् शिव अपना दूसरा मूर्ति अग्नि को समाधि स जगाकर पना नहीं किस फलेच्छा से धार तपस्या करते हैं।<sup>२</sup>

यहाँ शिव आश्रय हैं, सती क प्राणत्याग के कारण उत्पन्न दु ख ही उनक तप का उद्घापन है—सब प्रकार के भोग विलास का त्याग कर देना दूसरा विवाह न करना तथा तप करना इत्यादि अनुभाव हैं। धृति व्यभिचारी भाव है।

### रघुवश म अङ्गोरस

रघुवन म अङ्गोरस वीर क साय प्राय मनी रसा का सहकारित्वेन उपनिबन्धन प्राप्त होगा है। कालिदास का बहुश्रुत सखिनी से प्रस्फुटित होकर करुण,

१ कुमारसम्भव १।५३

२ वही, १।५५

३ कुमारसम्भव १।५४

४ वही १।५७

शृङ्गार, अद्भुत, भयानक, वाभ्रम हास्य, शान्त इत्यादि मुख्य रस वीर का परिपुष्ट करने में पूर्णरूपेण सफल हुए हैं और इनके सहयोग से वीर रस में चांग चाद लग गए हैं।

करणरस—

दृग्गार और वार के पश्चात् महाकवि की लक्ष्मी मर्यादिक करणरस—चित्रण में ही रमी है। अष्टम सग के अज विलाप के मा यम में कवि ने वरण का जैसा मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है वैसा अथ काया में नहीं मिलता है तथा वह ससृत साहित्य का अन्वय निधि बन गई है। महाराज अज अपनी प्रिया इन्दुमता के साथ उपवन में विहार करने जाते हैं।<sup>१</sup> उसी समय आनास माग से जाते हुए नारद की वाणी में गटकी हुई पुष्पमात्रा सहसा इन्दुमता के वनस्थल पर गिर पड़ती है। उसके स्पश मात्र से रानी का मृत्यु ही जाती है और राजा यत्न सज्जनर दत्तकर मूर्च्छित हो जाते हैं।<sup>२</sup> कुछ क्षण के पश्चात् गन्तव्य होने पर प्रिया के मृत शरीर का अन्त अर्द्ध में रख लेते हैं, प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान उसके श्वेत शरीर का दत्तकर उनका स्वाभाविक धैर्य विनृत हो जाता है, कण्ठ वाष्पगद्गद हो जाता है और वे साधारण शरीरधारिणी के समान कण्ठ विनाश करने लगते हैं— ह प्रिय ! मृत् माला यदि तुम्हारा पाण हरण कर सकती है तो यत्न के स्थान पर रख लेने पर मया प्राण क्या नहीं ले लेती।<sup>३</sup>

प्रिया के शान्त में अज विनित हो जाते हैं और अपने का हा साग दाय दन हुए दोनता से कहते गतत ह—ह इन्दुमति ! मेरी वस्तु अपराध किए हैं परन्तु तुमने मेरा कर्मा निरस्तार नहीं किया फिर आज बिना अन्तर्ध के मुझे वार्ताकार करते पाण्य भा नहीं समझ रहा हूँ।<sup>४</sup> ह शुचिर्मित ! निश्चय ही तुमने मुझे झूठा प्रेमा समया इमाहित तो मुझसे पूछे बिना तुम परवान चला गया।<sup>५</sup> मेने कर्मा हस्य से भा तुम्हारा जनय नहीं किया फिर अकारण ही मुझे बना त्याग दिया।<sup>६</sup> ( मच पूछा तो ) मैं पृथ्वीपति तो नाममात्र का हूँ मगर सच्चा अनुगण तो बनने तुममें ही है।<sup>७</sup> प्रिय ! पुष्पा से श्रवित नीरों के समान तुम्हारा वाना तट्टे जब वायु में त्रिजता है तो मर हस्य में आशा उमट पड़ता है कि तुम अना जाति हो जाओगे। तुम्हारे व्यस्त अन्त

१ रघुवीर्य ८।३२

२ वही ८।४२

३ वही, ८।४८

४ वही, ८।४२

२ रघुवीर्य ८।३८

४ वही ८।४६

६ वही, ८।४८

८ वही ८।४२

से आच्छादित मौन मुख को देखकर मेरा हृदय विदीण हुआ जा रहा है, इसलिए किसी भी प्रकार आकर तुम मेरा दुःख दूर करो । ”

महाराज पतिनवियोग में जल्पित कानर हो, वन, लता पुष्प समीची सागी वन हुए वह उठन हैं—हे प्रिये । क्षण भर के लिए भी तुम्हारा साथ न छोड़न वाना, तुम्हारी एकांत की सखा यह मन्वला भी तुम्हारे नियोग में मृत वे समान ललित हा रही है ।<sup>१</sup> तुम्हारे विना अब अहंकार और प्रियङ्गलता का विवाह कौन करायेगा ? ह सुंदरी तुमने पुनःपुनः हूँ विछुआ जाने चरणा में जो ठाकर जगत् को लगाई था, उन स्मरण करके यह वृक्ष कुमुद जन्म वपण करता हुआ, तुम्हारे लिए रा रहा है ।<sup>२</sup> तुम्हारे मुख दुःख की साया ये सखियाँ लची तुम्हें देख रही हैं शुक्ल पद्म के चन्द्र के समान प्रसन्न मुखवाला तुम्हारा पुत्र भा यहाँ है और तुम्हारा अनप्य प्रेमी मैं भा तुम्हारे पाम हूँ, फिर क्या हम सपको छाड़कर चल जान का निष्ठुर काय तुमने किया ?<sup>३</sup> तुम्हारे असमय मृत्यु से मेरा धैर्य स्तम्भित हा गया, आनन्द नष्ट हो गया, गाना बजाना दूर हो गया, ऋतुर्ये पीकी पड गद्, आमरण व्यथ हा गये और गैय्या गूँय हा गयी, “क्याकि मरी शृङ्गिणी सम्मति दन वाली मित्र, एकान्त की सखा और ललितकलाभा में प्रिय शिष्या थी । तुम्ही बताओ ! तुम्हें मुझसे छीनकर क्रूर विधाता न मरा क्या कुछ नहीं हर लिया । ऐश्वर्यशाला हान पर भी, तुम्हारे विना मरा मय कुछ विनीत हा गया क्याकि भरे सब सुग्या दा एव मात्र तुम हा क द्र था, जब तुम ही आज नहीं रही ता जय सुखा का क्या मूल्य ।<sup>४</sup> इस प्रकार अज पत्नी विधाग में इनन व्याकुल हा जान हैं कि उनका जीने का इच्छा समाप्त हा जाती है ।<sup>५</sup>

अज के मार्मिक रान्त से समस्त वनस्थली भा वरुणाद्र हो उठती है जीर उ ह देखकर वृक्ष भा जैसे अपनी शाखाआ में रस प्रख्ववण करत हुय रुदन करन लगत हैं । यहा आश्रय अज हैं तथा जावम्बन इन्दुमती हैं । इन्दुमती का मृत शरीर उद्दीपन विभाव है, अज द्वारा मूछित हो जाना वरुण विनाय करना, प्रिया व गुणा का चिन्तन करना स्वयं को दोष दना, इत्यादि अनुभाव तथा स्मृति दैय, चिन्ता, वितक, मोह, रानि, जडता, उ माद आदि व्यभिचाराभाव हैं ।

१ रघुवश ८।५४

२ वही ८।६१

५ वही ८।६६

७ वही, ८।६६

२ रघुवश ८।५८

४ वही, ८।६३

६ वही, ८।६७

८ वही, ८।७२



बहण रख का मामिक व्यजना साता त्याग क प्रसङ्ग म हू है । राम का कठार जाग न फनस्वरूप ल मण सीता जा को गङ्गा क पार त जाते हैं और किसी प्रकार अपन अर्थुप्रवाह का समयित कर बंधे हुए कण्ड म, बडा हा कठिनतः म राम की कठार राजा साता को मुनात है । उस मुनकर साता का जा दयताप म्बिति हूइ बड बडा ती हुम्बितारक है । राम का जयमानजनक जाग क थवण मान न हो लू लगन स प्रबशमान लता क समान साता पृथ्वा पर सद्दा गिर पडता ह । मूर्च्छित हा जान म उ ह उस समय ता दु स नही हाता किन्तु वात् म सना नध हात पर बडा हा विक्र न हा जाता है और जयन भाग्य का हा बार बार गिदा करन जगता है । किसी प्रकार जन का समयित कर बहु लक्ष्मण स क्ती है—' मैं तुमम प्रमत्त हूँ । तुम सदैव भ्रातृ भक्ति का पालन करना<sup>१</sup> किन्तु सभी श्वश्रूजना स जाकर कहना कि 'मं गम म आपक पुत्र का तज है अत सन्ध उसक निष् कन्धाण मनात रत्थिया । ' और उन राजा म जाकर कहना—'आपन मुचे अग्नि म शुद्ध पाया था फिर इस मिथ्या प्रवाद क भय से मरा परित्याग कर दिया ह वह क्या नारक प्रख्यातवण का शाभा दता है ।' पुन कुछ विचार करता हूँ वह कहता है—' आप तां मरे प्रति कन्धाण बुद्धि हा रखन हैं अत आप मर साव कभा ऐसा कठार व्यवहार नही कर सकत । निश्चय ही यह मर पूवज म क पापा का फल है । ह राजर् ! पहल आपका अनुकम्पा स मैं वनवास म रागस पतिया द्वारा मगन्त तपस्विता का जन यहाँ आश्रय लिधा था । तब जाप हा वताप्य कि इस समय मैं किस प्रकार उ हा तपस्विता का जागिता हाकर रहूँगा ।' यदि मर गम म जापका बशर तज पुत्र न होता ता मैं आज ही प्राण त्याग कर दता ।<sup>२</sup> किन्तु पुत्रजम क पश्चान् मूम म दृष्टि निविष्ट कर मैं धार तपस्या कल्या जिसम अगल जम म जाप हा मर पति हा और फिर आपस भेग कभा भा वियाग न हा । यह कहत-कहत साता म्यानुन हो उठनी हैं, उनका धेय विलुप्त हो जाता है और अत म बडा हा दाता पूवक याचना करन हुये कटती है—' राजा-न का धम वणा धमा का रगा करना है इजलिए निर्वासित कर दन पर भा आप यह

१ रघुसा १४।५४

२ रघुसा १४।५७

३ वही, १४।१६

४ वही १४।६०

५ वही १४।६१

६ वही १४।६२

७ वही १४।६४

७ वही १४।६५

समझकर मेरो दख-भाल करत रहिण्णा कि मोता भी आपकी प्रजा और तपस्विनी है ।”

कवि न आलम्बन रूप सीता के इस शोक का आश्रय सहृदय गणा का बनाया है। सीता के दुःख में न केवल मानव अपितु तियक भी प्रभावित हो उठन हैं और वे भी इस कृष्ण रम के आश्रय बनत हैं। कवि कहता है कि—‘विपत्ति के भार से व्याकुल हाकर मुक्तवण्ड से सीता का कृष्ण प्रद्वन<sup>२</sup> सुनकर मयूर गण नृत्य करना बंद कर देते हैं वृक्ष पुष्पाश्रु गिगने लगते हैं और दुःखित हरिणिया मुह म भरी घास क कौर गिरा दती ह इस प्रकार समस्त वनस्थली मौन हा जाती है, और साता क दुःख मे दुःखिन हाकर सारा वन विलाप करन लगता है ।’

यहाँ साता आलम्बन ह। राम की आज्ञा उद्दीपन विभाव है। मूर्च्छित हो जाना, भाग्य का कोसना राम को सदेश भेजना, कृष्ण विलाप करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा चिंता, दैय र्नाति विपाद बितक इत्यादि यमिचारीभाव हैं। कृष्ण रस के उद्दीपन रूप म अयो या को नगर देवी द्वारा वीरान अयो या का जाहृदयस्पर्शी चित्रण, हुआ है वह सचमुच हृदय को द्रवित कर देने वाला है। महाकवि की यह विशयता रही है कि उहाने जिस भी विषय पर अपनी लेखनी उठाई है, उसमे भाव और रस का पैगा सागर डडल दिया है कि उसमे प्राण प्रतिष्ठा सा हो गयी है और वे मभा वणा उनका प्रतिभा का सम्पूर्ण मस्पर्श पाकर सजीव हो उठे है। उजडी अयो या क डम वणन का पढकर किस सहृदय का हृदय शाक द्रवित न हा जायेगा।

रात्रि के द्वितीय प्रहर म, कुश क शैम्या शृह म अचानक मनिन वसना विवण-वदना प्राजलिबद्ध एक स्त्री का आगमन होता है, उस देखकर कुश अचमित रह जानत हैं और पूछते हैं—‘हे शुभे ! तुम कौन हा और मेरे पास किसलिण जायी हो ।’ यह सुनकर वह स्त्री उदास स्वर से उत्तर दती है—‘हे राजन् ! जब भगवाद् राम वैकुण्ड लोन् जाने लगे, तब जिस निर्दोष अयायापुरी के निवासियो को अपन साथ ले गये, उसी अनाय अयोभ्यापुरी की मैं नगर देवी हूँ ।<sup>१</sup> पहले सौराय होने म मैं इतनी पश्यव शालिनी हो गयी थी कि कुन्नेर की अन्कापुरी भी यगभूत लगती थी किन्तु इस समय तुम जैसे प्रतापी सूयवशी राजा के रहते हुए भी मैं सबया कृष्णा-

१ रघुघाश १४।६७

२ वही, १४।६-

५ वही, १६।६

७ वही १६।६

२ रघुघाश १४।६०

४ वही १६।५

६ वही, १६।०

यस्या वा प्राण हा गया है' और स्वामाविहान मरी नगरा जयाध्या ल्या उपाय प्रदान होता है जेम मूयान् क ममय भिन्न मय म युक्त सध्या । रात्रिवेना म जिन राजमागी पर नूपुरा वा मधुर ध्वनि करता हुई अभिगायिकाएँ गमन करना था उहाँ पर अर बन्दिशणा वा उगयना हु, उच्च स्वर म चित्रागी हुद मियारिँ सधरण करना है ।<sup>१</sup> वागीजन म प्राण करना हुई गुन्धिया क हाय क षण्डा म मून्नु क समान सम्भार ध्वनि करता था कया आज कन जन्तुना भेगा क हुत का टकार म कदमिणा म कय रहा है ।<sup>२</sup> मपुरा म तुम्य करना समान कय शिया है और वृणा पर ये लण क उन जगना मारा म समान सगत है जिना पँछ जिन म भरमाभूत हा गइ हा ।<sup>३</sup> तुम्य ! और क्या कह पढन जिन सोरानमागी म रमणिनी महार सग पाव नाव चरण रगता थी उँी पर दिग्ग व्याज रक्त म सन नाव पैर रता है । जिन स्तम्भा पर स्त्रिया का मुन्डर मूर्तिया की स्थापना का गया था, अर विवण हा जान क वाग्ण<sup>४</sup> उा स्तम्भा की चन्तवृण समानर सप उनम निपट गए हैं और उनका कचुन मूर्तिया म इस प्रकार सगल हा गया है माना प्रस्तर का खिरा न स्तन स्तन क निण यत्र ढान त्रिया हो ।<sup>५</sup> ह यशस्वी ! जिन भवना पर मुतामावा क गमान शुभे चान्ना चमकता था उनक मून का रग अर उड गया है और उस पर यप्रतत्र घास उग आया है ।<sup>६</sup> पहल उद्यान म मुन्दरियाँ जिन लताभा म पुणायन करती था, उँह अर न र शकमार ढान रट है ।<sup>७</sup> ह महाराज ! यह सत्र दमकर मुझे बडा दुःख होता है । अब गरयू के तार पर न ता दवताजा क लिए बलि दा जाता है और न हा उसस स्त्रिया क स्नान करन म अगरागाँ का मुग्ध ही निकलती है । तट पर बना बानार शारडियाँ भा अब पूय दिवाई पढना हैं ।<sup>८</sup> जत ह राजन् ! रागा का बध करन क निमित्त मनुष्य शरार धारण करने तथा पुन त्यागकर आत्मस्वरूप म विलान हो जान बाल अपन पूय पिता क समान तुम राजधाना कुशावती का छाँकर अपना कुल राजधाना लयो या म राज्य करो ।<sup>९</sup>

दही की वण याचना सुनकर वृश उनकी प्रार्थना स्वाकार कर लेत है और नर जयाध्या का नगर दही अर्तर्पित हो जाती है यहाँ अयोया की नगर दवा आश्रय

- |                |                |
|----------------|----------------|
| १ रघुवंश १६।१० | २ रघुवंश १६।११ |
| ३ वही, १६।१२   | ४ वही, १६।१३   |
| ५ वही १६।१४    | ६ वही, १६।१५   |
| ७ वही, १६।१७   | ८ वही १६।१८    |
| ९ वही १८।१६    | १०। वही १८।२१  |
| ११ वही, १८।२२  |                |

हैं अयोध्या की दुःशाला आलम्बन । अयोध्या की विपत्तावस्था उद्दान विभाव है तथा  
दैन्य, चिन्ता विपाद, मोह—इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं ।

करुण रस का एक अन्य मार्मिक अभिव्यक्ति तारसकुमार (श्रवणकुमार) के  
वध प्रसङ्ग में हुई है । मृगया प्रेमा राजा दशरथ हाथा का अपन वध का लक्ष्य बनान  
हैं । किन्तु यह क्या वह तो हाथा के धाँसे में तारस कुमार का वध कर बैठन है ।  
महाराज को जब इस ययार्थ का ज्ञान होता है तो वे बड़ दुःखित हो जाते हैं और  
जर विद्ध मुनि पुत्र का प्रार्थना पर उसे उसके वृद्ध माता पिता के पाम ले जाते हैं ।  
‘वहाँ पहुँचकर महाराज सारा वृत्तान्त बताना है कि किस प्रकार अज्ञानतावश  
उनके एकमेव पुत्र पर शर-व्याधात किया । यह सुनकर वे दाना करुण विनाप करन  
लगते हैं और अपन पुत्र के प्रहर्षा का आना दन है कि मेरे पुत्र के वधस्थल से वध  
निकाल लो । वध निकालते हा मुनिकुमार का प्राण उठ जाता है, और पुत्र शोक में  
दुःखी वृद्ध वपस्वी राजा का यह शाप दते हैं कि —‘हे राजन् ! जाओ तुम भी मेरी  
तरह पुत्र शोक से प्राण त्याग करोगे ।’ दुःखी होकर राजा न कहा —‘मैं तो सबथा  
वध योग्य है फिर भा मुझ घृणित के लिए आपकी क्या जाना है ।’ यह सुनकर उस  
मुनि ने कहा—‘मैं और मरा स्त्रा दोनो हा पुत्र के साथ ही प्राण त्याग करूँगे अतएव  
हमारे लिए ईंधन अग्नि का प्रबंध करो ।’ यह सुनकर दशरथ तत्काल ईंधन अग्नि  
का एकत्र कर उनका दाहसंस्कार करते हैं ।<sup>१</sup>

यहाँ आश्रय वृद्ध मुनिजन है तथा मुनि पुत्र आनम्बन । पुत्र वध की कथा  
श्रवण उद्दान विभाव है । करुण विलाप करना, शाप देना, दाह संस्कार के लिए  
कहना इत्यादि अनुभाव हैं तथा शाक, करुण दैन्य व्यभिचारीभाव हैं ।

शृटार रस—

महाकवि शृङ्गार के अनन्य प्रेमा हैं । रघुवंश में बीर नायका के शीघ्र पराक्रम  
पौष्प आजम्बी गुणा का वणन करत समय भा के शृङ्गार-वणन का मोह न त्याग  
सक और अपन इस माह का प्रकट करन के लिए वे एक ऐसे नायक नायिका का  
दूत ही लेत हैं—जा शृङ्गारार्थि यक्ति के सबथा योग्य है । स्थन है इन्दुमता स्वयम्बर  
का । सकल सौन्दर्य की एक मात्र अभिष्टात्री इन्दुमता, धर मान लेकर स्वयम्बर  
मण्यप में प्रवेश करती है । आलम्बन रूप उसके अपूर्व सौन्दर्य का दम्बकर हा स्वयम्बर

१ रघुवंश ६।७७

२ वही, ६।७६

५ वही, ६।८२

० रघुवंश ६।४८

४, वही ६।६१

म उपस्थित राजागण उभयों आर आश्रित हो जाते हैं।<sup>१</sup> किन्तु इन्दुमती उन महा राजाओं के प्रति अपना अशिष्टता प्रकट करता हुई रघु पुत्र अज के समान जा गयी है। उम सगर्व अज के हृदय में कुदृष्ट्यागतता हान लगती है कि दर मुझे प्रति हय में स्थापना करनी अवश्य है। सर्वोद्गम सुन्दर अनुराग स्वरान् राजा अज का दरवार इन्दुमती स्तम्भित गा रू जाता है और राजा के प्रति उसका अभिमान सगर्व सुनना अज का परिचय होना शुरू होता है। प्रसन्न वातुरस्य वयं म यस्या रागा त्तितां का त्रयं हुआ था जो कथन कि जानने मन करके हा इष्टिण शाला हो गये कि इन्द्र का प्रतिष्ठा कही विमुक्त न हो जाय।<sup>२</sup> य तम कुतः ताव य ओरगाज्य म उभय इत्या प्रभाव था कि उभयतां म मत्ताय पर माद हृद क्षिप्या क उभय को वायु भा न । क्षिप्या मत्ताया या तिर अ र क्षिप्या का वसा द्विम्भन।<sup>३</sup> उभय पुत्र रघु र मग्नूप पृथ्या को विजित कर अपार धन अत्रिण क्षिया या जीर विभक्ति यम म सत्र कुदृष्टि क्षिप्या करन मनसात हा मय रू गया था।<sup>४</sup> उदा यस्या राजा क पुत्र य कुमार अज है जो अपन विवाह समाप्त हो प्रत्याग है। इति। इनका वन रूप योजन और नगना आदि सब गुण तुष्टान हा समान है अत इनके माय तुम विवाह अवश्य कर ला। त्रिषम रत्न और स्वर्ण का उचित समायम हो जाय।<sup>५</sup> चतुरागता सुताया क वचन सुनकर इन्दुमती सत्रा स्यागर्व अपन स्तम्भित नत्र म अज का दरवारी है और आगता म इम प्रकार उह कर गता है माना वह दृष्टि हा स्वयम्भर माल हो। शाश्वतता के कारण इन्दुमती अपन प्रेम का वान अज से तो न कह सके किन्तु वह रोमांचित हो जाती है। उनके हृदय का प्रेम क्षिप्याय म भा नहा क्षिप्या पाता माना रागटा क रूप म प्रेम मगर विनाश कर प्रसृष्टित हो जाया है।<sup>६</sup> तदाश्वात् इन्दुमती वयं हा अनुराग म अज के कण्ठ म वरमाल टाट देता है।<sup>७</sup>

यहाँ इन्दुमती आश्रय हैं जीर अज जानम्बन। सुनना का उत्तिया उद्घापन विभाव हैं। स्तम्भित रह जाना, रोमांचित हो जाना लज्जित हो जाना, एकटक दायना तथा वरमाल पहनाना अनुभाव हैं। जडता हय मोह, ओम्बुवय दयादि व्यभिचारों मात्र हैं।

१ रघुवंश ६।११

३ वही, ६।७०

५ वही, ६।७५

७ वही ६।७६

९ वही, ६।८१

२ रघुवंश ६।६६

४ वही, ६।७४

६ वही ६।७६

८ वही, ६।८०

१० वही, ६।८३

वरमाल ग्रहण कर अज विवाह मण्डप के लिए प्रस्थान करते हैं जहाँ उनका विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न होता है। अतः पुर के सेवक नम्रता पूर्वक अज को इन्दुमती के समीप ले जाते हैं।<sup>१</sup> वहाँ पुराहित घृतादि मामप्रिया भे हवन करके, अग्नि को सानी बनाकर वर वधू की गाठजोड़ देता है।<sup>२</sup> प्रिया के हाथ को ग्रहण किए हुए अज बट ही सु दर लग रहे हैं। वर-स्पर्श के कारण अज के प्रकाष्ठ प्रीति कण्टकिन हो जाते हैं और अँगुलिया भे स्वेद प्रस्रवण होने लगता है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो काम ने प्रेमभाव को दोना म समान रूप से विभक्त कर दिया हो।<sup>३</sup> व कनखियो से एक दूसरे को देखते और नत्र मिलते ही, लज्जा से आँखें ताची कर लेते हैं।<sup>४</sup> लज्जावता इ दुमती श्रद्धा के समान पूज्य पुरोहित को आना से अग्नि मे धान की खोल छोन्ती है और विवाह काय सम्पन्न करती है।<sup>५</sup>

कालिदास क काव्य मे वर्णित विवाह के प्रसंग प्रायः एक दूसरे स मिलते जुलते हैं। यहा वर्णित अज इन्दुमती का विवाह कुमारसम्भव म वर्णित शिव पार्वती क विवाह स मेल सा खाता है। यहाँ अज इन्दुमती परस्पर आश्रय और आलम्बन हैं। रामाच, नेत्रा मीलन, वरस्पर्श स्वद प्रस्रवण, लज्जा से नेत्रा का नीचा कर लना, प्रीति-कण्टकित होना इत्यादि अनुभाव हैं। हर्ष, ब्रीडा चपलता व्यभिचारीभाव है।

इस प्रकार अज के प्रसङ्ग म महाकवि ने शृङ्गार का बडे चाराम क माध वणन किया है वैसे नायक वीर का नेता है। इसमे कोई शङ्का नहीं होनी चाहिए क्योंकि वही कवि का अभीष्ट है जैसा कि अ य नायका के सम्बन्ध म है किन्तु शृङ्गार का भ्रष्ट कवि वीर भटा के मध्य केवल इसी नायक को अपने प्रिय रस का पात्र चुनता है और पूर दो सर्ग, शृङ्गार की सिद्धि मे लगा देता है। स्वयंवर एव विवाह य दोना प्रसङ्ग यदि अनुचित उपमा के साथ कहे जाएँ तो व वीर का महस्थली मे नखलिस्तान अथवा शस्य शादल क समान शोभा पा रहे है। किन्तु यह शृङ्गार कितना भा मनोरम ही, इन्दुमती जितना भा सु-दर ही, रसशृङ्गार अङ्गभूत ही रहगा, प्रधान नहीं माना जायेगा। अत्र प्रश्न उठता है कि दो विराधी भावा (उरसाह शोक) का प्रयोग एक ही नायक के प्रसङ्ग मे करना रस दोष माना जायेगा—तो इनकी सङ्गति किस प्रकार हागी ?

१ रघुवंश ७।१६

३ वही, ७।२२

५ वही, ८।२५

२ रघुवंश ७।२०

४ वही, ७।२३

समाधान यह है कि बरि न इस दोना म्यादी भाषा का प्रयोग निम्न विधायता में किया है । तापर अत्र पद्यन रति का पुराण गोरु का भाष्य बनता है । द्रष्ट प्रकार भिन्न भाषयार का कारण जना भाषा में का<sup>१</sup> विराय नहीं रह जाता ।<sup>२</sup> दूसरा बात यह कि बरि न एण (वार) का अन्त और दूसरे (शुद्धार) को अन्त बनाकर इष्ट गद्य का मध्य हा विचारण कर दिया है । इष्ट विषय में एण मध्य अवधय है कि शुद्धार का विषय हा शुद्धर पुष्टभूमि हागा वाण का मीय उचता हा जपिक मरणा । अतएव अत्र का पराक्रम शुद्धार व हा प्रसङ्ग में बरि न बरिन्त किया है पयोकि विन्यास किया ॥ प्रकार ता ॥ नहीं बनता अत्र व पराक्रम का । अस्तु ।

शुद्धार का अर्थ सम विन है राजा अग्निवण का । शुद्धार का अन्तिम राजा अग्निवण बदा हा विनाशा एव वगम्यप्युत है । इस वचन का कारण व अन्त में शरत का समापन महा कारण रहा हा कि महाब्रि त्रिम बहुधन राजा या राजवश के आश्रय में रह रहा या उचत मीय और पराक्रम शासता में लामोपुन हो रहे थ और त्रिगवा मुख्य कारण राजाभा का अविशय भाग परामणता थी । वही तो रघु को अविशय जानावता उन्हें मृतसाधमरि जाग कर दता है और वही अग्निवण का विनाशत्रिमना मरार का मन्तार क्षराराग का पाठ बना दता है । अग्निवण अग्नि क समाप्त तजस्व राजा है अत विना द्वारा प्राण राय का रणा करत में उम तनिक भा प्रयाग नहीं करना पडता ।<sup>३</sup> इसविण वह उचवा निश्चित हा राय का सारा भार मन्त्रिणा का सोकर भाग विनाश में निमज्जित हो जाता है ।<sup>४</sup> म्रिया क बिना वह मण भर में म्याकुन हो उचता है और सग अन्त पुर में ही रहता है ।<sup>५</sup> यदि कभा मश्रा लाग बहुत आसद् करत हैं तो कवल वह उनका बात रवन क विण अपता एव पैर गवाण में बाहर पडका दता है और प्रजा उमो का दशन करके अपन को टुनाथ समाप्ती है ।<sup>६</sup> कभा वह म्रितामिनिया क साथ विकसित कमलपुष्प वाला वाटिकाओं में विहार करता हुआ दिन यतीन कर दता है तो कभा उन मन्त्रिणा शुद्धा में पडक जाता है जहाँ मन् का आसव पावा और पिनाता ।<sup>७</sup> कभा तुल्यशाला में खता जाता है और स्वय मुद्ग वासन करने लगता है । वह एमा लिपुणता से मृदग वादन करता है कि विख्यात एव कुशन नत्रकियो भा मुग्ध हाकर ताल में चुक जाना है ।<sup>८</sup> इस प्रकार उमका अद्भु मधुर स्वर शानो वीणा एव किना न किया प्रेमिका से सदैव

१ रघुमश १६।३

२ रघुमश १६।४

३ वही १६।६

४ वही १६।७

५ वही १६।७

६ वही, १६।११

७ वही १६। ४

जलबन्ध रहता है। कभी वह अपनी किसी प्रणयिनी से रात्रि में मिलने के लिए कहकर केवल जान द लेने के लिए कहीं समाप ही छिपकर बैठ जाता है और जब वह उसकी प्रतीक्षा करती-करती कातर होकर उलाहने देने लगती है, तो उसे यह बड़े प्रेम पूर्वक सुनता है।<sup>१</sup> कभी वह अपनी रानिया के भय से, दूतिया की सहायता से दासियों से छिपकर मिलता है, कभी वह स्त्रियां क चरणों का महावर से रगने बैठ जाता है और कभी उसके नत्र उनके अङ्गा को देखने के लिए चंचल हो जान है।<sup>२</sup> वह जब उनका चुम्बन करना चाहता तो वे मुह फेर लेती हैं और यदि वह मेखता खोलने का प्रयत्न करता है तो वे उसका हाथ पकड़ लेती थीं। इस प्रकार इच्छा पूरी न होने के कारण, अग्निवण की कामवासना और भी उदीप्त हो जाती हैं।<sup>३</sup>

प्रत्येक ऋतु में अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकार से भाग विलास करता हुआ, राज्यकाय से सबप्रथम विमुख, अग्निवण कई वष व्यतात कर देता है। उसने पुरान शक्तिशाली प्रभाव के कारण ही कोई भी शत्रु राज्य पर आक्रमण करने का दुस्साहस नहीं करता है। अतः म अत्यधिक विपयासक्ति के कारण राजा राज्यक्षमा से ग्रसित हो जाता है जिस प्रकार दक्ष के शाप के कारण चंद्रमा। यद्यपि वह इस रोग के दुष्परिणाम से भली प्रकार से परिचित है तथापि वह कामक्रीडा का त्याग नहीं कर पाता है। वैद्या के जयक प्रयत्ना के फलस्वरूप भी राजा की जीवन रक्षा नहीं हो पाता है।<sup>४</sup> तब इस राजकुन की दशा उस जाकाश के समान हो जाती है जिसमें वृष्णपत्न के चंद्रमा की केवल एक हा कला शेष रह गयी हा अथवा ग्रीष्म ऋतु के उस शुष्क तालाब के समान जिसमें मात्र पङ्क शेष रह गया हो। अतः में राजा का जीवन प्रदीप बुन जाता है और तब मनिगण राजभवन के उद्यान में चुपचाप उसके शरार का दाह-सस्कार कर देते हैं।<sup>५</sup>

यहाँ राजा अग्निवण आश्रय है विभिन्न ऋतुये, स्त्रियों का शृङ्गारिक चेष्टाएँ उदापनविभाव हैं। अग्निवण द्वारा विभिन्न प्रकार की शृङ्गारिक चेष्टाएँ करना, शृङ्गारिवादन वेशभूषा पहनना, मदासव पान करना, महावर लगाना, चुम्बनादि अनुभाव हैं। हृष औरमुक्य, चपलता, क्रीडा, मोह इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं।

१ रघुवश १६।१८

३ वही, १६।२६

५ वही, १६।४८

७ वही, १६।५१

२ रघुवश १६।२३

४ वही १६।२७

६ वही, १६।४६

८ वही, १६।५२



### हाम्यरम—

रघुवश के एक स्थल पर (पृष्ठ सग म) हाम्य रग का बड़ा हा कनामक वणन मिलता है। स्वयम्बर क अवसर पर, चतुरागना मुन्या अज क जोय एक पराक्रम का विस्तृत परिचय देता हुई उनक रूप और गुण का भूरि-भूरि प्रशंसा करती है। अज क रूप का दमकर इन्तुमता उनकी आर आसन हा जाता हैं। चिन्तु इमो समय इन्तुमता क अनुराग को अज क प्रति जानकर भा मुन्या टियोवा कगन हुई कहता है— हे आप ! खनिष्ठ आग ? यह मुनकर इन्तुमता बनावनी का म आग तकरकर देगता है।<sup>१</sup>

यही आग वणन क लिए कहना उदात्त विभाव है और कुटिन दृष्टि म दमना अनुभाव है तथा अमय व्यभिचाराभाव है।

### रोद्रम—

रघुवश म रोद्रम का मवप्रथम वणन ताडका राश्या क प्रसङ्ग म प्राप्त होता है। वन म राम-नशमण क धनुष का डारी के भयकर घाघ का मुनकर वान म नरकपाल का कुण्ड पहन हुए वाना कट्टा ताडका उनके समग जा सडा हाता है। वह भाग क वृथा का तन्त-नहम करनी प्रेया सा वस्त्र धारण करती हुई तथा भयङ्कर गजन सहित स्मशान म उचिन वसावात के समान राम पर पण्ट पडता है।

यही आश्रय ताडका तथा राम लगन आवम्बन हैं उनक धनुष का टकर का श्रवण उदात्त है। राम क सम्मुख खडे हा जाना शयना इत्यादि अनुभाव हैं। आदग अमय व्यभिचारीभाव हैं।

एकाग्र सग म आश्रय विभावा उगत परशुराम क तजस्वा शरार तथा अनु भाव रूप म उनका कठोर उत्तिया का बडा हा मुनर वणन किया गया है। विवाह हो जान क पश्चात् अना सना सहित राम अपना राजधाना की आर प्रस्थान करत हैं। इसा वाच एक ऐसा प्रकाग पुञ्ज सना क आगे उठता हुआ लिपार्ई देता है जिम दखकर सनिक अपनी आँखें चकाचौंध स मीच लत हैं।<sup>२</sup> उस तजस्वा पुरप क शगर पर ब्राह्मण पिता क अश का सूचक यनोपवात शोभा द रहा था जोर कंधे पर शत्रिय माता का अश सूचक धनुष।<sup>३</sup> धारे-धार परशुराम प्रकट हात हैं, जिहने राग स, उचितानुचित का विचार स्वाग कर पिता का आगा स कापता हुई माता का शिरच्छेदन कर दिया था।<sup>४</sup> उनके दक्षिण वान स एकविंशत रत्नान की माला लटक रहा

१ रघुवश ६।८२

२ रघुवश ११।६३

३ वही, ११।६४

४ वही, ११।६५

थी माना क्षत्रिया को इक्कीस बार नाश करने की गिनती करने की सख्या पहन रखी हो ।<sup>१</sup> रौद्ररूप वाले परशुराम राम को क्रूर दृष्टि से देखने हुए रोपपूर्ण स्वर से कहते हैं ।<sup>२</sup> 'क्षत्रिया का अनेक बार मारकर मेरे हृदय का कुछ शांति मिली है किन्तु जैसे दण्ड से छेद देने से सप फुफकार उठता है, वैसे ही तुम्हारे पराक्रम को सुनकर मेरे शरीर में अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी है ।<sup>३</sup> जनक के जिस धनुष को कोई राजा झुका तक न सका, उसी को तू न भङ्ग कर दिया यह सुनकर मेरा अप्रहित यश आज कुठित सा हो रहा है । अभी तक राम कहलाने का एक मात्र अधिकार मुझे ही था किन्तु अब तुम्हारे पराक्रम के कारण वह नाम तुम्हारे साथ जुड़ता जा रहा है ।<sup>४</sup> हे राम ! धनुष भङ्ग कर तुम अपनी झूठी हेडो मत दिखाओ । तुम पहले मरी इस धनुष का प्रत्यक्ष युक्त करा तब मैं तुम्हारी वीरता स्वीकार करूँगा ।<sup>५</sup> देखो यदि तुम मेरे फरसे की चमकती धार को देखकर भयभीत हो गये हो तो अपन हाथ जोड़कर मुझसे अभय की भिन्ना मागो जिमकी अँगुलिया में ज्ञानिधत के कारण धरम ही गड्डे पड़ गए हैं ।<sup>६</sup>

यहाँ परशुराम आश्रय है । राम का अद्भुत पराक्रम-श्रवण उद्दीपन विभाव है, क्रूर दृष्टि से देखना, अपनी प्रशंसा करना, धनुष तोड़ने के लिए देना, राम की भिन्ना करना इत्यादि अनुभाव हैं । उपना, अमप, आवेग, ध्यमिचारीभाव भाव हैं ।

रौद्ररस की शत्रु-क्षाकी शूणनवा के प्रसंग में मिलती है । पंचवटी में स्थित राम के अद्भुत सौम्य को देखकर शूणनवा कामासक्त हो उठती है और सुन्दर वेश बनाकर राम के समाप जाता है और विवाह का प्रस्ताव रखती है । राम कहते हैं— 'बाबे ! मैं तो विवाहित हूँ । तुम मेरे अनुज-भ्राता लक्ष्मण के पास जाओ ।<sup>७</sup> वह लक्ष्मण के पास जाते हैं किन्तु लक्ष्मण कहते हैं—“तू पहले मेरे बड़े भाई के पास गयी थी इसलिए तू मेरी माता के समान है मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता ।” यह सुनकर शूणनवा फिर राम के पास जाती है । इस प्रकार राम लक्ष्मण के पास आते-जाने बड़ व्याकुल हो जाती है ।<sup>८</sup> उसको इस दशा को देखकर सीता हँसने लगती हैं । सीता का हँसते हुए देखकर क्षण भर के लिए मुँदर रूप धारण करने वाली कृष्णा शूणनवा क्रोडित हो उठती है और कहता है<sup>९</sup>—इधर दखो ! मैं तुम्हें इस उपहास

१ रघुवंश ११६६

१ रघुवंश ११७०

२ वही ११७१

४ वही, ११७२

५ वही, ११७३

६ वही, ११७७

७ वही, ११७८

८ वही, १२३४

९ वही, १२३५

१० वही, १२३६

का पत्र साधन हा दूंगा । तुमन मरा उसा प्रकार अपमान किया है जैस कोद हरिणा  
किसा बाधिन का करना है ।”

यही मूषणगा आश्रय है । छात्र का हास्य उद्घापन विभाव है । मूषणगा  
द्वारा कुरूप वग धारण कर लेना अपाधारत हा जाना धमका दना दयादि अनुभाव  
है तथा रोप व्यभिचाराभाव है ।

वामरभ—

वामरभ का स्थानाभाव जुगुप्सा है । वामरभजनक वस्तुने जिहे दमक पृष्ठा  
उत्पन्न होती है, व यभा आनन्दन विभाव है । शारीरिक, मानसिक कुरूपता तथा  
काई दुष्टतापुण काय इत्यादि भा इमक विभाव हीन है । अश्लील वषण भा जुगुप्सा  
जनक हा सकता है । अश्व मुँह—सिकाटना, बार बार धूकना नाक-बन्द करना,  
पलायन इत्यादि अनुभाव हैं । मय त्रास आवगादि सचाग भाव हैं ।

समय सग म महाराज अज तथा विराधी राजाभा के युद्ध क प्रसङ्ग म वामरभ  
का वषण मितवा है । आलम्बन विभावान्तगत परस्पर युद्ध करत हुए दा हायावाना  
का वषण इस प्रकार हुआ— जहाँ हाथिया का मुँह हा रहा है वही लीटण चत्रा क  
भीषण प्रहार म हाथीवाना क सिर कट जान है उनक कट हुए व सिर बहुत दर  
परवान् पृष्ठा पर गिरत है क्योंकि उनक उन्म-लम्ब केश शयना क नखा म उलझ जान  
के कारण ळर हा लटक र जात थ । २

एक स्थल पर किसा बाढा का कटा टूना बाह का टुकड़ा पडा है त्रिम  
गिद्धादि प गण नाच रह है माम क लाभ स मियारित उस टुकड का साच ल  
जाती है किन्तु ज्या ही वह खान क निण अपना मुँह मारता है त्याही बाह म बंधे  
मुत्रवप का नाक म उसका तानु छिद्र जाता है और वह उम वही छोड देती है । ३

यही बाह का टुकड़ा आनम्बा है उम सीचना तथा खान के लिए तैयार ना  
जाना किन्तु तानु छिद्र जाना इत्यादि अनुभाव हैं ।

कही कही आलम्बन वाढका क प्रसङ्ग म दोभज वामरभ भा दिखाइ पत्रा  
है—राम के शर सघात स ताहित ताढका टग धयुक्त गधिर स लिपटा हुई इस प्रकार  
सीधे यमलोक चली जाती है जैमे काम के बाण म घायल कोई अभिमारिका चन्त  
का लेप लगाकर प्रिय क घर जा रहा हो । ४

कुम्भोत्सा-पुत्र लवणामुर का हृदय भा कुछ इसी प्रकार जुगुप्सा जनक है। कवि उसके घृणित रूप का परिचय देता हुआ कहता है—उमका रङ्ग घुएँ जैसा काला था, उसके शरीर से दुग्न्ध निकल रही थी, उसके बिखर हुए बश अग्नि की ज्वाला के समान थे तथा मासभ्रथा राशम उमके चारो ओर चल रह थे। इस प्रकार वह उस चिंता का अग्नि के समान लग रहा था जो घुएँ से घूमिल हा गया हा जिसम से चर्वी का दुग्न्ध निकल रही हा, जिसक आस पास श्वान गिद्धादि मामभ ती घूम रह हो।<sup>१</sup>

यहाँ जालम्बन लवणामुर है उमक काने केग, दुग युक्त शरार, मामभशी राशमादि उद्दीपन विभाव हैं। इस प्रकार वामत्म का सफ़्त व्यजना हा रही है।

कालिदास न वीमरस का कोई विस्तृत वणन नहीं किया। कवन कुछ सीमित स्थला पर जैम युद्ध प्रसंग तथा अमुरा इत्यादि के प्रसंग म ही किया है जिसम युद्ध की भीषणता तथा अमुरा के जुगुप्साजनक व्यक्तित्व का ज्ञान हो सक और वणन म अभीवता उत्पन्न हा सके।

भयानक रस—

रघुवश क पचम सग मे वय गज के प्रसङ्ग मे भयानक रस का परिपोष हुआ है। महाराज अज इन्मना स्वयम्बर म सम्मिलित हान के लिए अपनी सना सहित विन्म देश का ओर प्रस्थान करते हैं। माग म नमदा के तट पर उनकी अध्वरकलान सना अपना डेरा जालती है।<sup>२</sup> कुछ क्षण के पश्चात् मना का हनचल म एक भयङ्कर वय गज नमना के जल स निकलता है और वह मैय शिविर पर आक्रमण करता है। नदा म नहाने के कारण यद्यपि उस हाथा का सब मद धुन जाता है तथापि अज की मना क हाथियों को दम्बर वह क्राध स उगीप्त हो उठता है।<sup>३</sup> उस विशान गज को दम्बर तुरङ्ग रस्मा तुडा-तुडाकर भागने लगत हैं। इस हनचल म रथा क घुरे हुए पत्ने हैं आर वे जहाँ तहाँ गिर पडने हैं, भय क कारण स्त्रियाँ अपन आश्रम क लिए गुरगिन स्थान ढूढन लगती हैं। वह हाथी तम्बुआ का रौंद डालता है तथा रथा का ताड-पीड डालता है।<sup>४</sup>

यहाँ गज जालम्बन है। तम्बुआ का तोडना, रौंदना इत्यादि उद्दीपन विभाव है। घाटा का वागडोर तुडाकर भागना, स्त्रिया का भयभीत हा जाना इत्यादि अनुभाव है। भय, त्राम, आवग इत्यादि व्यभिचारोभाव हैं।

१ रघुवंश १५।१६

२ रघुवंश ५।४२

३ वही, ५।४७

४ वही ५।४६

सूपणखा व रोपपूण वचना को मुनकर सीता भयभीत हो जाती हैं और भय व कारण राम के पीछे जा दियाती हैं और उधर जन नाम क अनुकूल सूपणखा अपना भयदूर रूप प्रकट करती है ।'

यहाँ आश्रय सीता हैं तथा जात्रम्बन सूपणखा । भयभीत सीता द्वारा राम की आद म जा दियाता अनुभाव है । प्राय आवेग व्यभिचार भाव हैं ।

अद्भुत रस—

अद्भुत रस का स्थाया भाव विस्मय है । लाजातर वस्तु घटना दिग्ग्य पुष्प दशनादि इमवे आलम्बन विभाव हैं । विस्मयकारा वस्तुजा का देखकर जैसे मुनी रह जाना स्तम्भित रह जाना चकित रह जाना दाता तल अगुला दवाना, रामाचित हाता इत्यादि अनुभाव हैं । जडता आवग वितक भ्रान्ति इत्यादि सचारी भाव है । आचाय विश्वनाथ ने इस रस में चमत्कार को अधिक महत्व दिया है । उनका कथन है कि 'रस का प्राण लोकातर चमत्कार है । यह लोकातर चमत्कार सहृदय हृदय का विस्तार करता है और चित्त का विकास अलौकिक काव्यार्य व अनुशासन से होता है । अतः चमत्कार ही अद्भुत रस का स्वरूप है ।' इसी मायता का अनुसरण करते हुए रस तरगिणाकार' भानुसूत ने शृङ्गारादि रसों में भी आनन्द चमत्कार रूप विस्मय का ही सहायक माना है ।

कालिदास के काव्य में अद्भुत रस क जो भी स्थल प्राप्त होते हैं वे प्रसंगवश ही आते हैं । चमत्कार प्रदशनार्थ कवि ने उनका प्रयोग नहीं किया । महाकवि तो सदैव सीधी-सरल भाषा में ही अपनी बात कही के अम्यस्त रहे है अतः सहजता और स्वाभाविकता ही उनके काव्य का प्रधान गुण है । यत्र-तत्र अद्भुत रस के प्रयोग के कारण यह भ्रान्ति न होनी चाहिए कि कवि चमत्कार प्रेमी है वरन् अद्भुत का जो भा वणन प्राप्त हाता है—वह आश्रय गुणों में उरकप लाने क लिए जथवा प्रसङ्ग को सजोव बनाने हेतु ही है ।

मायावी सिद्धना दना पर सहृष्टा आक्रमण कर देता ह । नर्त्तनी का चीत्कार मुनकर दिलीप की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाती है और सिंह पर प्रहार करने के निमित्त तरकश से वाण निकालने के लिए हाथ उठाते हैं किन्तु यह क्या ? उनकी अँगुलियाँ तो वाणा से चिपक जाती हैं । मह देखकर वे चकित रह जाने

हैं और इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं जैसे किसी ने उह चित्र में ज६ कर दिया हो ।<sup>१</sup>

यहाँ सिंह आलम्बन है । वाण चलाने के लिए हाथ उठाना किन्तु चिपक जाना स्तम्भित रह जाना अनुभाव है । आवेग, जड़ता सचारीभाव हैं ।

इसी प्रकार क्रोध में रघु के शक्तिशाली प्रताप से भयभीत कुंवर द्वारा अप्रत्याशित स्वर्ण का वर्षा कर देना तथा राजकाय के रक्षका द्वारा रघु से उस विस्मयजनक समाचार के कथन में विस्मय स्थायीभाव की झलक मिलती है । अप्रत्याशित धन वर्षा उद्दीपन विभाव है ।

पुत्रहीन महाराज दशरथ पुत्र प्राप्ति का आकांक्षा से पुत्रेष्टि यत्न प्रारम्भ करते हैं । ज्या हा यत्न समाप्त होता है, तथा ही यज्ञ की अग्नि में से एक दिग्ग पुरुष प्रकट होता है जिसे दक्षकर यत्नकर्ता ऋषि आश्चर्य में पड़ जाते हैं । उस पुरुष के हाथ में खीर से भरा बटारा रहता है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड का धारण करने वाल विष्णु भगवान् बैठे थे ।

यहा दिव्यपुरुष उद्दीपन विभाव है तथा ऋषिगणों का आश्चर्य से भर जाना इत्यादि अनुभाव है ।

राम लक्ष्मण के संरक्षण में विश्वामित्र इत्यादि ऋषिगण यत्न का प्रारम्भ करते हैं । इसी वाच यत्न की वृद्धि पर रक्त की बड़ी-बड़ा बूंदे दक्षकर ऋषिगण आश्चर्यचकित रह जाते हैं और शीघ्रता से यत्न करना बन्द कर अपने-अपने स्रुवे उठाकर रख देते हैं ।<sup>२</sup>

यहाँ रक्त की बूंदे उद्दीपन विभाव हैं । ऋषियों का आश्चर्य से भर जाना यत्न बन्द कर देना, स्रुवे उठाकर रख देना इत्यादि अनुभाव हैं । आवेग सचारी भाव है ।

महाराज जनक अपनी पुत्री के विवाह हेतु एक विशाल स्वयम्बर की आयोजना करते हैं । स्वयम्बर में भुजगेन्द्र के समान भीषण, शङ्कर जी का धनुष लाया जाता है । दक्षत ही दक्षते राम, उस धनुष को अनायास ही उठा लेते हैं और बड़ी सरलता से पर्वत के समान भारी धनुष पर डोरी चन्पा लेते हैं—यह दृश्य देखकर सभा में स्थित सभा लोग विस्मय से विस्फारित नेत्रों से देखने लगते हैं ।<sup>३</sup>

१ रघुवंश २।३१

३ वही, १०।४०

५ वही, ११।४४

२ रघुवंश ५।२६

४ वही, ११।२५

यहाँ राम द्वारा धनुष उठा लेना उद्घोषण विभाव है। महासदा का अचम्बित रह जाना नेत्रा का धुन रह जाना इत्यादि अनुभाव है। जड़ता संचाराभाव है।

पाप्य सग म अधरात्रि व समय कुश व शयनागार म जवानक एक स्त्री प्रकट होती है। द्वार के बन्द रहने पर भी वह स्त्रा अन्दर चली जाती है। उम दम-वर पुश का बडा आश्चय होता है और व शय्या म उठ बैठना ह और उसम कहत हैं— हे शुभे तुम कौन हो। तुम्हारा पति का क्या नाम है और मर पाम किस लिए आयी हा।<sup>१</sup>

यहाँ स्त्रा आनन्दन है उसका शयनगृह म आनन्दिक प्रवेश उद्घोषण विभाव है। कुश द्वारा शय्या म उठ बैठना तथा परिचय पूछना इत्यादि अनुभाव है तथा जावेग व्यभिचारीभाव है।

आश्चय स्थायाभाव का साँका कुश तब क प्रसङ्ग मे देखन को मिलता है। दाना बालका (कुश लव) का राम म मिलता जुनता जायति देखकर सभा उह टक-टकी लगाकर देखने लगत हैं। गायन म उनकी अनिगम प्रवीणता देखकर विस्मित सभास्थित लोगा का आश्चय तब और भा वर जाता है जब व राम द्वारा प्राप्त दान को भी लौटा देत हैं।<sup>२</sup>

यहाँ कुश लव का कुशल गायन तथा दान लौटा देना उद्घोषण विभाव है सभा सदा का आश्चय चकित रह जाना अनुभाव है। जड़ता व्यभिचाराभाव है।

शातरम—

रघुवश के एक दा स्थाना पर शातरम का बडा हा सुन्दर चित्रण हुआ है। उद्घोषणविभाव रूप म वशिष्ठ ऋषि व आश्रम का बणन करता हुआ कवि कहता है - सन्ध्या समय अग्निहोत्र के लि। तपस्वागण हाथ म समिधा कुशा तथा फन लिए बन से लौट हैं।<sup>३</sup> अनक मृग त्वस्तव पणकुटिया का द्वार रोक खडे ह क्योंकि उह भी ऋषि-पत्निया का शिशुजा के समान निरती के दाने खाने का अम्यास पड गया है।<sup>४</sup> वही ऋषिकन्याय वृषा की जडा म रानी डालकर हट गया हैं जिसने आश्रम के पक्षा निभय होकर जनपान कर सकें।<sup>५</sup> ता वही घुष म सूखन के लिए डाल गय

१ रघुवश ११।४५

२ रघुवश १५।६८

३ वही १।४६

४ वही १।५०

५ वही, १।५१

तिनी के दाता को सन्ध्या समय उठाया जा रहा है और कही प्राङ्गण में बैठे बहुत म  
हरिण जुगाली कर रहे हैं ।<sup>१</sup> इस प्रकार हवन-सामग्रा की गंध से मिश्रित अग्निहोत्र  
का जो धूम्र पवन के द्वारा चतुर्दिशाओं में फैल रहा है उसने आश्रम की ओर जात हुए  
जतिथिया को भी पवित्र कर दिया है ।<sup>२</sup>

अष्टम सर्ग में इन्दुमती की मृत्यु के फलस्वरूप दुःखी अज का ससार की  
नश्वरता तथा मानव जीवन का क्षण भंगुरता का उपदेश दिया गया है । यह उपदेश  
उद्दीपन विभावा-तगत हो जाता है । ऋषि अज में कहता है— हे राजन् ! जिस किसी  
न शरीर धारण किया है उसका मरना स्वाभाविकता है । विद्वानों का कथन है कि  
जीवित रहना ही सबसे भारी विकार है, इसलिये प्राणी जितने क्षण जावित रह जाय  
उतने से ही उसे सन्तोष करना चाहिये ।<sup>३</sup> विद्वान् लाग मृत्यु को वैसा ही कष्टकारक  
मानते हैं जैसे हृद्य में निहित कील । अतः जो मृत्यु को प्राप्त हो गया वह सब  
बचटा से मुक्त हो गया । वे मृत्यु को वैसा ही मुख्तारी मानते हैं जैसे हृदय में निहित  
कील निकालने में ।<sup>४</sup> इसलिये हे महाराज ! जब शरीररत्ना भी परस्पर बिछुड़ने वाल  
माने गये हैं, तब पुत्र कन्यादि सम्बन्धियों के वियोग में विद्वानों का दुःख क्यों हो ।<sup>५</sup>  
फिर हे राजन् ! आप तो जितेंद्रियों में सर्वश्रेष्ठ हैं इसलिये प्रिया की मृत्यु पर सावा-  
रण प्राणोक्त आप शोक न कीजिये ।<sup>६</sup>

तेरहवें सर्ग में अगस्त ऋषि के आश्रम में नाहस्य तथा आह्वनीय अग्नि का  
वर्णन उद्दीपन रूप में तथा 'राम का हृदय-पवित्र हो जाना अनुभाव रूप से कुशलता  
पूर्वक हुआ है ।

भावव्यग्य—

आचार्य अभिनव गुप्त का कथन है कि जब कोई उद्विक्तावस्था में पहुँचा हुआ  
व्यभिचारी भाव चमत्कारातिशय का प्रयोजन बनता है तब वहाँ भाव व्यग्य होता  
है ।<sup>७</sup> आचार्य मम्मट ने देवादिविषया रति तथा विशिष्ट प्रकार से व्यजित व्यभिचारी  
भाव को भाव सज्ञा दी है । अथ आचार्यों ने ऐस सभी स्थायीभावा का जो  
अपरिपुट रह जाते हैं अर्थात् रमावस्था को प्राप्त नहीं हो पाते भाव माना है क्योंकि

१ रघुवंश १।५१

२ वही, ८।८७

३ वही, ८।८६

७ सोचन, पृ० १७५

२ रघुवंश १।५३

४ वही, ८।८८

६ वही, ८।६०

८ का० प्र० ३।३५, पृ० ११८



अंगितुलना के कारण उपाय स्थायित्व षट् जाना है । रसतरंगिणाकार भी स्प  
भाष का स्थायित्व इच्छितिय मानन है कि वह चरमसीमा तक स्थायी बना र  
है ।' आषाय हमस-इ श्रवादि स्थायीभाषा का स्थायित्व विभाव बहुनता के का  
माना है और अन्विभावत्व हो। पर उसको व्यभिचारीभाव स्वीकार करते हैं ।<sup>१</sup>

### कुमारसम्भव—

कालिदास के काव्य में अंगारङ्ग रसा की निष्पत्ति के साथ साथ भावा की  
भी गुणर अभिव्यचना हुई है । कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में दशविषयक रति का  
गुणर स्वरूप प्राप्त होता है । सारक नामक रास के कुटुम्बी से अत्यधिक संप्रस्त  
दशगण आने दुःखनिवारणाय इन्द्र को आगे करके भगवान् ब्रह्मा की शरण में  
उत्प्रेषित होने हैं और उनका स्तुति करत हुए विनम्र प्रार्थना करत हैं— हे त्रैलोक्य  
स्रष्टा जगत्-स्रष्टा स्वामी आरका प्रणाम है । हे ब्रह्मा ! आपने सबप्रथम जल  
उत्पन्न करके उसमें ऐसा बीज बो र्णिया है जो कभी व्यय नहीं जाता और जिससे  
उत्पन्न हुआ यह समस्त चराचर आका गान करता है<sup>१</sup> आप ही शिव विष्णु  
और हिरण्यगर्भ इन त्रिरूपों से अपनी शक्ति प्रकट करके, विश्व का सृष्टि पालन एवं  
संहार करत हैं ।<sup>२</sup> हे भगवन् ! जब आप ससार का सृजन करन के अभिलाषा हान  
हैं ता उस समय आरके ही स्त्री एवं पुरुष दो रूप बन जान हैं जो ससार के माता  
पिता कहलाते हैं ।<sup>३</sup> आनन समय का जो परिमाण बनाया है उसके अनुसार ही दिन  
और रात और द्योत हैं । जब आप शयन करते हैं तब ससार का महाप्रलय हा जाता  
है और आपके पुन जागन पर सधार की नवीन सृष्टि होती है ।<sup>४</sup> आप स्थ ससार  
का उत्पत्ति पालन एवं प्रलय करन वाले हैं किन्तु आपको कोई भी उत्पन्न पालन  
एवं नाश करने वाला नहीं है । आप जातीयकर होकर भा निराश्वर हैं ।<sup>५</sup> आप अपन  
स्वरूप को स्वयं जानन वाले हैं अपने में गान करन वाले हैं ।<sup>६</sup> आप तरल भा हैं,  
कठार भी हैं स्थूल भी हैं सूक्ष्म भी हैं, धाटे भा हैं बडे भी हैं आप दृश्य भा हैं,  
अदृश्य भा हैं इस प्रकार समस्त सिद्धियां के आप स्वामी हैं ।<sup>७</sup> हे भगवन् ! आप ही  
धर्मापकाममाय के प्रति प्राणिमा को प्रवर्तित करन वाला मून प्रवृत्ति कहानत हैं और

१ रसतर पृ० १२

२ कुमारसम्भव २।५

३ वही २।६

४ वही २।८

५ वही, २।१०

२ काव्यानु पृ० १०६

४ कुमारसम्भव २।६

६ वही २।७

८ वही, २।८

आप ही प्रकृति का दशन करने वाले उदासीन पुरुष माने जाते हैं ।<sup>१</sup> आप पितरो के पिता देवलोक के देवता तथा प्रजापतिया के विधाता हैं ।<sup>२</sup> आप ही हव्य और होता हैं आप ही भोज्य और भोक्ता हैं, ज्ञाता और ज्ञेय हैं तथा ध्याता एव ध्येय हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ देवताओं की आलम्बन रूप ब्रह्मा के प्रति रति स्थाई भाव की व्यजना हुई हैं । स्तुति में ब्रह्मा के जिस गौरव एव माहात्म्य का कथन हुआ है वे अनुभाव रूप में तथा दैव्य, चिन्ता, विपाद इत्यादि व्यभिचारीभाव हैं ।

पृष्ठ सग में विवाह का शुभ संदेश हिमालय राज के पास ल जाने के निमित्त भगवान् शङ्ख द्वारा स्मरण किए जाने पर वेद वेदाङ्गा क नाता सप्तपिण्ड उनक समस्त उपस्थित होत हैं और प्रेम कण्ठकितवय होकर शिवजी का पूजन करते हुए कहत हैं—हे भगवन् ! हमारा वेद पढ़न का विधिपूर्वक यत्न करने का तथा तप करन का मुफल (आपने दशन मात्र से) आज प्राप्त हुआ है<sup>४</sup> क्योंकि आपने जिस मन तक किसी की भी इच्छायें नहीं पहुँच सकती उसी मन में आपन हमें स्मरण किया है । हे स्वामी ! आप जिसके मन में बसते हैं, वह सर्वश्रेष्ठ पुण्यात्मा होता है किन्तु आप के मन में जो बसता उसका तो कहना ही क्या ?<sup>५</sup> यद्यपि हम मूय तथा चद्र से भी उच्च स्थान पर रहते हैं किन्तु आज आपन हम स्मरण करके उनसे ना परमाच्च स्थान पर चढा दिया है ।<sup>६</sup> हे भगवन् ! आपने यह आदर पाकर हम धन्य हो गये क्योंकि स्वगुणों पर लोका की तभी सच्चा विश्वास होता है जब सज्जन पुरुष उनके गुणा का आदर करत हैं ।<sup>७</sup> हे देव ! आपने अनुष्ठान से हमारा हृदय में जो प्राति उदित हुई है, उम हम आपके समक्ष अपने मुख से क्या निवेदन करें, आप तो स्वय ही सबन हैं ।<sup>८</sup> यद्यपि आपको हम समस्त स्थित देव रहे हैं, तथापि हम आपका धाम्त्विक स्वरूप नही समझ पा रहे हैं । इसलिए आप वृपा करके हम मह बनलाय कि आपका यह सात्वान् दृष्ट स्वरूप जगत्-मृष्टा है, पानन-कर्ता है अथवा संहारकर्ता है ।<sup>९</sup> हे देव ! यह तो बड़ा ही जटिल क्या है इतिनि ए इस अभी विराम दीजिये और बताइये कि इस समय आपने हम किस काय सम्पादन-हेतु स्मरण किया है ।<sup>१०</sup>

१ कु०स० २।१३

२ कु०स० २।१४

३ वही २।१५

४ वही, ६।१५

५ वही, ६।१६

६ वही, ६।१७

७ वही, ६।१८

८ वही, ६।१६

९ वही, ६।२०

१० वही, ६।२१

११ वही ६।२३

१२ वही, ६।२४



गण अति प्रसन्न होत हैं और उनके चरित्र को प्रशंसा करते हुए कहत हैं—'ह गिरिराज ! आपन जा कुछ कहा वह सब आरु शोभा योग्य है । क्याकि आरु मन वैमा ही समुन्नत है जैसे आपके शिखर । आपका जो अचल पदार्थों का विष्णु कहा जाता है वह उचित हैं क्याकि आप समस्त चर-अचर के आश्रय स्वरूप हैं ।<sup>१</sup> यदि आप अपने भार से पतान के नाचे तक पृथ्वी का न दशाए रहे तो शेषनाग कमनवन् मृदु फणा पर पृथ्वी को किम प्रकार धारण करत ।<sup>२</sup> जिस प्रकार आपके यहां स निकली निरन्तर प्रवाहित तथा समुद्र को लहरा रा ग अचिद्धन निमल नदियाँ अपनी पवित्रता में ससार का पवित्र करती ह उसा प्रकार अप्रतिहत, आपका कानि भा सब लोकों का पवित्र करती है । जिस प्रकार विष्णु के चरण में निस्तृत गंगा अपने को बड़ा ध्य समझता हैं उमा प्रकार आपके उच्चशिखर से निकलकर प्रवाहित होने में अपने को पुण्यभागिनी समझता हैं । वामनारतार धारण कर तीना लाक्षा का नापने व पश्चान् भगवान् विष्णु की महिमा तीना लोक में फैला हैं, किन्तु आपका महिमा तो उनसे पूव ही प्रैलोक्य में व्याप्त हैं ।<sup>३</sup> यन का भाग प्राप्त करने वाले, देवगणा में स्थान प्राप्त कर आपन उच्च एक हिरण्यमय शिखरा वान सुम पवत का भी अचर कर दिया है । हे पवतराज ! आपने अपने समस्त कठोरता को अचल शरार में समाहित कर निभा है और आपका यह चल शरीर भक्ति से एमा विनम है कि सज्जनवृद् आकर इसकी आराधना करत हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ आश्रय सप्तविगण है आनम्बन हिमालयराज । सप्तपि द्वारा हिमानय का गुण प्रशंसा का कथन अनुभाव है तथा ह्य इत्यादि व्यभिचाराभाव हैं । इस प्रकार देवविषयक रति की सुन्दर व्यञ्जना हुई है ।

पुत्री विषयक रति अथवा वात्सल्य का व्यञ्जना माँ मैना व प्रसङ्ग में मिलती है । विवाह के अवसर पर शृङ्गार का समस्त सामग्रिया स सज्जित पावती का स्वाभाविक रूप लावण्य द्विगुणित हो उठता है । उनके अतीविक रूप सौन्दर्य का देखकर आनन्दितिक के कारण माता मैना व नत्र में अशु प्रवाहित होने लगता है अतएव स्पष्ट दख न सक्ने के कारण कङ्कन जहाँ राधना चाहिय वहाँ न बांधकर कही और बाध देती हैं ।<sup>५</sup>

१ कु०स० ६।६६

२ वही, ६।६८

३ वही, ६।७०

४ वही, ६।२५

२ कु०स० ६।७०

४ वही, ६।६६

६ वही ६।७३

यहाँ सप्तपिण्ड आश्रय है भगवान शङ्कर जालम्बन हैं तथा उनका लोकानि शासी चरित्र उद्घोषन विभाव है । प्रेम-म गरार का पुनर्कित हाना तथा भगवान शिव का महिमा का कथनादि अनुभाव है—हृष शक्तिचारीभाव है ।

मुनि विषयक रति का चित्रण हिमालय तथा सप्तपिण्डा क सवाद के प्रसङ्ग म म हुआ है । हिमालयराज सप्तपिण्डा का अपन घर आया हुआ देखकर अति प्रमन्न हान हैं । शुद्धात्मा हिमानय बडा विधिपूर्वक सप्तपिण्डा का सत्कार कहत हैं, उह मुन्न जागना पर वेदान्त हैं और विनयपूर्वक कर्बद्ध होकर कहत हैं 'हृ देवशृपि-वृत्) आपका सत्मा आगमन मुझे एसा लग रहा जैसे मिना मेष की कपा हो गई जयवा मिना पुष्प क फल निकल जाए हा ।' आज म मैं अपन का एसा समझ रहा हूँ माना मुष अनाता को पान मित्र गया हो लोह से मोना सा बन गया हूँ जीर भूमि पर रहत हुए भा शुवासा हा गया हू ।' मैं आज स स्वय को एसा विशान तीथ समथन लगा हूँ, जहाँ जात हा लाग पवित्र हो जाएँ कपाकि जहाँ सज्जना का निवास हा जाता है वहीँ साधस्थान बन जाना है ।' हृ ब्रह्मपिया । मैं अपन को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ प्रथम तिर पर गङ्गा प्रवाहित होत से तथा द्वितीय आर लागा क चरणा का प्रक्षालन प्राप्त कर लते स । हृ मुनिया । आर लोणा न अपन जागमन से, मर चर और अवर दाना शरार पर महता कृपा की हे और मैं हृपानिरक स फूना नहीं समा रहा हूँ ।' आप तजस्विन्या क दशन मान म मरा गुफाआ का अन्वकार हा नहीं अपितु मेरे हृदय का अनानाचकार भा डुर हो गया ।' हृ ऋषियण । आप तो सबशक्तिमान हैं इसलिए आप किसा काय बश नहीं आये हैं, अरिगु कवल मुक्त पवित्र करन क लिए हा आप लोणा न यहाँ जाने का कष्ट किया है ।' किन्तु आप जब हमारा यहाँ पधार हैं तो मुझे कोई सवा बताइए । आपकी आज्ञा का पालन करन के लिए मैं, मरी पत्नी तथा मेरा प्रिय कथा, समा हूँ । अत आप अपना शुभ इच्छित काय हम बताइये कपाकि समस्त वात्स वस्तुएँ तो आपक लिए तुच्छ हैं ।

यहाँ आश्रय हिमानय है तथा जालम्बन रूप सप्तपिण्डा क गुणा का कथन अनुभाव है तथा हृष शक्तिचारीभाव है । हिमराज द्वारा यथाचित सङ्घट ऋषि-

१ कुमारसम्भव ६।४३

३ वही, ६।५५

५ वही, ६।५४

७ वही, ६।६२

२ कुमारसम्भव १।५४

४ वही, ६।५६

६ वही, ६।६०

८ वही, ६।६४

गण अग्नि प्रसन्न हात हैं और उनके चरित्र का प्रशंसा बग्न हुए कहते हैं—'ह  
 गिरिराज ! आपन जा कुछ कहा वह सब आपन शोभा योग्य है । कपानि आपन  
 मन पैसा हा समुन्त है जैसे आपन शिखर । आपको जो अचल पत्थरों का विष्णु  
 कहा जाता है वह उचित हैं कपानि आप समस्त चर अचर के आश्रय स्वरूप हैं ।'  
 यदि आप आपन भार स पतान के नाच तक पृथ्वी का न दगा रहें, तो शोपनाग  
 कमलवन् मृदु पणा पर पृथ्वी का किस प्रकार धारण करत ।' जिम प्रकार आपके  
 यहाँ न निकला निरंतर प्रवाहित तथा समुद्र का लहरा रो भा अचिन्तन निमल  
 नदियाँ अपनी पवित्रता न ममार को पवित्र करती है उसा प्रकार अप्रतिहत, आपका  
 कानि भा सत्र लोको को पवित्र करता है । जिस प्रकार विष्णु क चरण न निस्तुव  
 गगा अपन का बडा धम समगता है उसा प्रकार आपक उच्चशिखर से निमलकर  
 प्रवाहित होने मे अपन को पुण्यभागिना समझती हैं । वामनामतार धारण कर तीना  
 लाजा को आपन क पश्चात् भगवाद् विष्णु की महिमा तीना लोक न पैसा हैं, किन्तु  
 आपकी महिमा तो उनके पूव ही प्रैलोव्य न व्याप्त हैं ।' यन का भाव प्राप्त करत  
 बाने, दवगणा न स्थान प्राप्त कर आपन उच्च एव हिरण्यमय शिखरा वान सुमरु  
 पवत का भा अचर कर दिया है । ह पवतराज ! आपने अपनी समस्त बठोरता  
 का अचन शरार न समाहित कर लिया है और आपका यह चल शरीर भक्ति से एसा  
 विनम्र है कि सज्जनवृद् आकर इसका जाराधा करत हैं ।<sup>६</sup>

यहाँ जाश्रय सप्तपिण्गण हैं आनम्बन हिमालयराज । सप्तपि द्वारा हिमानय  
 का गुण प्रशंसा का कथन अनुभाज है तथा हर्ष इत्यादि व्यभिचारभाव हैं । इस  
 प्रकार देवविषयक रति की सुन्दर व्यजना हुई है ।

पुत्रा विषयक रति यथा वात्सल्य की व्यजना माँ मैना के प्रसन्न मे मिलता  
 है । विवाह के जबसर पर शृङ्गार का समस्त सामग्रिया स सज्जित पावती का स्वा-  
 भाविक रूप लावण्य द्विगुणित हो उठता है । उनके अनौक्तिक रूप सौन्दर्य का देखकर  
 आनन्दातिरेक क कारण माता मैना क नत्र न अधु प्रवाहित होने लगता है जनएव  
 स्पष्ट देख न सकत के कारण बङ्गन जहाँ वाँधना चाहिये वहाँ न वाँधकर कही और  
 वाँध देती हैं ।<sup>७</sup>

१ कु०स० ६।६६

२ कु०स० ६।७०

३ वही ६।६८

४ वही, ६।६९

५ वही, ६।७०

६ वही ६।७३

७ वही, ६।२५

यही आश्रय मैत्रा है आनन्दन का पावता उनका रूप कान्ति, उदापन विभाव है। नन ग अशुभारा प्रवाहित हाता, कङ्कन कही का कही याप दना अनुभाव है तथा हय, मात भाति इरपाति अभिचाराभाव है।

शिव का कठोर तदारन म प्राप्त करन क निमित्त पावता वन जान का निरवय करती है। मा मना यह ममाचार गुनकर अरयउ कावर हा उरना है ओर उहे बडे स्नह म गन सगाहर कठोर तरस्या करन म मना करता हुई कहती है। ह वरम ! यह-बडे दवता तुम्हारे पर म विद्यमान है। तुम्हारा जा भा अभिप्रय हा, उनम माग मा। तरस्या करना सरन नहा है। वहाँ तपस्मा ओर कर्ता तुम्हारा कामल शरार। कराकि शिराप पुण पर भोरें मन हा जाकर बैठ जायें किन्तु मति काई प हा आहर बैठन गये ता वह नहा सा पुण गड हा जायगा।<sup>१</sup>

यही जायम रूप मैत्रा द्वारा पावता का गल म लगाना, तपस्या करन म गरना इरपादि अनुभाव है तथा मोह चिन्ता इयाति अभिचारा भाव है। इस प्रकार पुना पावता क प्रति मा का स्नह पुना विषयक रति का सफन व्यजना कराता है।

पुत्राश्रयक रति (वासन्ध) का गुण यजना पठ सग क अन्त म हुई है। शिव पावता विवाह निश्चय हा जान पर तिमालम मुदर माङ्गलिक वस्या म सञ्जिन अपना कया को स्नह म बुताकर कहन है—'यही आभा वरम ! दयो विश्वात्मा शिव न तुम्ह मुमम मांगा है और वह भिन्ना लन क तिम य सप्तकपि लोग आए हुए हैं नचमुब जाज मुने इदस्थ हाज का सत्वन प्राप्त हो गया।<sup>२</sup> यह कहकर व ऋपया स कहत है—'यह शङ्कर जा का पना आपनी प्रणाम करना है।<sup>३</sup> ऋषियण अम्बिका को सद्य फन दन चान थोष्ठ आसीर्वा दन है।<sup>४</sup> तरश्चात् ऋषिया को प्रणाम करन क लिए पावता ज्याहा लजाता हुई चुकती है त्यो हा उनक कण से स्वण-कुण्डल गिरन गगता है और जराधती जा साध्र उ ह उठाकर जङ्ग म बिटा लती है।<sup>५</sup>

यही पहल हिमालय फिर अर धता जायम है पावती आनन्दन। पावता द्वारा ऋषिया को प्रणाम करन क लिए चुकना उदापन विभाव। पिता द्वारा पावती का बुताना सप्तपिया म उनके प्रणाम का वाठ कहना, जराधती द्वारा अङ्क म आराध कर लना, अनुभाव तथा आडा, अभिचाराभाव है।

१ कुमारसम्भव ५।३

२ कुमारसम्भव ६।८८

३ यही ६।८६

४ यही ६।९०

५ यही, ६।९१

आचार्य आनन्दवदन ने प्राधायन व्यजित अभिचारी भाव को भावव्यग्य माना है। उनका स्पष्ट कथन है कि जहाँ किसी भाव का चित्रण किया जाता है, वहाँ कोई न कोई रस अवश्य विद्यमान रहता है किन्तु वही रस वा चारुत्व न होकर भाव विशेष का ही विशेष चारुत्व रहता है। अतः एम स्थान पर रस की प्रधानता न मानकर, भाव की प्रधानता माननी चाहिये। व्यजित अभिचारीभावों का सोदय प्रायः स्फुट काव्या में ही दिखाई पड़ता है क्योंकि उनमें प्रत्येक शब्द स्वतंत्र होता है। अतः उनमें विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति बड़ा सरलता पूर्वक हो जाता है। प्रवध का य म ता य सभी भाव अंगों के जग बन् जान हैं अतएव उन्हें स्वतंत्र अभिचारी भाव कहने में थोड़ी हिचक होती है। कुमारसम्भव में भी प्रायः भावों का चित्रण अङ्गीरस व अङ्गत्प में हुआ है फिर भी कुछ स्थानों पर हम भावों के स्वतंत्र अस्तित्व की चर्चा करेंगे।

द्वितीय सर्ग में तारकासुर द्वारा त्रसित इतएव अत्यन्त घबराए हुए, अपनी शरण में उपस्थित देवताओं को देखकर ब्रह्मा कहते हैं—एक साथ मिलकर आये हुए अपने-अपने अधिकारों की रक्षा करने वाले हृत्तिशाला दक्षगण ! मैं आप सब का स्वागत करता हूँ। हे देवताओं ! आप लोगों के मुँह का पहली वाली कानि कहीं विन्मुक्त हो गया। आप सब हिमाच्छादित धुँधल तार के समान दुःखित क्या दिखाई दे रहे हैं।<sup>१</sup> वृत्रासुर का हनन करने वाला, इन्द्रधनुष के समान ज्यातिमुक्त वज्र आज चमक खाकर कुण्ठित सा क्या लग रहा है। पत्रुओं के सहारकता वर्णदव पाण स बद्ध सप के समान अनिदीन क्या दिखाई दे रहे हैं।<sup>२</sup> कुंवर का गदाविहीन दाढ़, भग्नशाला वात वृक्ष के डूँठ के समान क्या दिखाई पड़ रहा है।<sup>३</sup> अपने निस्सज दण्ड से पृथ्वी को कुरबत हुए यमराज एम क्या लग रहे हैं मानो उनका कठार दण्ड भी निर्वाण भूमिपृष्ठ लूक जैसा बकाम हो गया है।<sup>४</sup> हे आदित्यगण आप लोग भी चित्रलिखितवत् प्रतान क्षत हो जाने के कारण ठण्ड क्या दिखाई दे रहे हैं।<sup>५</sup> हे मरुद्गण ! आप भी शिथिल क्या पड़ गये हैं। हे रुद्रगण ! आपकी हृद्धार करने की शक्ति कहीं विलीन हो गयी।<sup>६</sup> हे दनगण ! एम प्रतीन हाता है मानो आपकी उच्च प्रतिष्ठा किसी पराक्रमा शत्रु द्वारा विनष्ट कर दी गयी है। अतः मुझे

१ कुमारसम्भव २।१६

२ वही, २।२१

३ वही २।२३

४ वही, २।२५

२ कुमारसम्भव २।२०

४ वही, २।२२

६ वही, २।२४



वताम्य वि आर लाग एकत्र हातर क्या वदुत आय हैं क्याकि मरा काय तो कवल जगत् का सृष्टि करता है, उसरा पावन करता ता आर लागो क आथिन है ।<sup>१</sup>

यहाँ विपात्, चिन्ता मैय, जठ्ठा इत्यादि व्यभिचाराभावा का प्राधान्य यजना हा रहा है । लज्जा, शान्ति, मद आदि व्यभिचाराभावा की व्यजना तुनाय सग क अंत म हुइ है । अपना प्राधाग्नि का ताण ज्वाला स काम का मस्म कर दन क पश्चात् शिव जा सहसा अर्थाहित हा जात हैं । उस समय उनका सवा म प्रस्तुत पारसा यह साक्षर अत्यन्त लज्जित हाता हैं नि आज सखिया क सम्मुख उच्चमपादा बाल मर पिता का मनारथ और मरा मुदरता दाना हा व्यथ हो गये ।

ब्रह्मचारा द्वारा शिव क निन्दा क्यन क मायम से अतक भावा की अनुपम छत्र लज्जित हाता है । ब्रह्मचारा शङ्कर जा का धार निन्दा करत हुये कहता है—  
पावता जा । आप भा किय जयाग्य स प्रम करता ह । पाणिप्रदूण की वेना म वैवा-  
हिक सूत्र स सज्जित आपना यह हाथ महादद क सपत्नित्व हाथ का कैस स्वग कर  
सक्या । आप उस श्मशान भूमि पर अनन चरण किस प्रकार रखेंगी । जहाँ प्रेता  
स्माभा क केश इतन्तव रिगत् पड रहन हैं ।<sup>२</sup> कपाली को प्राप्त करन म दो डुरा  
स्माभा क नाम छू गये, एउ ता उनन मस्तक पर स्थित चन्द्रना क दूसर  
आपक ।<sup>३</sup> उस निगमन शिव क ता जम का भी कोई ठिकाना नहा है । अतएव  
आप मन से यह इच्छा निकाल दाजिए । कहीं शिव और कहीं मुल तथा आप ।  
अत श्मशान म पुनारागण करन क तिय जा गम्भा खन्दा रहता है जयम जिस  
प्रकार सम्भन ताग मन क सम्भन का भाष नहा सम्भन करन उसी प्रकार शिव जो  
का पति बनाना आपका शोभा नहा दता ।

यहाँ विपात्, ह्य, चपलता आदि व्यभिचारी भावा की यजना हुइ है ।  
ब्रह्मचारा कोई और नही वस्तुत शिव ही थ इसलिये प्रकट म तो वे पावती के तप  
परागार्थी शिव का निन्दा करव उनका लदय भ्रष्ट करना चाहते हैं किन्तु उनक हृदय  
म पावती के प्रति एक आकर्षण का भाव अवश्य था । इस प्रकार हुये चपलतादि  
भावा का ही यहाँ सौंदर्य दीप्त पढता है ।

विवाह के अवसर पर सखिया द्वारा पूण शृङ्गार कर दिये जाने पर पावती  
दण मे अपनी अपूर्व स्त्री दय छवि को देखकर ठण स्त्री रह जाया है और शिव से

१ कुमारसम्भव २।२८

२ कुमारसम्भव ३।७४

३ वही, ५।६६

४ वही, ५।६८

५ वही, ५।७१

६ वही, ५।७३

मिलने के लिए उतावली हो उठती हैं। क्याकि स्त्रियो का शृङ्गार तभी सफलभूत होता है जब पति उम दखे ।<sup>१</sup>

यहाँ औत्सुक्य भाव की व्यजना हो रही है।

शङ्कर का अद्वितीय रूपकाति को देखकर नगरमु दरियाँ सोचने लगती हैं कि ऐस श्रेष्ठवर का प्राप्त करन के लिए पावती का तप करना उचित था ।<sup>२</sup> सौंदर्य म परस्पर स्पृहणीय शोभा बाल यदि इन दोनो (शङ्कर-पावती) का विवाह न होता ता प्रजापति द्वारा इन दोनो क रूप निर्माण का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता ।<sup>३</sup> शिव की प्रशंसा करती हुई वे एक दूसरे से कहती हैं—हे सखी ! इन्हने कामदेव का भस्म नही किया, वरन् वह इनकी दिय रूप शोभा को देखकर, स्वय ही ईर्ष्यावश जल मरा है ।<sup>४</sup> हे आली ! पवतेश्वर हिमालय बडे ही भाग्यवान हैं । पृथ्वा को धारण करने के कारण उनका मस्तक स्वय ही ऊचा है किन्तु आज अभिलपित वर शङ्कर से कारण सम्बन्ध करके ता उनका मस्तक और भी उन्नत हो गया है ।<sup>५</sup>

महा वितक, हर्ष, चपलता, औत्सुक्य इत्यादि व्यभिचारीभावो की यजना हा रही है ।

देवपिगण जिन समय यह (शिव-पावती के विवाह का सन्देश) कह रहे थे, उसी समय पावती जी अपने पिता क समीप नीचा मुँह करके खिलौने के कमल पत्र गिन रही थी ।<sup>६</sup>

यहाँ अवहित्था भाव व्यग्य हो रहा है ।

पावता जी क चरणा म जब सखी महावर लगा चुकी तब उमने विनोद वरत हुए आशीवाद दिया कि भगवान वर तुम इन पैरा स अपन पति क सिर की चद्रकला का स्पश करो । इस पर पावती मुँह से ता कुय न बोली किन्तु एक माला उठाकर उसकी पीठ पर फेंक दिया ।<sup>७</sup>

दैन्याभाव—जैसे (हिमालयस्थ) किन्नरिया शिलीभूत हिम मार्गों पर चलती थी वो उनकी अङ्गुलिया और एडियाँ ऐँठ जानी थी, पर वे क्या करें, अपने भारी नितम्बा तथा स्तना के भार के कारण शीघ्रता स न चल पाती और न इच्छा हाने हुए भी स्वभाविक मदगति का त्याग कर पाती ।<sup>८</sup>

१ कुमारसम्भव ७।२२

२ वही, ७।६६

५ वही, ७।६८

७ वही, ७।१६

२ कुमारसम्भव ७।६५

४ वही, ७।६७

६ वही, ६।८४

८ वही, १।११

यहाँ हिमावय) का गुफामा म विप्ररिप्यौ अपन प्रियतमा क साप काम-  
प्राप्ता करत हूण शरीर पर मे वल्ल हट जान क कारण जब लजित हा जाती थी,  
तब मय उन गुफामा क द्वाग पर आच्छादित हाकर अधकार कर दता था ।'  
रति-भाव—मगवान् गच्छत न पावता का देसा और चन्द्रान्य क समान अधार  
हान (उमटने) पारावार का भाति कुछ कुछ अधार हो उठे । तब क्या था । उनक  
प्रेम न नयन विम्बापर मुन्दर पारता क मुख पर रट्ट रह कर पटन लग ।

आचाम विररनाय उदुदुद भाव स्थायाभास का भाव स्वीकार करत हैं  
अउ उनन अनुमार यहा शिव का पारता विपरक रतिमार अभिधन हा रहा है  
जिसस यदू मूर्ति भाषात्मक बन गया है और भाषात्मक बनन क कारण रमाभास  
बन स्वी है ।

यहा यह शक्य हो सकता है कि जब कि भयानक रग का भाति हा रिमा  
काति उ सयुक्त रयाति का एक धन सम्बन्धित आनन्द चमकार है तब प्रयत्न तथा  
अवस्थित यमिचाराभाव का प्रधान रूप म अभिव्यक्ति कैस सम्भव है ।

आचार्य विररनाय इसका स्वय उत्तर देउ हूण कहत हैं कि जैम शक्य मरिच,  
कपू राति का सम्मिथण आस्वात् प्रमानक का आस्वात् है वैम न विभावादि सम्बन्धित  
रत्नाति रूप स्थायाभास का आस्वात् रग का आम्वात् है रिन्दु कभा जैम प्रमानक  
क आम्वात् जब कल्लवा म रिता एक का आम्वात् उ कट रूप म प्रगत हान  
सकता है वैम हा यह ना सम्भव है कि कभा रम क न अभिव्यक्त तन्वा म रिमा  
एक का जैम कि व्याभिचारा भाव का हा आम्वात् उक्ति रूप म अनुभव किया तान  
लग । इस प्रकार कभा पृथगतया व्याभिचारा भाव का प्रधान रूप म प्रगतिय म कौर्  
आति कहौ ।

रमाभास -

रसा का अनुचितमण वणन रमाभास कहनावा है ।' यह अनौचित्य अनेक  
प्रकार का हाता है । आचार्य सम्भव क अनुमार उम अनौचित्य का निणय मद्दुदय  
पुदय का यवस्था क अनुमार हा हा सकता है । जैसे रति क विपर म अनौचित्य  
कई प्रकार का हा सकता है—एक स्त्रा क प्रति पुम्प का प्रेम वणन ता उचित है किन्तु  
अनक पुम्पा क प्रति रति वणन अनुचित है । रति वणन उभयगत (नायक नायिका)

हाना चाहिए, किन्तु यदि वह केवल आश्रयगत अथवा आलम्बनगत ही होगा तो वह रसाभास का स्थल माना जाता है। इसी प्रकार गुरु के प्रसङ्ग में हास्य का चित्रण, वीर पुरुष के सम्बन्ध में भय का ब्यथन, वीतरागी में करुणादि का बणन ये सभी रसाभास की कोटि में आते हैं।<sup>१</sup> आचार्य हेमचन्द्र ने निरिन्द्रिया तथा तियगादि में रस-भाव के आराप को रसाभास तथा भावाभास माना है।

रस एवं रसाभास के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। कुछ आचार्यों का मत है कि रसाभास को रसाभास की सजा प्रदान कर, पुन रस कहना अनुचित है। पण्डितराज जगन्नाथ का मत है कि 'रसाभास में अनौचित्य की स्थिति का अनिवाय है किन्तु रस को सबथा औचित्यपूर्ण तथा निर्मल माना गया है अतएव उसमें समानाधिकरण का भाव नहीं हो सकता। अर्थात् जिस प्रकार हेत्वाभास का हेतु नहीं माना जाता, उसी प्रकार रसाभास को रस कहना अनुचित है।'<sup>२</sup>

'पण्डितराज जगन्नाथ' अपने द्वारा उठाए गये इस प्रश्न का उत्तर स्वयं देते हुए कहते हैं कि, 'जिस प्रकार अनुचित होने पर भी किसी वस्तु के स्वरूप का नाश नहीं होता, अपितु उसका स्वरूप वही रहता है, उसी प्रकार रस में थोड़ा अनौचित्य होने पर भी उसको रसाभास भले ही कह दिया जाय किन्तु उसका स्वरूप विवृत नहीं होता। रसाभास रस ही है।'<sup>३</sup>

इसी मत का समर्थन करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि रसाभास का यह स्वरूप 'शुक्लरजताभासवत्' है। रसाभास का तात्पर्य यह नहीं है कि रस रहता ही नहीं बल्कि वहाँ दोष रहत हुए भी उसका भास बना रहता है।<sup>४</sup> विश्वनाथ ने आनन्दवर्धन मम्मटाक्षि के समान इसे रमध्वनि के अंतर्गत माना और उसकी रस-नीयता के कारण आम्वाद्योग्य कहा है। अतः जिन स्थलों पर रसाभास का बणन हुआ है, उन स्थलों में भी विद्वानों ने कायत्व स्वीकार किया है। उसे काव्य स्वीकार करने का एक मात्र कारण यहाँ है कि वहाँ दोष रहने पर भी रसास्वाद होता है। (दोष की प्रतीति बाद में होती है) रस्यते इति रस परिभाषा के अनुसार रस-भाव के आभास को भी रस तथा भाव मानना चाहिए।

वामन शलकीकर भी रसाभास को रसानुभूति की उत्तरकालिक स्थिति मानते हैं अर्थात् प्रथम क्षण में तो रस का ही अनुभव होता है उसके पश्चात् उचित

१ सा० द०, पृ० १७३

३ रसगमाधर पृ० ३३७

२ रसग० पृ० ३३७

४ सा० द० प्र० परि० पृ० १३

अनुचित का विचार करने पर रसाभास का ज्ञान होता है। अतएव रसाभास रस ही है।<sup>१</sup>

कालिदास के काव्य में रसाभास का चित्रण जहाँ भा हुआ है वहाँ उसका रसनायता अधुष्ण बना है। तुलाय सग में असमय में वस-वागमन के फलस्वरूप समस्त चराचर काम के प्रभाव से अभिभूत हो उठता है कवि त्रिपक का रति का वणन करता हुआ कहता है (काम से प्रभावित) भ्रमर अपना प्रिया भ्रमरी के साथ एक ही पुष्प की कटोरा में मकरन्द पान करा लगा। काला हरिण अपनी प्रिया हरिणा को सींग से छुनलान लगा जो उसके स्पर्श का सुख लेता हुई नेत्र बंद किए बैठे है। हयिना बड़े प्रेम से कमल पराग से सुवासित जल अपना स्रष्ट से निकाल कर अपने हाथों का पिलान लगा और चरवा भा अधमुक्त्र कमल नाभ का चकवा का भेंद करन लगा।

यहाँ पुष्प कटोरा में मकरन्द पान करना सींग से छुनलाना, नेत्र का बंद हो जाना, कमल नाभ भेंद करना इत्यादि अनुभाव हैं तथा हृष, मद, इत्यादि व्याभिचाराभाव हैं, इस प्रकार शृङ्गाररसाभास की यहाँ सफल व्यञ्जना हो रही है वस्तुतः शृङ्गाररस का वणन स्त्री-पुरुष के प्रसङ्ग में ही करना चाहिए क्योंकि उनमें ब्रौमन एवं मधुर भावनाओं का अनुभव करने का क्षमता होती है, पशु-पक्षियों में उसका वणन तो अतीचित्तम का विषय ही माना जायगा।

भावाभास —

भावा का अतीचित्तम अभिव्यक्ति'होन का भावाभास कहा जाता है। जैसे वैश्या में यदि कोई राज्ञा भाव का वणन कर तो वह भावाभास का विषय माना जायगा, क्योंकि कुलाङ्गना में तो लज्जा भाव का हाना आचित्तमपूर्ण है किन्तु वश्या में उसका वणन अतीचित्तमपूर्ण हो कहा जायगा।

अलौकिक सौन्दर्य के स्वामी शङ्कर जा बरात सहित हिमालय के नगर में प्रवेश करते हैं। शिव जी के अनुपम रूप का दर्शन के लिए पीर मुन्दरियाँ उतावली हो उठता है और जपन समा कायों का छाड़कर अरन-अपन प्रासाद में आ गड़ी होता है।<sup>२</sup> अथवा शापना के कारण एक स्त्री के केश पाश में बद्ध पुष्प का वणा छुन जाती है और वह उस हाथ से पकड़े हुए हो चर दत्री है बाधन का मुध नहीं गृहनी।<sup>३</sup>

१ काव्यप्रदीप टीका, पृ० १२२

२ कुमारसम्भव ३।३६

३ कु० सं० ३।३७

४ कु० सं० ७।५५

५ कु० सं० ७।५७

एक अप स्त्री दक्षिण नेत्र में अजना लगा चुड़ी थी किन्तु वाम नेत्र में बिना अजना लगाए हाथ में सलाई लेकर वातायन की ओर भागती है ।<sup>१</sup> एक दूसरी स्त्री में मणि-माल गूथते गूथते देवन के निमित्त वातायन की ओर भागन लगती है किन्तु स्वरावश उसके मणिमा के दाने बिखर जाने हैं केवल सूत्र ही अगूठे में ज्या का त्यो लगा रह जाता है ।<sup>२</sup> इस प्रकार चंचल नेत्र वाले मुख गवाक्ष में अति कुतूहल वश इतस्तत देखते हुए ऐसे लग रहे थे माना उन गवाक्ष का डानिया में भ्रमर युत कमल लगा दिए गए हैं ।<sup>३</sup> इसी समय चन्द्रमा की ज्योति को भी यगभूत कर देने वाले शङ्कर जी राजमार्ग में प्रवेश करते हैं और पीर मुदरियाँ अपना मुध-मुध खोकर इस प्रकार अनिमेष नेत्र से उनका रूप को देखन लगती हैं जैसे ममस्त-ईद्रवाँ उनका नेत्र में ही प्रविष्ट हो गई हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ नगर मुदरिया के अनुराग का चित्रण अनुभवगत होन के कारण माह चपलता, हर्ष इत्यादि भावा का आभास ही व्यक्त हो रहा है ।

भावोदय —

जहाँ किसी व्याभिचारी भाव का उदात्तवस्था ही चवणास्पद बन वहाँ भावोदय व्यक्त होता है । भावोदय में भाव की उत्पत्ति मात्र का ही वर्णन किया जाता है उस उत्पन्न भाव को देर तक ठहरने का अवसर देना चाहिए । अपने तप में विघ्न उपस्थित करन वाले कामदेव पर शिव को इतना अविश्रान्त थाया कि उनका भीहा के मय बाना नेत्र जो अदृश्य था अचानक घुन गया जाँ उसमें से सहसा अग्नि-ज्वालाएँ निकल पड़ी ।<sup>१</sup>

यहाँ 'जमर्ष' भावोदय व्यक्त हो रहा है ।

भावशान्ति—

जहाँ कोई प्रकारत यभिचारी रूप चित्तवृत्ति का प्रशमन हो जाता है वहाँ भावशान्ति या भावप्रशमन व्यक्त होता है । उस चित्तवृत्ति का आरम्भ हान ही नाश होना चाहिए तथा उसमें चमत्कार आयागा इसलिए पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं—  
उत्पत्तिकालावच्छिन्नभाव का नाश, सहृदय चमत्कारा हान से 'भाव प्रशमन' कहना जाता है ।<sup>२</sup>

१ कु०स० ७।५६

२ कु०स० ७।६१

३ कु०स० ७।६२

४ कु०स० ७।६४

५ रसग० पृ० १००

भावप्रगम की मुख्य व्यञ्जना रति विनाश में हुई है। जिसके विनाश में कामदेव के भस्मासूत हो जाते हैं परन्तु स्वप्न, अथवा सुषुप्ति रति प्राणास्रग के चित्र उद्यत होता है किन्तु जैसा अज्ञानर वरमन यानी यथा का प्रथम सूत्र सूत्र द्वारा तात्पर्य का व्याख्यान महतिमा का तात्पर्य प्रदान कर देता है वैसा ही अज्ञानर गुणार्थ पदा वाच्य आकाशवाणी प्राणास्रग के चित्र उत्तर रति पर मह श्रुता यथा करती है कि, योके हा दिना के परस्पर तुम्हारा पति में पुनर्मिलन होगा। मह गुणकर रति विचित आरम्भ होता है।

यहाँ शास्त्रों का तात्पर्य का वजन विनाश गया है। जिसका कारण पावता का विवाह विचित हो जाने के कारण सेना जना पुत्रा के स्तन में इतना जघार ही जाता है कि उक्त नय प्रयत्नपूर्ति हो जाता है परन्तु अज्ञानर उक्त जनाश वर के गुण गुणारथ प्रेषितम्ब करता है।

यहाँ व्यञ्जना का तात्पर्य का व्यञ्जना हुई है।

भाव-सिद्धि—

आचार अभिनवगुण के अनुगार जहाँ दो भावा का सिद्धि हो चक्षणात्मक बनती है—वही भाव सिद्धि व्यञ्जना होता है।

ब्रह्मचारी के वेश में उपास्यते भगवान् शङ्कर पावता का श्रुत जाता कटा मुनाउ है किन्तु वाच्य में जब वह अपना मयास रूप प्रकट करते हैं तो उसे देखकर वह स्तम्भ हो उठती है। उनके शरीर में स्वप्न प्रस्त्रवण होने लगता है और आगे चलने के लिए उठे हुए पैर, वही स्तम्भित हो जाते हैं। जिस प्रकार वाच्य में पदों के आगत पर नगी की धारा न आगे बढ़ पाता है और न पाये जा पाता है, उसी प्रकार वीनाधिराजकाया न अधसरित हो पाता है और न ही खड़ी रह पाती है।<sup>१</sup>

यहाँ 'सम्भ्रम और जन्ता इन दो भावा का सिद्धि व्यञ्जना हो रहा है।

रघुवश

भाव-व्यञ्जना—रघुवश में भाव व्यञ्जना के अनेक रमणाय स्थान प्राप्त होते हैं। प्रथम सग में महाराज विनाश अपना भावा सहित पुत्र प्राप्ति का प्रबन्ध आकाश में वसिष्ठ कवि के आश्रम का आर प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँचकर राजा दिनाश और भगवत् राजकुमारी सुदीप्तिणा गुण के चरण स्पर्श कर प्रणाम करते हैं और विनम्रता-पूर्वक कहते हैं—हे भगवन्! आपका अनुकम्पा से राज्य में सब प्रकार का सुख

ऐश्वर्य विद्यमान है। आप मन्त्रों के रचयिता हैं। आपके मन्त्र इतने शक्तिशाली हैं कि मुझे वाण चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।<sup>१</sup> हृषिकर्ता मुनि! आप जब विधिवत् अग्नि में हवि छाड़ते हैं तो आपकी आहुतियाँ अनावृष्टि से सूखे हुए घान के छेता पर जल वर्षण करने लगती हैं।<sup>२</sup> हे ऋषि! आपके ब्रह्मनेत्र के प्रभाव से मेरा, प्रजा मौ वर्ष तक जीवित रहती है, निभय तथा हृति इत्यादि विपत्तियों से निःशङ्क रहती है। ब्रह्मा पुत्र जब आप ही हमारे साम्राज्य कुलगुरु हैं तो हमारी सम्पदाएँ क्या न निरापद रहेगी।<sup>३</sup> किन्तु मन्तानहीन होने के कारण मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। इसलिए हे प्रभो! अब कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे पुत्र रत्न की प्राप्ति हो सके और मैं पितृऋण में मुक्त हो जाऊँ, क्योंकि इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की समस्त कठिनाइयाँ आपकी कृपा से ही सवदा दूर होती रही हैं।<sup>४</sup>

यहाँ मुनिविषयकरति का सुन्दर व्यञ्जना हुई है। राजा आश्रय है, ऋषि वशिष्ठ आलम्बन, पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा उदात्त विभाव है। वशिष्ठ के गौरव तथा महिमा का बचन अनुभाव है तथा विता, मोह, दैय, विपाद, इत्यादि व्यभिचारी भाव से मुनिविषयकरति की सफ़्त व्यञ्जना हो रही है।

देव-विषयकरति की वही ही सुन्दर व्यञ्जना दिलीप गौ-सेवा के प्रसंग में हुई है। वशिष्ठ की आज्ञा से महाराज दिलीप अपनी पत्नी सहित बड़ी श्रद्धापूर्वक नदिनी गौ की सेवा में सलग्न हो जाते हैं। प्रातः काल उठकर महारानी सुदक्षिणा पुष्प माला चन्दन इत्यादि से नदिनी की अचना करती हैं और यशोधनी राजा दिलीप नदिनी को लेकर घन वन में चले चल पड़ते हैं।<sup>५</sup> विरयात् सम्राट् हाते हुए भी महाराज नदिनी की सेवा निमित्त समस्त राजसी चिह्न का त्याग कर देते हैं। वन में वे नदिनी को हरी हरी घास खिलाते हैं शरीर को खुजलाते हैं, कीड़े-मकोने से उसकी रक्षा करते हैं और स्वेच्छा पूर्वक जिधर भी वह जाना चाहती है उधर जाने देते हैं।<sup>६</sup> जब वह खड़ी होती है, तो राजा भी खड़े हो जाते हैं। चलती है तो वे भी चल पड़ते हैं, बैठती है तो वे भी बैठ जाते हैं और जल पाने की इच्छा करती हैं तो राजा भी जल-पान करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक क्षण दाय्या के समान राजा उसका

१ रघुवंश १।६०

२ वही, १।६०

३ वही १।७२

४ वही, २।५

२ रघुवंश १।६१

४ वही, १।६४

६ वही, २।१



अनुसरण करने हैं।<sup>१</sup> निम्न मत वन म नदिना का सेवा करते हुए यन्त्रों का समय महाराज निम्न वनिष्ठ ऋषि व दन, श्राद्ध तथा आतिथ्य इत्यादि धार्मिक कार्यों का सम्पान्निवा नदिना के पादोपास्य सेवाका का ओर प्रायश्चित्त करते हैं।<sup>२</sup> आश्रम व द्वार पर पदचिह्न है, महाराजा गुर्गीणा अत्यन्त भाव भक्ति म हाथ म अनादादि सामग्रियों म, नदिना का अचना कर प्रदर्शना करता है और प्रणाम कर उगत विगत जन्मा व मध्य म यन्त्र इत्यादि इस प्रकार सजाता है माना बट पुन कामता छिद्रि का द्वार है।<sup>३</sup> नदिना कामागुहा होन पर ना राना का मया का प्रदूषण करने व निय रखा हा जाता है और नदिना का इस अनुष्ठाना का दगतर गुर्गीणा तथा निम्न बट प्रसन्न हा जात है। तन्परवान् वनिष्ठ तथा अरुभरा का चरण यन्त्रा कर निम्न पुन गा मया म उपर हा जात है। पत्ता स्थित राजा रानि म बरा दर तक नदिना का सेवा करते रहत है, उन बट मा जाता है ना व दाना भा शयन करने वन जात है और प्रातः काल बट उपाश सोतर उठता है उपाश बह दाता भी निद्रा त्याग कर दर है। इस प्रकार मन्मथराज निम्न भी सेवा करने हुए कठोर मय का पालन करते हैं।

यही दिवार तथा गुर्गीणा आश्रम है—नदिना आनन्दन। भी व पादोपास्य वन जाना, उनका सेवा करना तथा विधिवत् अथचना करना इत्यादि अनुभाव है। ह्य माहु इत्यादि स्थितितारा भाष है। इस प्रकार सद्व्यवसाय नदिना व प्रति राजा का रानि का मयन व्यजना हा रहा है।

पञ्चम मग म रघु का दातवृत्ति व प्रसन्न म मुनि विषयक रति का व्यजना दानाम है। वरतन्तु व निम्न योग व्यजना नि ता समाप्त कर मुद्र दर्शना के निय चीन्हा करार मय मुर्गी मायन रघु व पाय जात है। उहें दान हा उक्तवर्ती सम्राट रघु म सम्मानपूर्वक उपा आतिथ्य उपहार करा है और यान्त्र मुद्र आसन पर बैगत हैं। तन्परवान् वित्तप्रदापूर्वक बढावति हाकर कर्त है—त्रिय प्रगर मूय का निर्णय अ नगर म मुष्ट सम्भूष निरव का जगा रता है उपा प्रकार पान का ज्ञानि म प्रायका चैत्रय करने वान कृषिकर मन्त्रहृष्ट आरक मुद्र कुणन म व है न।<sup>४</sup> उद्धान मन, वाणा तथा बुद्धि म ता वगार वन करना प्रारम्भ किया था और जित दगतर मन्त्र भा सम्भूष हा उठा था—बह तर वा सप्ततन्त्रापूर्वक वन रहा

१ रघुवशा २१६

३ वही २१२१

५ वही, २१२४

२ रघुवशा २११५

४ वही २१२०

६ वही, ११८

है।<sup>१</sup> हृद्विजवर ! जिन वृषो को उहनि पुत्रवत् पाला था—वे तो सुरक्षित हैं न ?<sup>२</sup> हरिणियो वे छोटे-छोटे बच्चे तो कुशल स हैं, जिन्हें ऋषिगण स्नेह से खेलाते हैं और उन्हें एकत्र की हुई कुशा खाने का देते हैं। हाँ वे नदिया क जल तो सुरक्षित हैं जिसमें आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्या तपणादि सम्पन्न करते हैं और जिसके तटा पर आप लोग राजा का पष्ठाश समझकर अन रख छोड़ते हैं।<sup>३</sup> तिनी के जिस अन्न तथा फला को, जिसस आप लोग आतिथ्य सत्कार करने हैं और जो आप लोग के शरीर का साधन हैं—वय पशु आदि ता नहीं भक्षण कर पाते हैं।<sup>४</sup> हे द्विचक्षेष्ठ ! क्या ऋषि ने आपकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर गृहस्थ बनने की आज्ञा दे दी है।<sup>५</sup> आप जैसे पूजनाय महारमा के आगमन मात्र में ही मेरे हृदय का शांति नहीं मिली है इसलिए आप मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिये।<sup>६</sup> हे महात्मा ! यह तो बताइये कि आप स्वच्छा से आय हैं अथवा गुरु जाना से आकर मुझे कृताय किया है।<sup>७</sup>

यहाँ रघु आश्रय हैं तथा कौत्स आलम्बन हैं। गुरु के निपय में कुशल मझे पूछना अनुभाव है। हर्ष चिन्ता व्यभिचारीभाव हैं।

दशम सग में विष्णु-स्तुति व प्रसङ्ग में देव विषयक रति का बडा ही मन-मोहक स्वरूप प्राप्त होता है। रावण के भीषण अत्याचार से उन्पीडित देवगण भगवान् विष्णु की शरण में वैस हा जात हैं जैसे धूप से व्याकुल पथिक छाया वाले वृक्ष का शरण में जाता है।<sup>१</sup> दबताआ न दखा कि विष्णु भगवान् याग निद्रा से जागकर षेप शय्या पर लेट हुए हैं।<sup>२</sup> वस उचित अवसर जानकर देव अब उह प्रणाम करते हैं और स्तुति करते हुए भावपूर्ण स्वर स कहते हैं—विश्व का सृजन, पालन एव सहार करने वाले देव ! आपका पतण प्रणाम है।<sup>३</sup> जैन एक स्वादवाला वषा का जल विभिन्न देशों में वर्षण करने व कारण भिन्न स्वाद वाता बन जाता है। उसी प्रकार आप निर्विकार होत हुए भा सत्त्व, रज और तम तीनों गुणा के द्वारा जनक रूप धारण कर लेते हैं।<sup>४</sup> हे भगवन् ! आप कितन बट हैं, यह कोई नहा माप सकता

- १ रघुवश ५।५  
३ वही, ५।७  
५ वही, ५।६  
७ वही ५।१०  
६ वही, १०।५  
११ वही, १०।१७

- २ रघुवश ५।६  
४ वही, ५।८  
६ वही, ५।१०  
८ वही, ५।११  
१० वही, १०।७  
१२ वही, १०।१७

किन्तु आपन सब साक्षात् का मार लिया है, निम्नूह हात हुए भा आप सब का हृदय पूरा करने वाला है अत्रय हात हुए भा सब का जय करने वाला है अक्षय हात हुए भा इस स्पृह समार का व्यक्त करने वाला है।<sup>१</sup> हृदय ! विद्वाना का कथन है कि आप सवात्पर्यामा हात हुए भी जगन्म्य है निष्णाम हात हुए भा समन्वा है, दयानु हात हुए भा नित्यानन्द स्वरूप है पुराण कहनात हुए भा नवान है । आप गवण है किन्तु आपनो कर्त्तृ मत्ता जानता आप सर्वमानि क कारण है किन्तु आपनो कियान नही उत्पन्न किया आप सब क प्रभु है किन्तु आपनो कोद प्रभु नही है, आप एक रूप हात हुए भा समार क सब रूप धारण करने वाला है ( एकाहं बहुस्याम )<sup>२</sup> हृदयवामा ! विद्वाना का कथन है कि सामन्त क साक्षात् प्रकार क साक्षात् म आपन हा खेष्ट गुणा क गान विद्यमान है । आप हा साक्षात् समुत्त क तन म निवाग कर्त्त है, साक्षात् प्रकार की अग्नि आपन हा मुख है और समन्तक आपन हा आश्रित है।<sup>३</sup> आपन चतुमुखा म धर्माय काम तथा माण का पत्र दन वाला ज्ञान प्रादुर्भूत हुआ है और चारय मुर्गों क विभाजन का समय भा आपन हा निर्धारित किया है।<sup>४</sup> और चतुर्भु वणों वाला यह मसार भा आप द्वारा निर्मित है । यागजन प्राणायाम क द्वारा आपन हा ज्योति स्वरूप का सदैव अवेपण करते हैं।<sup>५</sup> हृदय भगवन् ! आप अत्रमा हात हुए भा जन्म ग्रहण करते हैं निराह होकर भा शत्रु संहारकर्ता हैं यागनिद्रा म लान रहत हुए भा नित्य प्रभु हैं । आपका यथाय स्वस्व्य कौन जान सकता है।<sup>६</sup> हृदय ! आप जन्म-जन्मांतर क बंधन म मोग दन वाले हैं । आपन स्मरण मात्र से हा प्राणा पवित्र हा जाता है फिर जा जायता दान चरण-स्पर्श तथा वाणा श्रवण कर ल उमक पुण्य का ता कहना हा क्या है ?<sup>७</sup> हृदय भगवन् ! विरव का कोद भा वस्तु आपक निग अप्रान्य नहीं है फिर भा आप जा जन्म ग्रहण करते हैं तथा कमरव हात हैं उसका एक मात्र यहा उद्देश्य है कि आप समार पर अनुग्रह करना चाहत हैं।<sup>८</sup> आरवा महिमा को प्रशंसा करके जा हम खुश हा गण उमका यह कारण नहीं है कि हम आपक सब गुण समान कर डालें अपितु हम श्रान्त हो गए हैं और आपे बालन की हमम शक्ति नहीं है।<sup>९</sup> दयताता का इस भावमाना स्तुति का मुनकर विष्णु भगवान् प्रसन्न हो जात है।<sup>१०</sup>

१ रघुवशा १०।१८

३ वही १०।२१

५ वही १०।२३

७ वही, १०।२८

९ वही १०।३०

२ रघुवशा १०।२०

४ वही १०।२२

६ वही, १०।२४

८ वही, १०।३१

१० वही, १०।३३

यहाँ देवतागण आश्रय हैं तथा विष्णु आलम्बन । देवताओं का विष्णु के पास गमन, उनके गुणों की प्रशंसा, महिमा का कथन इत्यादि अनुभाव हैं ।

मुनिविषयक रति का स्थल एकादश सग में प्रात होता है । राजा जनक के निमंत्रण को स्वीकार करने मुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण सहित जनकपुरी पहुँचते हैं । यह समाचार सुनकर जनक जो बड़ी प्रीतिपूर्वक उनका सत्कार करने के लिए पूजा की सामग्री को लेकर ऐसे चल पड़ते हैं माना धर्म के साथ जय और काम भी चले जा रहे हैं ।<sup>१</sup>

यहाँ जनक आश्रय हैं तथा विश्वामित्र आलम्बन । उनके आगमन का समाचार श्रवण उद्दीपन विभाव है तथा सामग्री सहित सत्कार के लिए जाना अनुभाव है ।

राजा विषयक रति की सुन्दर व्यञ्जना रघुवश के अनेक स्थला पर प्रात होती है । इच्छा से भा अधिक दान देने वाले महाराज रघु की अतिशय दानशालता से राम-राम गद्गद कीरत उनकी प्रशंसा करने हुए कहते हैं<sup>२</sup> हे राजन् ! धर्मात्मा राजात्रा के लिए पृथ्वी यदि उनकी इच्छानुसार धन प्रदान करे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं किन्तु तुम्हारा प्रभाव तो वास्तव में अचिन्तनाय है क्योंकि तुमने स्वर्ग से अभिलषित धन को प्राप्त कर लिया ।<sup>३</sup> हे राजन् ! भौतिक वस्तुओं के लिए आशीर्वाद देना व्यर्थ है, क्योंकि वे सभी तुम्हें उपलब्ध हैं फिर भी तुम्हें यह आशीर्वाद देना है कि जिस प्रकार तुम्हारे पिता का तुम्हारा समान श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हुआ, उसी प्रकार तुम्हें भी तुम्हारे जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त हो ।<sup>४</sup>

यहाँ कौत्स आश्रय हैं तथा रघु आलम्बन । अतिशय दान देना उद्दीपन है । रघु के माहात्म्य का कथन तथा आशीर्वाद का अनुभाव है हर्ष, व्यभिचारी भाव है ।

इस प्रकार महाराज अज के शर-मघात से ही तत्काल देवता का रूप धारण करने वाला गन्धर्व राजाकुमार प्रियम्बद, अज का प्रशंसा करता हुआ कहता है— हे देव ! मैं गन्धर्वराज प्रियदर्शन का पुत्र प्रियम्बद हूँ । मत्तङ्ग ऋषि के शाप के कारण मैं गज बन गया था ।<sup>५</sup> मेरा उद्धार केवल आप के द्वारा ही सम्भव होगा<sup>६</sup> ऋषि

१ रघुवश ११।३५

२ रघुवश ५।३२

३ वही, ५।३३

४ वही, ५।३४

५ वही ५।५३

६ वही, ५।५५

द्वारा यह उपाय जानन पर मैं जान शासक प्रथम दिन से ही आसका प्रतीत कर रहा हूँ। आज बड़े भाग्य से आपन जाकर मुझे शासक मुक्त किया है अतः इस उपकार के बदले यदि मैं आपका कोई इष्ट न करूँ तो मेरा यह शरीर लान-बय है।' हे राजन् ! मेरा पास यह सम्मान नामक गन्धवासन है, द्वारा कर आप इस ग्रहण काजिये। इसका प्रयोग करने पर आप अपने शत्रुओं का बिना हिंसा किए विजित कर सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप किंचित तज्जित हो रहे हैं किन्तु इसमें सज्जा का कोई विषय नहीं है क्योंकि बाण संचालन आनन्द मुक्त मारन का दृष्टि नही अपितु दया करने के लिए ही किया या इसलिये ही राजन् ! मेरा यह प्रार्थना आप स्वीकार करें।<sup>१</sup>

यहाँ प्रियम्बद आश्रय तथा राजा जानम्बन है। राजा द्वारा बाण संचालन उपायन विभाव है। प्रियम्बद द्वारा राजा के गुणों का प्रशंसा करना सम्मान जय दना दयादि अनुभाव है तथा हृष्य मन्वारा भाव है।

पुत्र विषयक रति का सुन्दर व्यञ्जना रघुवन्त के जनक स्थाना पर दृष्टि गात्र हाता है। बटोर व्रत के परिणाम स्वस्व मद्दाराज दिनाथ का पुत्र रत्न की प्राप्ति हाता है। तेजस्वा पुत्र का पाकर तिलाप और मुर्दा रणा उमा प्रकार हृष्य विभार ही उठते हैं जैसे कार्तिकेय का पाकर शङ्कर—याचना। राजा और राणा ममान रूप से रघु का प्यार करते हैं। जब बाणक रघु कुछ बड़े होत हैं तो घायल उन्हें जो कुछ सिखाती है उम व अपना नानना बाणा म जानन गान हैं उसकी जगुनी पकड़कर चतन लगत हैं मिर सुझाकर गुम्जना की प्रणाम करने लगत हैं। पुत्र का ये दाल तानाएँ दगकर राजा तिलाप हृष्य से पूत नही समाने और प्रसन होकर उनका अङ्क मे उठा लेत हैं। पुत्र के गान का स्वयं पाकर राजा के शरीर में माना अमृत की वषा हात लगती है और वे नवनिर्मालित कर बहुत दूर तक (पुत्र मुक्त) उसका आनन्द मन रहे जात हैं।<sup>२</sup>

यहाँ दिलाप आश्रय है तथा पुत्र रघु जानम्बन। पुत्र की वीजला बाणा प्रणाम करना चतना इत्यादि उदायन विभाव है। पुत्र को अङ्क में उठा लेना, प्यार करना, आनादिद्व हाता, नन बन्द कर लेना, इत्यादि अनुभाव है। हर्ष, आशय, मोह इत्यादि व्यभिचारी भाव है।

१ रघुशता ५।५६

२ रघुशता ५।५७

३ वही, ५।५८

४ वही ३।२३

५ वही, ३।२६

महाराज रघु अपन पुत्र अज से बहुत स्नेह करते थे । अज के युवक हो जाने पर रघु अपनी कुल परम्परानुसार पुत्र को राज्यभार सौंपकर वन जाने के लिए उद्यत होते हैं तो पिता से अत्यधिक स्नेह वरना वान अज उनके चरणा में सिर गुंकाकर प्रार्थना करते हैं कि, हे भगवन् ! आप मुझे अकेला छोड़कर न जाइये ।<sup>१</sup> पुत्रवत्सल राजा रघु, अज के नेत्र में अश्रुकणा को देखकर ठहर जात हैं किन्तु जिस प्रकार सप अपना कँधुनी छोड़कर पुन उसे ग्रहण नहीं करता उसी प्रकार नि स्पृह त्यक्त राजलक्ष्मा को पुन स्वीकार नहीं करते ।<sup>२</sup>

यहाँ आश्रय रघु है । अज के द्वारा विनम्र प्रार्थना और अश्रु-प्रवाह उद्दीपन विभाव है, रघु द्वारा उन्हें छोड़कर न जाना अनुभाव है । विपाद, मोह, संचारी भाव हैं ।

महाराज दशरथ भी बड़े पुत्र स्नेही हैं । एक क्षण के लिये भी पुत्रा का वियोग उनके लिए असह्य हो जाता था । जय विश्वामित्र अपन यज्ञ रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को याचना करने के लिए राजा के पास आत हैं, तो दशरथ बड़े जसमजस में पन जाते हैं । राजा विद्वाना के हस्तन भक्त थ कि पुत्रो का मुनि व साथ भेजना स्वानार कर लत हैं । पिता के वचना को साकार बान के लिए मुनि के साथ जात समय राम-लक्ष्मण पिता व चरणा का स्पश करने व लिए शुकते हैं तो दशरथ जो क नेत्रा स बलात् ही अश्रु प्रवाहित होन लगता है और व हस्तना अधिक राने लगते हैं कि उन दोना राजकुमारा का चूड़ाएँ आद्र हो जाती हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ दशरथ आश्रय हैं तथा राम लक्ष्मण आलम्बन । चरणो पर शुकना उद्दीपन है और अश्रु विमोघन अनुभाव । विपाद मोह संचारीभाव हैं ।

चीदह वष के बठोर वनवास का समय व्यतात करने के उपरांत राम सीता और लक्ष्मण सहित राजधानी अयो या मे पहुँचते हैं और आकर बड़े आदर से कौशल्या तथा भूमिनादि माताआ की चरण वन्दना करते हैं । पुत्रा को देखते ही दोना माताआ के नेत्र छत्रछत्रा उठन हैं । नेत्र बाष्पपूरित हो जान के कारण वे उह देव तो नहीं पावी किन्तु स्पश से इह पहचान जाती हैं ।<sup>४</sup> पुत्रा के जो अज्ञा का राशसो व शस्त्रा से दात विक्षत हो गये हैं, उह वे इस प्रकार स्पश करने

१ रघु.शंसा ८।१२

३ वही ११।२

५ वही, १४।२

२ रघु.शंसा ८।१३

४ वही, ११।४



दिलीप की एकनिष्ठ भक्ति स प्रसन्न नदिना मायायी सिंह का वेश बदलकर, प्राणत्याग के लिए सत्पर राजा दिलीप से कहती है—ह पुत्र उठो ! मैंने अपनी माया शक्ति द्वारा तुम्हारी परोक्षा ली थी । वशिष्ठ ऋषि व महत्प्रभाव से यमराज भी मेरा सबनाश नहीं कर सकता फिर जय हिंसक पशुआ की क्या शक्ति है ।<sup>१</sup> ह म्याधु ! गुरु के प्रति भक्ति तथा मुझपर जतिशय अनुकम्पा व कारण मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ । अत अपना अभिरूपित वर माँगा । तुम मुझे दूध दन वाली साधारण गौ न समझो अपितु प्रसन्न हो जाने पर इच्छित पत्र दन वाला साध्यान् कामधेनु समझो ।<sup>२</sup>

यहा भा नृप विषयक रति की व्यञ्जना हुई है । नदिनी आश्रय है दिलीप जानम्बन । उनकी जतिशय सेवा उद्गापन विभाव है । नदिनी का प्रसन्न हा जाना, वर प्रदान करना अनुभाव तथा हृप सचारीभाव है । या ( सपनतापूवक ) पूण हो जान पर स्नान कर महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण का प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हैं जिनक काकपक्ष प्रणाम करन समय शिथिल हा गये थे ऋषि कुशा से छिपी हुई अपनी हथेली उनके सिर पर रख कर उन पर अपना बडा म्नह दशाते हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ विश्वामित्र आश्रय, राम-लक्ष्मण जानम्बन हैं, उनके धीरतापूण साहस स यत्र समाप्त हो जाना उद्गापन विभाव है । विश्वामित्र द्वारा उह आशीर्वाद देना, अनुभाव तथा हृप माह, सचारा भाव हैं ।

प्राधायेन व्यग्य व्यभिचाराभावा का बडी मृ दर व्यञ्जना रघुवश के अनेक स्पला पर प्राप्त होती है । राजा दिलीप बडे दु खी होकर वशिष्ठ से कहते हैं— हे देव ! आपका महती वृपा हात हुए भी, आपकी इस वधू व गम मे मेर ममान तेजस्वा पुत्र नहीं हुआ अत रत्ना के उपश्र करन वाली तथा द्वापा तक पैला हुई यह पृथ्वा मुझे अच्छी नहीं लगती । अब मुझे ऐसा प्रताप हाता है कि मर पश्चात् मुझे काइ विण्ड देने वाला भा नहीं रहया । इसा दु ख के कारण हमार पितर मरे द्वारा प्रदत्त श्राद्ध क अन्न का भर पेट न खारर उसका भाग जाग क लिए एकत्र करन लग गये हैं । जत्र मैं तपण के त्रिए जल दान देने लगता हूँ ता मेरे पितर यह विचार कर दु ख से उच्छवासो लन लगत हैं, कि इसदे पश्चात् हम जल कौन दगा ?<sup>४</sup>

यहाँ विपाद चिन्ता भाव व्यग्य हो रहा है ।

१ रघुवश २।६१

२ रघुवश २।६३

३ वही, २।६३

४ वही २।६७



विवाद—रात्रि में जब काइ प्रणीप लेकर बसता है, तो जो जो राजमव पाछे धूँते जाते हैं, वे अंधकार में मुक्कर धुंधले पड़ने जाते हैं उसी प्रकार जिन-जिन राजाशा को छोड़कर इन्दुमता आगे बढ़ती जाती है उन उन राजना की मुखकान्ति विवण (उदाम) हाती जाती है। (वन में) राजा शिवाप के हाथ में धनुष दखकर भी हरिणियाँ भयभात नहीं हाती, अग्नि उनका मुँदर शरार को वे इस प्रकार अनिमेष नेत्रों से दखती रह जाते हैं, माना नत्रा वे बड़े हान का फल उन्हें प्राप्त हो गया है।<sup>१</sup>

यहाँ औरमुख्य भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

सिंह का वध करने के लिए दिलीप ने गया हा तरकश से बाण निकालना चाहा था ही उनका अगुलियाँ बाणा से चिपक गयी और चित्रलितित के समान निश्चेष्ट हो गए।<sup>२</sup>

यहाँ जड़ता भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

(इन्दुमता द्वारा अज्ञ का पति रूप में धरण कर लेने के पश्चात्) अज्ञ राजा प्रातः काल के वारा के समान अपना उदास मुँह लेकर अपने-अपने निवश में यह कहते हुए लौट गए कि जब इन्दुमता ही नहीं मिलती तो हम लोग का यह रूप और वप किस काय का।<sup>३</sup>

यहाँ गान्धि भाव का व्यञ्जना हो रहा है।

चिन्ताभाव—

जैस—महाराज जनक ने जब एक जोर श्रेष्ठ वश में उत्पन्न बालक राम के सुकीमल मात को देखा और दूसरा जोर कटोर धनुष पर दृष्टिपात किया जिसे कि बड़-बड़े धार यादा भी न थुका सके थे, तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने कया के विवाह के लिए धनुषमङ्ग का प्रस्ताव व्यर्थ में ही रमा।<sup>४</sup>

माग में जब दशरथ जी ने क्षत्रिया का नाश करने वाले परशुराम को अचानक आते हुए देखा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि उनके पुत्र अभी बालक ही थे।<sup>५</sup>

१ रघुदास २।११

२ रघुदास २।३१

३ वही, ७।२

४ वही, ११।३८

५ वही, ११।६७

(सीता द्वारा दी गयी) मणि को हृदय से लगाकर राम सुध-बुध खाकर मग्न हो गए और उनका नेत्र बंद हो गए। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा माना स्तन के स्पर्श को छोड़कर सीता जी ही साक्षात् उनके हृदय से आ लगी हा।<sup>१</sup>

‘यहाँ विवाध’ भाव की व्यजना हो रही है।

स्मृति भाव—

जैस—(राम सीता स कहते हैं) आज मुझे वे दिन स्मरण हो आए हैं जब मेघ गजन से भयभीत होकर तुम मुझसे लिपट जाती थी। हे सीते ! तुम नहीं समझ सकती कि मायवान् पवत पर ये पावस क दिन मैंने कितने कष्ट से व्यतीत किए हैं।<sup>२</sup>

देखो ! यह वही स्थान है, तुम्हें दूढ़ते हुए मैंने पृथ्वी पर पडा हुआ तुम्हारा नूपुर देखा था। इस समय ध्वनिविहीन यह इस प्रकार पडा हुआ है, मानो तुम्हारे चरणा से वियुक्त हो जान के कारण दुःख स शांत हो गया हो।<sup>३</sup>

वे दिन मेरे स्मृति-पटल पर साकार हो रहे हैं जब मैं एकांत म वेत की षोपडा मे तुम्हारे अङ्गुलि म सिर रखकर सोया करता था और गोदावरी का शीतल पवन मेरे मृगया परिशेद का अपनोदन करता था।<sup>४</sup>

आज बहुत दिना के पश्चात् पचवटी का देखकर मेरा हृदय कमल खिल उठा है। वह देखो ! मृग ऊपर सिर उठाकर विमान का देख रहे हैं। यही पर तुमने घटाम्बु से आम्रवृक्षा को सर्वाधित किया था।<sup>५</sup>

अज द्वारा सम्मोहन अत्र छोड़ने ही शत्रु राजाआ का सेना ऐसी मूट हा गया कि धनुष सचालन मे भा अवसमय हो गयी। उनके शिरछाण (पगडियाँ) बिखर गए और वह ध्वज स्तम्भ के सहार सा गए।<sup>६</sup>

यहाँ ‘निद्रा’ भाव की व्यजना हो रही है।

सुन्दर अज को देखने के लिए नगर की सुन्दरियाँ शीघ्रता से अपने-अपने कार्यों को छोड़कर अपन-अपन भवनों के परोखा की आर दौड पडी।<sup>७</sup>

यहाँ ‘चपलता’ भाव की व्यजना हो रही है।

१ रघुगश १२।६५

२ रघुगश १३।२८

३ वही, १३।२३

४ वही, १३।३५

५ वही, १३।३४

६ वही, ७।६२

७ वही, ७।५

## हृष-भाव—

जैसे कार्तिकेय समान पुत्र को प्राप्त कर शङ्कर-पावती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी, जयन्त को प्राप्त कर इंद्र और शची को प्रसन्नता हुई थी, वैम ही तजम्बा पुत्र को प्राप्त कर दिलीप और मुदन्धिना का अपार प्रसन्नता हुई ।<sup>१</sup>

राजा दिलीप, सिंह स प्रायना करत हुए कहत हैं— ह माई ! तुम भी दूसर क सेवक और बडे यत्न स इन देवदास का रक्षा कर रह हा । अब तुम यह भली प्रकार समझ सकत हो कि सेवक का जिसका रक्षा का भार सौंपा जाय यदि वह नष्ट हा जाए और सेवक जावित रह जाए ता वह अपने स्वामी क समझ किस मुह स जायेगा । यदि तुम किसी कारण स मेर ऊपर अनुकम्पा करना चाहत हा ता मर यश शरार का रक्षा करो । ह माई दखा ! परस्पर वातालाप हाने क कारण हम मिय हा गए हैं इमलिग तुम अपने मिय का प्रायना का न ठुकराओ ।<sup>२</sup>

यहाँ 'द्वै-य' भाव का व्यजना हो रही है ।

(सिंह दिलीप स बडे गव से कहता है) हे राजन् ! तुम मुझे मारन का प्रयत्न मत करा क्याकि मुच पर जा भा अछ चनाआगे वह व्यथ हा जायगा । दखो ! तात्र वेग वायु वृष्णा-मालिन ता कर मक्ता है किन्तु पवत का कुछ भी अनथ नहीं कर सकता । (मुझे तुम साधारण सिंह न समझना) मैं सधशक्तिशाला शङ्कर जा का वृषापात्र सेवक कुम्भादर नाम का गण हूँ और मिव क शक्तिशालागण निकुम्भ का मिय हूँ ।<sup>३</sup>

यहाँ गव भाव का व्यजना हा रही है ।

(स्वयम्बर म) अज इन्दुमती को समझ देवकर शङ्कित हो उठे कि यह मरा वरण करगी अथवा नहीं ।<sup>४</sup>

यहाँ 'शङ्का भाव का व्यजना हो रहा है ।

(अज इन्दुमती का विवाह सम्पन्न हो जाने पर) जिस प्रकार ताल क निमल जल क अदर भाषण घटियाल रत्न हैं उसा प्रकार ऊपर स प्रसन्न दिपाई पत्न वाले राजा मन हा मन क्षुभ हा जान हैं और व सब विदभराज का आना लकर उनक द्वारा प्रदत्त सामग्रा को भेंट क व्याज स लौटाकर अपन-अपन देश लौट जान हैं ।<sup>५</sup>

१ रघुदास २।२३

३ वही, २।३५

५ वही, ७।३१

२ रघुवश २।५८

४ वही ३।६८

यहाँ 'अमर्ष' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

राजाआ ने मिलकर पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि, जब अज इन्दुमती को लेकर (अपनी राजधानी का ओर) चलें तो उनसे सुन्दरी इन्दुमती को छीन लिया जाए इसलिए वे अज का माग धेरकर बीच में ही ठहर गये ।<sup>१</sup>

यहाँ 'मति' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

माग में डटे हुए राजा तो पहले ही से अज से जले बैठे थे क्योंकि कौशलपति रघु ने दिग्विजय में उनका सम्पूर्ण धन अधिवृत्त कर लिया था इसलिए इस समय वे यह (अपमान) न सह सके कि रघु-पुत्र अज हम लोगों के समक्ष स्वीरत्न इन्दुमती को लेकर चला जाए ।<sup>२</sup>

यहाँ 'असूया' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

(प्रिय पत्नी पर प्रजा द्वारा लगाए गए कलङ्क को मुनकर) राम मन में यह विचार करने लगे कि अब दो ही उपाय हैं । या तो प्रजा की बात अनसुनी कर उपेक्षा कर दूँ, या निर्दोष सीता का त्याग कर दूँ । उस समय उनकी चित्तवृत्ति इस प्रकार दोलायमान हो रही थी कि वे कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करणीय है क्या अकरणीय ।<sup>३</sup>

यहाँ 'वितर्क' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

जब कभी (अग्निमित्र के) उसके माथ बहुत देर तक सम्भोग करने के कारण स्त्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती थी तो वे उसके (अग्निवण के) वक्षस्थल पर लगे चन्दन को पोछती हुई इस प्रकार सो जाती थी माना वे सम्भोग का यह कण्ठ-सूत्र नामक आसन सजा रही हैं जिसमें स्त्रियाँ अपने प्रियतम के वक्षस्थल से लिपट जाती हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ 'आलस्य' और 'श्रम' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

मलय पर्वत से आये हुए दक्षिण पवन का स्पष्ट प्राप्त कर आमा में बौर छा गये जिन्हें देखकर प्रेमिकाएँ कामोन्मत्त होकर राजा (अग्निमित्र) से रूठना छोड़कर विरह में व्याकुल हो उठ स्वयं खोजने लगी ।<sup>५</sup>

यहाँ 'उन्माद' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

१ रघुकाश ७।३४

२ रघुकाश ७।३१

३ वही, ७।३४

४ वही, ११।३२

५ वही, ११।३४

अहर्निश भोग विनाम म लान रत्न म राजा का मयरोग हो गया और वह धीरे धीरे बदन लगा ।<sup>१</sup>

यहाँ व्याधि भाव का व्यञ्जना हा रहा है ।

अनक रानिया क हात हूय भा राजा पुत्र का मुँह न दख सका और वैद्य क अनक प्रयत्ना क पश्चात् भी—बापु क समथ प्रणय क समान राजा की राग म न बचाया जा सका ।

यहाँ मरण भाव का व्यञ्जना हा रहा है ।

रमाभाम—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अनुमयनिष्ठ रति हा आभाम का प्रयाजक बनती है । इन्दुमता-परिणय का महता आशाशा म दश दशांतर क तृप स्वयंवर म सम्मिन्तित हान क निण विम्भ दश म आत है । स्वयम्बर म उँह सादर मुन्दर मचा पर बैठाया जाता है । इसी समय ब्रह्मा की अपूव रचना राजकुमारा इन्दुमता स्वयम्बर मण्य म प्रवेश करता है । इन्दुमता क असाधारण मौन्य का देखकर सभा राजा टक्कटा लगाकर दखन लगत हैं और इस प्रकार उमका आर आरपित्त हा जात हैं, माना मन ता इन्दुमता क पास चना गया कवन शरार मात्र हा मञ्ज पर रह गया हा ।<sup>२</sup> अपन-अपन प्रेम का प्रकट करन क निण राजागण मत्र सचाननादि अनक प्रकार का शृङ्गारिक चष्टाएँ करन लगत हैं ।<sup>३</sup> काई राजा हाय म कमल लकर उमक नान को पककर कन्ने म लटका हूँ तया भुजगध म उतगा हूँ, रना की माना उठानर पुन उम कण्ठ म टाक स पदनन गता है)<sup>४</sup> तामरा राता भौह सचानन करता हूँ पेर का जँगुनिया का माकर उन जँगुनिया म स्वण पाठिका पर कुद निवन गता है ।<sup>५</sup> एक राजा सिंहासन क वामपार्श्व म भुजा टकरन समाप आसान मित्र स इस प्रकार वार्तानाप करन गता है कि त्पका बाया कन्ना उगमित हो जाता है और कण्ठ का माता भी पाठ पर त्क पटता है ।<sup>६</sup> एक दूसरा युवा नृप नखा क अग्रभाग स—जा प्रिया क निवम्बा पर विह्वल बनान क निय हा वन ये कतका का पशुहिया को नाचन लगता है जा किमा विनासा खा क शृङ्गार क किय

१ रघुवंश १६।४८

२ वही, ६।११

३ वही ६।१३

४ वही, ६।१५

२ रघुवंश १८।५३

४ वही, ६।१२

६ वही, ६।१४

कर्णभूषण रूप में कटे हुए थे ।<sup>१</sup> एक अन्य राजा अपनी हथेली में जो कमल के समान रक्त था तथा जिस पर ध्वजा की रेखाएँ अङ्कित थी, पाँसा उठालने लगता है । पुनः एक दूसरा राजा हाथ से अपने किरिट को ही बार बार ठोक करन लगता है ।<sup>२</sup>

यहाँ विभिन्न राजागण आश्रय हैं । इन्दुमता आलम्बन है उसका अपूर्व सौन्दर्य उद्दीपन विभाव है । राजाआ द्वारा की गयी विभिन्न शृङ्गारिक चेष्टाएँ अनुभाव हैं । चपलता, आवेग, औत्सुक्य, मोह, व्याभिचाराभास हैं । यहाँ राजाआ का रति उभयनिष्ठ न होने के कारण, रत्याभास की व्यञ्जना करा रहा है ।

पिता द्वारा चौदह वर्ष के वनवास की कठोर आना दन के पश्चात् राम, सीता लक्ष्मण सहित वन की ओर प्रस्थान करते हैं और अनक स्थला पर भ्रमण करते हुए अन्त में पंचवटी में निवास करते हैं । इस समय मदनानुरावण की भगिनी सूपणखा, राम के सौन्दर्य पर माहित होकर अपना मुवेश बनाकर उनके पास जाती है ।<sup>३</sup> पहले वह अपने कुल का परिचय देती है, पुनः सीता के समक्ष बहती है, 'हूँ राम ! मैं तुम्हें अपना पति मानती हूँ' बयोकि कामासक्त स्त्रियाँ को करणीया-करणीय का पान नहीं रहता ।<sup>४</sup> कामासक्त सूपणखा का बात सुनकर वृषस्कन्ध राम कहत हैं—मेरा विवाह हो गया है तू मेरे छोटे भाई के पास जा ।<sup>५</sup> वह शीघ्रता से लक्ष्मण के पास जाती है और लक्ष्मण कहत हैं—तू मर्गे माता के समान है अतः मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता ।<sup>६</sup>

यहाँ राम आलम्बन तथा सूपणखा आश्रय है । राम का मुदर रूप उद्दीपन विभाव । सूपणखा द्वारा राम के पास जाना, अपने कुल का परिचय देना, उह पति कहना, पुनः लक्ष्मण के पास जाना अनुभाव है । यहाँ सूपणखा की रति भा अनुभय-निष्ठ होने के कारण रत्याभास की प्रयाञ्जक बन रही है ।

(अतिथि के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर)—जैश शरद् ऋतु की निमल राता के तार ध्रुव के चारों ओर घूमत हैं वैसा हा नगर की स्त्रियाँ के प्रेम भर नत्र भी अतिथि पर लटक हो गए ।<sup>७</sup>

यहाँ वर्णित नगरस्त्रियाँ के रति ध्वनन में, अनुभयगत होने के कारण शृङ्गारभास की व्यञ्जना हो रही है ।

१ रघुशास १६।१६

२ रघुशास १६।१७

३ वही, १२।३२

४ वही, १२।३४

५ वही, १७।३५

भावाभास—

स्वयम्बर में इन्दुमती द्वारा वरमाना प्राप्त करने के पश्चात् महाराज अज अपना प्रिया इन्दुमती के साथ विवाह-मण्डप का द्वार प्रस्थान करते हैं। ज्यादा व राजमाग से जाने लगते हैं नगर का मुन्दरियाँ अज के अनुपम रूप का दर्शन करने के लिए अपन अपन भवना के चराख का द्वार दीख पड़ता है। उस शांतिता में एक स्त्री का वेगपाश धुन जाता है और उस बाँधन का उस मुख नहीं रहता और वह उम हाथ में पकड़े हा वानायन का जोर चन पड़ता है। एक दूसरी स्त्री पैर में महावर जगवा रहा था कि सहसा चन पड़ता है और इस प्रकार गवाय तर पैरों के छाप की पक्ति सा बन जाता है। एक तासरा स्त्री दक्षिण नेत्र में जङ्गल लगाकर वाम नेत्र में बिना लगाए हा चन पड़ता है। एक स्त्री अम्हा मणिमाल गूथ ही रहा थी कि अज को देखने के लिये चराख का द्वार भागता है जिससे सारा मणिपौ इतस्त्रत बिम्बर जाता है। इस प्रकार गवाया में उल्लुक्ता से शांतिता हुई मुन्दरियाँ के मुख भौरा से युक्तकमन के समान प्रतात हा रहे थे।<sup>१</sup>

वे तानय होकर इस प्रकार निनिमप नेत्रों से अज का दर्शन लगता है माना सभा इन्द्रिया नना में हा समाहित हा गयी हा। वे परस्पर वातालाप करता हुई कहती हैं—स्वयम्बर में जिस प्रकार लक्ष्मी ने नारायण का वरण किया था उस प्रकार इन्दुमती ने अज का वरण किया। हा सखा! स्वयम्बर के त्रिना एसा याग्य वर कैम मिल सकता है। यदि परस्पर स्पृहणाय शांता वाल धर्या इस मुन्दर जाड का मिलन न कराने तो इन दाना को मुन्दर वनान का प्रयत्न व्यथ हा जाता।<sup>२</sup> हा जानी! य दोना पूवजम में रति-कामदेव अवश्य रहे हागे तमा सहसा नृना के मय इन्दुमती न अज को प्राप्त किना है क्योंकि मन जमातर के सम्बन्धा का भना प्रकार पहचान ही नता है।<sup>३</sup>

(कुछ इसी प्रकार का वणन कुमारसम्भव में राजमाग से जाते हुए शङ्कर के प्रमद्व में मा हुआ है)

यहाँ चपलता आवग रूप माह औरमुख जडवा, इत्यादि भावा की व्यजना हो रही है किन्तु इनका वणन उभयगत न हान के कारण य भावाभास का कारण बन रहे हैं।

१ रघुमास ७।६

२ वही ७।८

५ वही, ७।११

७ वही ७।१४

२ रघुमास ७।७

४ वही ७।१०

६ वही ७।१२

८ वही, ७।१५

## भावोदय—

(सिंह द्वारा गौ को दबोच लिए जाने पर) सिंह के समान गति वाले, शरणा-  
गतरक्षक और बलपूर्वक शत्रुओं के सहारकर्ता राजा दिलीप क्रोध से लाल हो  
जात हैं और वे समझते हैं कि सिंह मेरा शरण मे लाई हुई गौ को मारकर मेरा  
अपमान करना चाहता है, वस शीघ्र ही वे उस सिंह को मारने के लिए तूणीर  
से वाण निकालने को हाथ उठात हैं। (जडीभूत हो जाने के कारण) मनुवश के  
शिरोमणि महाराज दिलीप अपनी दशा पर पहले ही विस्मय मे पड़े थे किन्तु  
जब यह सिंह मनुष्य की वाणी म बालने लगता है तो वे और आश्चय चकित हो  
उठते हैं।<sup>१</sup>

यहा 'विस्मय' भावोदय की व्यजना हो रही है। किन्तु तूणीर मे हाथ के  
बद्ध हो जाने से राजा निकट स्थित अनराधी पर प्रहार न कर सकने क कारण क्रोधा-  
ग्निभूत हो उठते हैं, और अपने तज से अदर ही अदर इस प्रकार जलने लगते हैं जैसे  
मन्त्रविधि से अवरुद्ध सप।<sup>२</sup>

यहा 'अमय' भाव का उदय हो रहा है। अयोध्यानिवासियों को कुश लव  
के गायनकौशल पर इतना आश्चर्य नहीं होता, जितना जब व दोनो (बालक) राम  
द्वांग प्रीतिपूर्वक दिये गये दान को नहीं ग्रहण करते, तब वे विस्मित हो उठते हैं।

यहा 'विस्मय' भावोदय की व्यजना हो रही है।

एक वार वृणविन्दु नामक ऋषि तप कर रहे थे। तपस्या से भयभीत हो  
इन्द्र उनका तप-भङ्ग करने के लिए हरिणी नामक अप्सरा का भेजते हैं। जैसे प्रलयकाल  
की लहर समुद्रतट को नष्ट कर देता है वैसे ही ऋषि का तप भङ्ग करने के लिए  
अप्सरा वहाँ जाती है। उसे देखते ही ऋषि कोधित हो उठत हैं और उसे यह शाप  
देत हैं—कि तू ससार मे मनुष्य की स्त्री हो जा।<sup>३</sup>

यहाँ अमय भावोदय की व्यजना हो रही है।

## भावशान्ति—

सिंह की गर्वोक्तिपा का सुनकर महाराज दिलीप को जब यह विश्वास हो गया  
कि भगवान् शङ्कर के प्रभाव के कारण ही मैं शर-संचालन न कर सका, तो उाक  
हृदय की आत्मग्लानि कम हो जाती है।<sup>४</sup>

१ रघुवश २।३३

३ वही, ५।८०

२ रघुवश २।३०

४ वही, २।४१



यहाँ 'म्लानि' भाव की शांति की व्यञ्जना हो रही है ।

इन्दुमती को समझ देखकर अज का उत्पन्न हुई शङ्का शात्र हा दक्षिण मुखा क फडकने के कारण दूर हो जाती है ।<sup>१</sup>

यहाँ 'शङ्का' भाव-शांति की व्यञ्जना हो रही है । विवाहोपरांत पुत्र वधुआ सहित महाराज दशरथ अपना राजधाना का आर लौट पढत हैं किन्तु माग म प्रताप-वायु तथा अपघ्नतुन घटित होने देखकर व चिंतित हो उठत हैं और अपने गुरु से शांति का उपाय पूछत हैं । गुरुजी कहते हैं—महाराज चिन्ता की कोई बात नहीं है—इसका परिणाम अच्छा होगा । यह सुनकर दशरथ जी को कुछ आनन्द होता है ।<sup>२</sup>

यहा चिन्ता —भाव 'शांति' की व्यञ्जना हो रही है ।

पृथ्वी द्वारा सीता का समाहित कर लिए जान पर राम पृथ्वी पर बड़े क्रोधित हो उठते हैं और पृथ्वी म सीता का वापस प्राप्त करने के लिए अपना शर सधान करत हैं । तसा समय ब्रह्मा जी जा सबविद थ, आकर राम का समझान हैं और उनक क्रोध को शांत करत हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ 'अमय' भाव की शांति की व्यञ्जना है ।

कृमुन्नाग द्वारा आभूषण हरण कर लिए जान के पश्चात् कुश सहसा क्रोधित हो उठत हैं और उसका बध करने के लिए गरुडास्र चढात हैं किन्तु शात्र हा कुमुद हाथ म आभूषण लेकर जन क आदर से निकल आता है और उस देखकर कुश धनुष पर स गरुडास्र उतार लत हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ भी अमय भाव शांति का व्यञ्जना हो रहा है ।

( तृणविट्ट नामक ऋषि तप म विप्र उतरत करने के कारण हरिणा नामक अप्सरा का शाप दत हैं ) शाप सुनत हा अप्सरा घबरा उठती है और ऋषि से क्षमा याचना करता हुई कन्ता है—ह भगवत् ! मैं परवश हूँ मैं पराधीन वृत्ति के कारण हा प्रतिक्रियाचरण किया है इसलिए मुझे क्षमा करें । यह सुनकर ऋषि का क्रोध शान्त हाता है और कहत हैं—जब तक तुम्ह स्वर्गीय पुण्य नहीं दिखाई पडेगे तब तक तुम्ह पृथ्वा पर हा रहना पडेगा ।<sup>५</sup>

यहाँ 'अमय' भाव शान्ति की व्यञ्जना है ।

१ रघुवश ६।६८

२ रघुवश ११।६२

३ वही, १५।८५

४ वही १६।८०

५ वही, ८।८१

राम दु खी कैकेयी से कहते हैं—माँ ! तुम्हारे पुण्यप्रताप से ही पिताजी उस सत्य से स्खलित नहीं हुए जिसमे स्वर्ग प्राप्त होता है । यदि तुम उनसे वरदान न माँगती ता, उनकी वर देने की प्रतिज्ञा असत्य हो जाती । यह सुनकर कैकेयी के माँ की आत्मग्लानि कुछ कम हो गयी है ।<sup>१</sup>

यहाँ लज्जा भाव की शक्ति की व्यञ्जना हो रहा है ।

### भावसन्धि—

राजधानी अयोध्या को लौटते हुए राजा दशरथ परशुराम के आने का समाचार सुनते हैं । कवि कहता है—जैसे कण्ठ के हार और सप दाता मे रहन वाली मणि आनन्द भा देती है और भय भी, वैसे ही अपने पुत्र और परशुराम दोनों म आए 'राम' नाम से उह भय हुआ आनन्द भा ।<sup>२</sup>

यहाँ 'भय और 'हृष' दो भावा की सन्धि का वर्णन होने से भावसन्धि है ।

### मेघदूत—

#### भाव-व्यञ्ज—

मेघदूत म यत्र-तत्र व्यग्य भावो के सु दर तथा मार्मिक चित्र प्राप्त होते हैं । कुवेर की कठोर आना से निवसति यक्ष का प्रिया की मधुर स्मृति व्याकुल बनाये दे रही है । प्रिया के बिना जो यक्ष एक क्षण भी न रह पाता था अत्र वही प्रेमी प्रिया से बहुत दूर दशांतर मे स्थित है । अभी वह अपन शाप की अवधि व्यतीत ही कर रहा था कि आषाढ के प्रथम दिन उमड़ते मेघ का देखकर चकित रह जाता है । मन म प्रेम उदीप्त करने बाल उन मेघखण्डा को देखकर, वह अपन अश्रुभा को रोक्कर ज्या का त्या बहुत देर तक खडा ही रह गया ।<sup>३</sup>

यहा 'जन्ता' भाव व्यग्य हो रहा है ।

मेघ को देखते ही यक्ष विचार करता है कि अपना के पश्चात् श्रावण आयेगा और उस समय मेरी प्रिय पत्नी मुझे समीप न पाकर निश्चय ही जावन का त्याग कर देगा । इसलिए उसने सोचा कि अपना प्रिया का धैर्यसिलम्ब कराने के लिए तथा उसका प्राण रक्षा के लिए मैं क्या न इन वादनों के हाथ ही अपना कुशल समाचार भेज दूँ ।<sup>४</sup>

१ रघुवंश १४।१६

३ पृ० मे० ३

२ रघुवंश ११।६०

४ पृ० मे० ४

यहाँ 'चित्ता' एव 'चित्त' भाव का व्यजना हो रही है। यश विद्याम म इतना असहाय हो गया है कि उसकी विवेकशालता पूणतया नष्ट हो गयी है। प्रिया को सन्देश प्रेषण का उत्सुकता एव व्यग्रता में उसे चेतन और अचेतन का भी ध्यान नहीं रहता। प्रकृतितृपणाश्चतमाचननपु तथा औरमुक्तापरिणयन् इन दोनों वाक्यों में 'भ्रम एव आवेग' भाव का व्यजना हो रही है।<sup>१</sup>

यश मध म कहता है—हे मध ! सत्तार क सन्तप्त प्राणिया के एवमात्र तुम हा तो शरण हो, इसलिए हे प्यार ! कुवेर क क्रोध से विश्लेषित और प्रिया से दूर स्थित मुख वियुक्त का सन्देश तुम्हा मरा प्रिया क पान पहुँचा दो।<sup>२</sup>

यहाँ 'दे-य' भाव व्यक्त हो रहा है।

'औ-मुक्त्य भाव' का चित्रण बड़ मामिक ढङ्ग से व्यक्त हुआ है—जब तुम वापु पर पैर रखकर ऊपर चढ़ागे तब पथिक वनिताए अपना पलके उठा उठाकर बड़े विश्वास क साथ जाशवासन पाकर तुम्हारी आर एकटक देखगा, क्योंकि मूढ़ जैसे पराधान को छाड़कर कौन ऐसा निदया है जो तुम्हें देखकर विद्याम म व्याकुल अपनी पत्नी से मिलन क लिए उतावला न हो उठे।

'हे मध ! सहलहा वेता स प्रापूण जब इस पहाडा म तुम उडागे ता तब तुम्हारा उडना देखकर सिद्धा का भोलीभाला स्त्रियाँ किंचित चकित हाकर आँसू फाड फाडकर तुम्हारा ओर देखती हुई साँचेंगी कि कहाँ पहाड की चोटी को ही ता पवन नहीं उडाए लिए जा रहा है।<sup>३</sup>

यहाँ 'विस्मय' भाव का व्यजना हो रहा है।

यश मध म कहता है ऊपर ही ऊपर जन बिन्दुओं का ग्रहण करने वाले चानका को देखने वाली तथा श्रेणिया में उडते हुए वगुनों का गिनन वाली सिद्धो का प्यार त्रिपाँ जब तुम्हारा गजन मुनकर शोधना स घबराकर अपने प्रिय के कण्ठ स लग जायेंगी, तब व सिद्धगण तुम्हारा बडा भला मनायेंगे।<sup>४</sup>

यहाँ 'प्राप्त' भाव का व्यजना हो रहा है।

विद्यामभाव—'हे मध ! दखो निर्विद्या नदी की धारा तुम्हारी विद्योग-वेणी के समान बृथा हो गया होगी और तट के पातवण पत्ता क शब्द शब्दकर गिरने स

१ पू० मे० ५

२ पू० मे० ७

३ वही,

४ वही, १४

५ वही, २३

उसका रङ्ग भी पीला पड़ गया होगा । इस प्रकार वह अपनी वियोग दशा दिखाकर यह वता रही होगी कि हे मेघ ! मैं तुम्हारे वियाग में वृषा होती जा रही हूँ ।<sup>१</sup>

अमय भाव—जैसे कनखल में हिमालय से अवतरित हुई गङ्गा जी मिचेली जिन्होंने सोपान बनाकर सगर क पुत्रा को स्वर्ग पहुँचा दिया था । उनकी स्वच्छ केन युक्त धारा ऐसी प्रतीत होती है माना वह केन की हँसी से खिल्ला उडानी हुई पावती जी का निरादर कर रही हा जा ईर्ष्या से गङ्गाजा पर भौह तरर रहा हो और गङ्गाजी के लहर रूपी हाय चन्द्रमा पर रखकर शिवजी क नशग्रहण कर पावती को यह वता रही हो कि तुमसे बढकर चन्द्रमा मेरी मुटठी में हैं ।<sup>२</sup>

हे मेघ ! (अलकापुरा में) प्रेमा लोग चाल हाथा से अपनी प्रियाआ के काम-वश गाठ खोल देने स ढीले पडे रेशमी वस्त्र हटान से लज्जा से वे इतनी अभिभूत हो जातीहैं कि (बुद्ध पाकर) मुट्ठी में गुलाल भरकर हो, जगमगाते हुए रत्नदीपा पर फेंकने लगता हैं, और उनका सारी चेष्टाएँ व्यथ हो जाती हैं ।<sup>३</sup>

‘यहा ‘लज्जा’ भाव की व्यजना हो रही है ।

हे मेघ ! वायु क झाके से मघलण्ड सतमजिले भवन के ऊव्वभाग में प्रवश कर वहाँ के चित्रो को अपन नव जलकपो से नष्ट कर फिर शङ्कित सा होकर धूम्र के समान शोघ्रता से निकलने में चतुर, टुकडे-टुकडे हावर क्षराखो से निक्ल भागते हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ ‘अपलता’ भाव की व्यजना हा रडी है ।

यह अपने शृह में स्थित क्रीडापथत का वणन करता हुआ मेघ से कहता है—( मेरे घर के ) उस ( बावला ) क किनार सुन्दर इन्द्रनीलमणियो से निर्मित शिखर वाला तथा मुनहरे केले से वेष्टित होन क कारण देखा मैं सुन्दर क्रीडा पवत है ।

हे मघ ! वह पवत मरी शृहणी को अत्यन्त प्रिय है इसलिए चमकती हुई विजता वाले तुम्ह देखकर मरा चित्त उदास हो जाता है और मैं उस पवत का स्मरण करन लगता हूँ ।<sup>५</sup>

१ पू० मे० ३१

२ पू० मे० ५४

३ उ० मे० ७

४ उ० मे० ७

५ उ० १७

हे मघ ! ( मेरे घर में ) वृक्षा के मध्य में कुछ कुछ पत्ते हुए बाँध की काँति वाली मणियाँ से निचले भाग में जटित एक स्फटिक से निर्मित ऊपरी भाग वाली एक सुनहरी बैठने का यष्टि है । जिसमें कंगना की शङ्कार से मनाहर तालियों से मेरी प्रियतमा द्वारा नतित तुम्हारा मयूर मित्र दिन के अवसान में आकर बैठा करता है ।

यहाँ 'स्मृति' भाव की व्यञ्जना हो रहा है ।

ह सज्जन ! हृदय में निहित इन लक्षणा से द्वार के दोनों ओर चित्रित शङ्ख और पद्म देखकर तुम मेरे भवन को पहचान लोगे जो इस समय मेरे वियोग में निश्चय ही कान्तिहान हो गया होगा क्योंकि सूय के अस्त हो जाने पर कमल अपनी शोभा को निश्चय ही नहीं धारण करता ।<sup>१</sup>

यहाँ विपाद भाव की व्यञ्जना हुई है ।

ऋतुसंहार

भावादि व्यग्य—

ऋतुसंहार में स्वतंत्र रूप में भावा का वणन प्रायः नहीं मिलता । कहीं-कहीं ऋतुआ तथा अनुभावों के माध्यम से ही उनकी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है । अतएव हम उन्हें केवल भाव मात्र ही कह सकते हैं । कुछ भावों का वणन इस प्रकार है—

दूर देश में गए हुए जिन प्रमियाँ का हृदय अपनी प्रमियाँओं के वियोग की तपन से पुलस गया है, वे आधा क चाँका से उठी हुई धूल के धवण्डरा वाला तथा कड़ा धूप का लपटा से तपी हुई धरती की जोर देवत हैं तो उनसे देखा नहीं जाता ।<sup>२</sup>

यहाँ 'देय' भाव का व्यञ्जना हा रही है ।

हृय भाव—

जैसे वन में चारा छोर विकसित कण्ठ के पुष्प ऐसे लग रहे हैं माना वषा व नवीन जल से गर्मी दूर हो जाने से सारा वन मग्न हो उठा है । पवन में झूलती हुई शाखाआ का देखकर ऐसा लगता है माना पूरा जगत् अपन हाथ मटका-मटका कर नृत्य कर रहा हो और कतकी की उज्वल कलियों को देखकर ऐसा लगता है माना सारा वन खिलखिला कर हँस रहा हो ।<sup>३</sup>

१ उ० मे० १६

२ उ० मे० २०

३ ऋ० स० १११०

४ ऋ० स० २१२४

देशान्तर गए हुए लोगों की स्त्रियाँ अपने त्रिम्बफल जैसे लाल और नई कोपली जैसे कोमल होठा पर अपनी कमल जैसी आँखों से अश्रु विमोचन करती हुई, अपनी माला, आभूषण, तेल, उबटमादि—सब कुछ त्याग कर गाल पर हाथ रख कर बैठी हैं ।<sup>१</sup>

यहाँ 'विपाद' भाव की व्यञ्जना हा रही है ।

पति के विदेश गमन करने के बाद मृगनयनी स्त्रियाँ जब सूखे हुए भाग को देखती हैं, तो देशांतरस्थित अपने दु खी पतिप्रा की प्रतीक्षा करती हुई यह सोचती हैं कि जब हमारे पति आयेंगे तो हम इस प्रकार बातें करेगे, इस प्रकार उनमें रुठेंगे ।<sup>२</sup>

यहाँ 'चिन्ता', 'विनय' भावा का व्यञ्जना हो रही है ।

बादलों का धार गजन मुनकर और विद्युत् की कड़क से चौकी हुई स्त्रियाँ, साने समय अपने अपराधी पति से भी लिपट जाती हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ 'त्रास' भाव की व्यञ्जना हो रही है ।

(वसत मे) काम से स्त्रिया अलसा जाती हैं, मद स उनका वादना और चलना भी कठिन हा जाता है और उनक टेढे भ्रूविक्षेप बडे तीक्ष्ण लगते हैं ।<sup>४</sup>

यहाँ 'जानस्य' भाव की व्यञ्जना हा रही है ।

रसाभास—

वपान्तु का वणन करता हुआ कवि कहता है—दया । सदैव मीठी बोली बालन वाले, गजन करते हुए बादला की शाभा पर तमय हाकर उठने वाले, अपन पद खोलकर पैमान स सुन्दर लपल वान, ये मयूरा के युण्ड, शीघ्रता से अपनी प्यारी मारनियों को गल लगात हुए तथा उनका चुम्बन करते हुए, आज नृत्य कर रहे हैं ।

यहा मार आशय और मोरनियाँ आलम्बन हैं । मोरा द्वारा अपनी मोरनिया का बालिङ्ग करना, चुम्बन करना अनुभाव हैं तथा ह्य-चपलता व्यभिचारोभाव हैं । इस प्रकार यहाँ मोरो की रति का वणन हुआ है किन्तु कायशास्त्र म त्रियगादि के रति रू । वणन वर्जित होन स यहाँ रसाभास की व्यञ्जना हो रही है ।

१ ऋ० स० २।१२

३, हीव २।११

५ वही, २।६

२ ऋ० स० ४।१०

४ वही, ६।१३

## चतुर्थ अध्याय

# अलंकार व्यञ्ज

अलङ्कार का प्राधान्य स्थिति रहने पर अलङ्कार ध्वनि काय होता है। जैसा कि अभा कहा गया है कि ध्वनि-सम्प्रदाय व अनुस्यार सारा अलङ्कार प्रपञ्च काव्य क वाच्य वाचक भाव पर ही आधारित है। अथालङ्कार अभिधान के विभिन्न प्रकार हैं। ध्वनिवादा आचार्यों ने जिस प्रकार काव्य में तीन गुण मानकर गुणा की सख्या निर्धारित की है, उसी प्रकार अलङ्कार की सख्या का व कोई भी सीमा निर्धारित न कर सके क्योंकि अलङ्कार तो केवल उक्ति क प्रकार हैं। अतएव जितनी ही कवयन शैलियाँ सम्भव हो सकती हैं उतनी ही अलङ्कार प्रकार में सम्भव हैं।<sup>१</sup>

ध्वनिवादी अलङ्कार का काव्य में चास्त्व-हेतु मानता है,<sup>२</sup> किन्तु यह चास्त्व हेतुता किस प्रकार में काव्य में उत्पन्न होता है इस सम्बन्ध में इन आचार्यों का अपना स्वतन्त्र मत है। इनके अनुसार तो समस्त सौन्दर्य व्यङ्ग्य-व्यञ्जकता में निहित है। अतएव काव्य में जो भी चास्त्व स्थानाय हगि व समी या तो व्यङ्ग्य की या व्यञ्जकता का चास्त्व व हेतु हगि तथा ध्वनि सौन्दर्य का अभिवृद्धि करेंगे। काव्य की आत्मा व्यङ्ग्य है, और शरीर है व्यञ्जक शब्द और अर्थ। परमाधत जिस प्रकार मानव व अङ्गा में धारण किये गये अलङ्कार पूरे अङ्गा की शोभा का वधन करते हैं, ठाक उसी प्रकार काव्य में अङ्गभूत रस व्यङ्ग्य व ही सौन्दर्य का वधन करते हैं।<sup>३</sup>

प्राचीन भाषाह इत्यादि अलङ्कारिका में जिन अलङ्कारों का विवेचन किया है उन्हीं अलङ्कारों की व्यङ्ग्यत्वं प्रधान रूप दकर ध्वनिकार में उन्हीं उच्चता व आसन पर अधिष्ठित किया है। ध्वनिकार का यह प्रथम संवत्था शोधनीय एवं नवीन है। जो उपमादि वाच्यालंकार कटककुण्डल स्थानाय हान व कारण काय के शरीर-रूप

१ काव्यालंकार १४०

२ ध्व० पृ० २२३

३ का० प्र० ८१७

भा नहीं बन सकते थे, वे ही व्यंग्यता को प्राप्त कर काव्यात्मा बन परमसौन्दर्य को प्राप्त हो जाते हैं ।<sup>१</sup> वाच्यार्थ को सज्जित करने के कारण जिन उपमादि अलङ्कारों की अलङ्कारता संयत्त्व सिद्ध होती है, व हा उपमादि अलङ्कार ध्वनि काटि (व्यंग्य रूप) में आ जाने के कारण अलङ्कार न होकर अलङ्काय बन जाते हैं । अलङ्काय रूप बनमान रहने पर भी उन्हें नामत ( द्राक्षणाश्रमणमायेन ) अलङ्कार ही कहा जाता है ।

ता सलपत्रमध्वनि व अन्तगत अनङ्कार-ध्वनि तथा वस्तु ध्वनि आता है, क्योंकि इनमें वाच्य एव व्यंग्य का क्रम लीति हाता र्त्वा है । इन दोनों के पुन दा भेद किए गए हैं—शान्शक्तिमूलअलङ्कार ध्वनि तथा अर्थशक्तिमूल अलङ्कार-ध्वनि । ध्वनिकार शब्द शक्ति-मूल में केवल अलङ्कार व्यंग्य का ही स्वाकार करते हैं, उनका अनुसार जहाँ वस्तु रूप अर्थांतर की प्रतीति होगी—वह श्लेष का विषय होता है, वस्तु व्यंग्य का नहीं ।<sup>२</sup> किन्तु मम्मट शान्शक्तिमूल के अन्तगत अलङ्कार ध्वनि तथा वस्तु ध्वनि दोनों मानते हैं । उनके अनुसार वस्तुव्यंग्य का प्रकाशन होने पर जहाँ एव अर्थ का अभिधा द्वारा नियमन हो जाता है वहाँ दूसरा अर्थ व्यंग्यमान होने से वस्तु ध्वनि का विषय बन जाता है ।

कालिदास की काव्य वृत्तियां में शब्द शक्ति मूल अलङ्कार-व्यंग्य के स्थल विरल हैं । इसमें शाब्दिक चमत्कार के माध्यम से ही कवि अलङ्कारांतर या वस्तुांतर की प्रतीति करवाता है । कालिदास इस प्रकार के चमत्कारवादी कवि नहीं हैं उनके काव्य में शब्दालङ्कारों का चमत्कार प्रायः नहीं दिखाई पड़ता । रघुवंश के नवमसर्ग में उन्होंने यद्यपि यमक का प्रयोग किया है किन्तु स्थान इतना सरस है कि अपना प्रतिभा से कवि ने उस यमक के माध्यम से अपना काव्य की उत्तमता (ध्वनित्व) तथा सरसता को अक्षुण्ण बनाए रखा, अथवा यमक में काव्य निश्चय ही नीरस हो जाता ।

अनुप्रास उनके काव्य में सहज रूप में ही आया है—प्रजा प्रजानाम् पितव पासि । 'मनुष्य वाचा मनुवंश वतु' इत्यादि । इसलिये उनके काव्य में शान्शक्ति मूल अलङ्कार-ध्वनि का विवेचन नहीं किया जायेगा ।

अर्थशक्तिमूलक-अनङ्कार—ध्वनि वहाँ होती है, जहाँ वाच्य अर्थ का व्यजना-शक्ति के द्वारा अलङ्कार-व्यंग्य होना है ।<sup>३</sup> अलङ्कार-ध्वनि तभी हागी, जब व्यंग्य-

१ ध्व० २।२८

२ ध्व० पृ० २३५

३ ध्व० २।२५



अलङ्कार ही मान्यमूल रहे—अर्थात् प्रधान रूप में स्थित रहे क्योंकि वेग तो स्वयं, धातु, ति इत्यादि मान्यमूलक अलङ्कारों में उपमानलङ्कार व्यंग्य होता है, किन्तु वहाँ उपमा प्रधान न होकर वाच्य रूप की अलङ्कारों का उपकारक हान के कारण गुणीमूल ही जाता है। व्यंग्य अलङ्कार यदि वाच्य अलङ्कार अथवा वस्तु के व्यंग्य रूप में रहता तो उद्यत् गुणामूल व्यंग्यता ही माना जायगा। इयानिण जहाँ अलङ्कार वाच्य का गुणागणन होकर प्राधान्य स्थित रहता है, वहीं अलङ्कार-वाच्य होता है।<sup>१</sup>

जैसा कि प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि अपभ्रंशमूल-अनुरूपन रूप व्यंग्य भी दो प्रकार का होता है—(१) कविप्रौढातिमात्र निष्पन्न शरीर अथवा कविनिबद्ध कवच प्रौढातिनिष्पन्नशरीर (२) स्वयं गम्भवा।

मम्मट ने इनको अलग अलग मानकर अर्थात् अलङ्कार के तान भेद माने हैं। और उनके वस्तु एवं अलङ्कार दो प्रकार हान में छ भेद किये हैं।

कविप्रौढातिगिद्ध वस्तु में अलङ्कार व्यंग्य—

कुमारसम्भव में पावता के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—  
 चञ्चल शोभावाता लम्बा बड़ा मुखिया में पटा रूता या क्याकि रात में जब व चन्द्रमा में पहुँचता था तब उन्हें कमल का आनन्द नहीं मिलता था और दिन में जब कमल में पहुँचता था तब उन्हें रात के चन्द्रमा का आनन्द नहीं मिल पाता था किन्तु जब स व पावती के मुख में आ बसा है तब स उन्हें दाना का आनन्द मिलने लगा है।<sup>२</sup>

यहाँ उपमान मूल कमल और चन्द्र का अपना पावता मुख के उरूप का कथन होने से व्यतिरेक अलङ्कार व्यंग्य है।

कवि प्रौढाति सिद्ध अलङ्कार में अलङ्कार व्यंग्य—

पावता का लक्षणा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है— जाड़ का उन राता में जल के ऊपर पावता जा का मुख मात्र लिंगाई पडना है। जाड़ से उनके हाठ कापठ हैं और उनका स्वाम से कमल का मुख के समान जा मुख निरालता है उसका मुखि चारा आर देन जाता है। उस समय जल में पडी वे एसा लगती हैं माना पाल से मारे हुए कमला के जल जान पर भा उनके मुख कमल ने उस सरोवर को कमलपुक्त बनाए रखा हो।<sup>३</sup> यहाँ पावता का मुख कमल, जल-कमला की अपेक्षा खेळ है यह अभिप्राय होने से व्यतिरेक अलङ्कार व्यंग्य हो रहा है।

१ छ० २।२७

२ कुमारसम्भव ५।४३

३ कुमारसम्भव ५।२७

स्वत सम्भवी अलङ्कार से अलङ्कार व्यग्य—

मुन-दा अङ्गदेश क राजा का परिचय देती हुई कहती है (इहंनि जिन राजाओ को युद्ध मे मार डाला) उनकी स्त्रिया ने अपने पतियों के शोक मे मोतिया के हार तो उतार फेंके, पर उनके स्तना पर गिरती हुई आँसुओ की बूँदे बडी-बडा मोतिया के समान लगती हैं, उ-ह देखकर ऐसा लगता है, माना शत्रुआ की स्त्रियों के कण्ठ से हार उतारकर उ-ह बिना डोरे वाला हार पहना दिया हा ।<sup>१</sup>

यहाँ अथुविन्दु तथा मुक्तापलों में साम्य दिखलाकर फिर अतिशयोक्ति द्वारा उसमे अभेद प्रतिपादित कर बिना डोरे वाला हार पहना दिया हो 'इस कथन मे विभावना, विनोक्ति का निर्देश किया गया । इन अलङ्कारो से उत्प्रेर्या अलङ्कार व्यग्य हो रहा है ।

उपयुक्त अलङ्कारो की व्यग्यता का उदाहरण केवल एक बानगी क ही रूप मे प्रस्तुत किया गया है । इसका प्रमुख कारण यह है कि महाकवि की कृतियों मे प्रधानेन व्यग्य अलङ्कारा के स्थल प्राय बहुत कम प्राप्त होत हैं क्याकि कालिदास अलङ्कार प्रेमी न होकर रस-भाव प्रेमी कवि ही हैं ।

पचम अध्याय

## वस्तु व्यङ्ग्य

कुमारसम्भव-कवि प्रौढाक्तिसिद्ध वस्तु म वस्तु व्यङ्ग्य—

“प्रचण्ड किरणा वाला मूय भा उसस इतना डरता है कि उसक नगर पर वह भेयन उतना ही किरणें फेनाता है जिनस तान क कमल भर तिल उठें ।’

यहाँ (वृनासुर के भय के कारण, तादृश किरणा वाला मूय भा मन्त्रोष्ण ह्वाकर उसक नगर म प्रगट होता है—इस वस्तु की व्यञ्जना (श्लोकाक्त वस्तु स) हो रही है ।

“चन्द्रमा पूरे महीन भर अपनी पूरी कला लेकर चमकता है केवन उस एक कला को छोड देता है जिसे शिव जी ने अपन मस्तक का मणि बना लिया है ।”<sup>१</sup>

‘चन्द्रमा सदैव कृष्णपक्ष म ही स्थित रहकर तारकामुर की सेवा करता है—इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है ।”

‘समुद्र भा उसक पास भेंट के योग्य रत्न भेजन क लिए तब तक जल क भीतर घाट जोहता रहता है जब तक वे ब्रह्म न जाएँ ।’

यहाँ ‘समुद्र तारकामुर की प्रसन्नता तथा अभिषेचि का पूण ध्यान रखता है, इस प्रकार समुद्र बडा ही स्वामिमत्त एव धैर्यशील है’ इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है ।<sup>२</sup>

“आम की मजरियाँ खा लेन से जिस कोकिल का कण्ठ मोठा हो गया था वह जब भाठे स्वर से ब्रूक उठवा था तो उस मुनकर रूठा हुई स्त्रियाँ अपना कठना भा भूल जाती थी ।”<sup>३</sup>

यहाँ ‘कोयल की ध्वनि मुनकर स्त्रियाँ कामोन्मत्त हो उठा इस वस्तुरूपाय का व्यञ्जना हो रही है ।

१ कुमारसम्भव २।३३

३ वही, २।३१

२ कुमारसम्भव २।३४

४ वही २।३२

आकाशवाणी पर विश्वास कर रति ने प्राण त्याग करने का विचार छोड़ दिया और कामदेव के मित्र वमन्त ने भी बहुत समझाकर ढाँढस बँधाया ।<sup>१</sup>

यहाँ रति तुम दु खी मत हो, तुम्हारा प्रिय से समागम अवश्य होगा—इस वस्तु रूप की व्यजना हो रही है ।

“पावती ने तपस्या हेतु अपनी कमर म जो मूँज की मेखला बाध रखी थी, वह इतनी चुमती थी कि वे प्रतिक्षण काँप उठती थी, तथा प्रथम बार पहनने से उनकी सारी कमर लाल पड़ गयी थी ।”

यहाँ पावती का काँप उठना तथा कमर लाल पड़ जाना—इस कथन से, ‘उनकी अतिशय शारीरिक कोमलता तथा सुकुमारता’ व्यग्य हो रही है ।<sup>२</sup>

“कमलिनी के समान अपने कोमल अङ्गों को इस प्रकार तपस्या से दिन-रात सुखाकर पावती ने कठोर शरीर वाले तपस्वियों को भी लजा दिया ।”

यहाँ ‘बड़े बड़े तपस्वीगण भी पावती के समान कठोर तपस्या नहीं कर सकते’ इस वस्तु की व्यजना हो रही है ।<sup>३</sup>

‘आपने जो दीध श्वास लिया उससे मैं यह समझता हूँ कि आप योग्य पति पाने के लिए तपस्या कर रही हैं । आश्चर्य है कि आप जिसे चाहे, वही आपको न मिले क्योंकि मुझे तो ससार में ऐसा कोई पुरुष नहीं दिखलाई पड़वा जिसे प्राप्त करने के लिए आपको इतनी कठोर तपस्या करनी पड़े ।”

यहाँ “आप जैसी सुन्दरी को पति पाने के लिए तपस्या नहीं करना चाहिए—अपित्त पुरुष को ही आपको प्राप्त करने के लिए तपस्या करना चाहिये”—यह वस्तु रूप अर्थ व्यग्य हो रहा है ।<sup>४</sup>

सर्तपिगण से हिमालय कहते हैं—आपने मेरे चल और अचल दोनों शरीरों पर अलग अलग कृपा की है । मेरे शरीर को तो आपने अपना दास बना लिया है और मेरे अचल शरीर पर आपने अपने पवित्र चरण रख दिये हैं ।<sup>५</sup>

यहाँ पर ‘आम्र मैं पूणरूपेण पवित्र हो गया’ इस वस्तु की व्यजना हो रही है ।

१ कुमारसम्भव ४।४५

२ कुमारसम्भव ५।१०

३ वही, ५।२४

४ वही, ५।५६

५ वही, ५।५८

स्वतः सम्मवी वस्तु से वस्तु व्यग्य—

एष यादिति देवयो पार्ष्णीं पितुरपोमुती ।

सीताकमलपत्राणि गणयामास पार्ष्णी ॥ ६।८४४

दर्वपिणग तथा पिता क समाप बैठा हुई पावता का चित्र साधता हुआ कवि कहता है—जिस समय दर्वपिणग विवाह का वात कह रह था, उस समय पार्ष्णीता जा पिता के पास नाचा मुँह किए लालाकमल क पसे गिन रहा थीं ।

ध्वनिवाणी आवायों ने इस श्लोक का वस्तु ध्वनि का मध्येष्ट उदाहरण माना है । यहाँ पर पावता क सजाएष व्यभिचाराभाव का व्यञ्जना अर्थ सामप्य स हा रही है । यदि कमलपत्रगणना तथा अधोमुखस्वरूप अनुभावा द्वारा लज्जारूप भाव की सतिवति प्रतीति हा जाता तो यह अवश्य असदयक्रमता क कारण भाव-ध्वनि का विषय बनता किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है क्योंकि कमलपत्र-गणना तथा अधोमुखस्व आवश्यक रूप से केवल सजा के हा अनुभाव नहीं है । आतन्दवधन का कथन है— कि ये (कमलपत्र गणना-अधोमुखस्व) ता कुमारिया म लज्जा से अति-रिक्त, कारणान्तर म भा हा सकत हैं अत इनक द्वारा सजा की सतिवति प्रतात नही होती अपितु पावता क द्वारा शम्भु की वर रूप म प्राप्त करने के हेतु का गयी वपस्या तथा नारदवृत्त विवाहादि प्रसङ्ग क पान के अनन्तर ही लज्जा वाल अर्थ का पान होता है । इस व्यवधान के कारण हा यहाँ सलदयक्रमता है ।<sup>१</sup>

लज्जा रूप व्यभिचारा भाव के पर्यायाचन के अनन्तर हा रस की प्रताति होती है । अत लज्जा तथा रम प्रतीति के बाध तो प्रम लगित न होने के कारण रस की दृष्टि म इसम भी अनदयक्रमता माना जा सकता है ऐसी लोचनकार की भायता है किन्तु कमलपत्रगणना अधोमुखस्व तथा लज्जा का मध्यवर्ती प्रम सलदय है अत लज्जा रूप अथ भावध्वनि का विषय न बनकर वस्तुध्वनि का विषय बनगा । यद्यपि आतन्दवधन तथा मम्मट दोना ने हा 'लज्जादि अय स्पष्ट शब्दा म वस्तुरूप नही बताया किन्तु इनका आशय यहा रहा होगा । पणितराज जगनाथ सलदय-क्रमतया व्यज्यमान रसादि अथ को स्पष्ट रूप म वस्तु ध्वनि हा मानत हैं<sup>२</sup> और इसको अभिनव गुप्त का ही आशय बतात हैं ।

शिव-पावता विवाह सम्पन्न हा जान पर 'ब्रह्मा जी ने पावता का यह आशी-र्वाद दिया कि तुम वार पुत्र की माता बनो किन्तु इच्छाभा स पर रहन वाल शकर जा को हम क्या आशावाँन दें—यह उनका समझ म नही आया ।<sup>३</sup>

यहाँ—शङ्कर को किसी इच्छा की कामना नहीं है—अर्थात् शङ्कर नि स्पृह हैं—इस वस्तु की व्यजना हुई है ।

‘शृङ्गार का सब वस्तुएँ पास हाने पर भी सभी मुहागिन स्त्रिया पावती की स्वामाविक शोभा पर इतना मुग्ध हो गयी कि उह एकटक निहारती ही रह गयी ।’

‘पावती जो प्रवृत्ति से हा अत्यधिक सुन्दर थी अत उनके शृङ्गार के लिए सौन्दर्य प्रसाधन की कोई आवश्यकता नहा था’ यह वस्तु रूप अर्थ व्यग्य हो रहा है ।

कविनिबद्धवस्तुप्रौढोक्ति वस्तु से वस्तु व्यग्य—

इन्द्र कामदेव से कहते हैं—तुम सब कुछ कर सक्त हो क्याकि तुम और वज्र दो हा मेरे अस्त्र हैं । पर उनमे वज्र की धारा वा शत्रुजा न उतार दो है । अब तुम ही एस वचे हा, जो अप्रतिहत गति स सब आर जा सक्ते हा और हमारा काम भी कर सक्ते हा ।<sup>१</sup>

यहाँ ‘तुम सबशक्तिमान हो और तुम्हारे अतिरिक्त शिव का तपस्या कोई भी नहीं भङ्ग कर सक्ता—इस वस्तु की व्यजना हो रही है ।

रवि कहती है—‘बपा के दिना मे, रात मे, घने अधकार से भर डरावन नगर के माग मे विजली की कडकहाहट से डर उठन वाला कामिनिया का उनके प्यारा के घर तुम्हारे बिना कौन पहुँचायेगा ।’<sup>२</sup>

यहाँ ‘कामाग्धा का भय नहीं लगता इस वस्तु का व्यजना हा रही है ।

यह आशय है कि जिस युवक को आप चाहती हैं वह ऐसा कठोर है कि बहुत दिना से कण्ठ से गूय आपके कपोल पर लटकना हुई इन धान के समान पीला जटाया का देखकर भी नहीं द्रवित होता है ।<sup>३</sup>

यहाँ ‘आपकी अत्यन्त काम्ण्य एव दयनीय दशा का दर्पकर भी जा दु खित नहीं हाता वह अवश्य हा पापाण हृदय हैं इस वस्तु का व्यजना हा रहा है ।

सप्तपिण्ड हिमालय स कहत हैं—आपने सारा कठोरता अपन अचल शरीर में भर ली है । आपका यह चल झरार ऐसा झुका हुआ है कि सज्जन लाग आकर इसका पूजा किया करते हैं ।<sup>४</sup>

१ कुमारसम्भव ७।१३

२ वही, ४।११

३ वही ५।४७

४ कुमारसम्भव ३।१२

५ वही, ५।३८

यहाँ आपने काठिय का दशमान भी नहीं है अथवा नम्रता असम्भव होती इस वस्तु रूप अथ की व्यञ्जना हा रहा है ।

कविप्रौढोक्तिनिबद्ध जल द्वार से वस्तु व्यग्य—

इस पद्य पर उत्पन्न जिन भाजपत्रा पर लिस हुए अथर हृष्या की मूँठ पर बना हुई लाल बुँदकिया जैसे दिवाद् पडत हैं, उन्हें विद्यापरियाँ अपन प्रम पत्र निखने के काम में लाया करता है ।<sup>१</sup>

यहाँ उपमा अलङ्कार म—दि-याङ्गतात्रा क विरह्याग्य यह पद्य हैं इस वस्तु म् अर्थ की व्यञ्जना हा रही है ।

सूप ने आकाश से घूम का पाना साच लिया है । अत आकाश उस तालाम क समान दिवायी पडता है जिसम पूव का आर अँधेरा ब् जान क कारण एसा प्रताप होना है कि उधर पड्क बच गया है तथा पश्चिम म कुछ-कुछ उजाला रहन स एसा लग रहा है कि उधर अमा धाना-धावा पाना बच गया है ।<sup>२</sup>

यहाँ उपमा अलङ्कार स—दिन यतात ही गया अब रात्रि का आगमन हा रहा है इस वस्तु का व्यञ्जना हा रहा है ।

जब पावता जो हाव भाव स चलता था वो एसा जान पडता था कि मानो उनक विद्युत्त्रा से निकलने वाला मधुरध्वनि को सीखने के लिए ललचाय हुए राज-हसी ने अपनी हाव भाव मरी चान पहन हा उह बल म खिला दा हो ।

यहाँ उत्प्रेषा अलङ्कार है— पावती का चाल बढी हो मनमोहक थी इस वस्तु की व्यञ्जना हो रहा है ।

पावती क सोप्य का वणन करता हुआ कवि कहता है—उनक गिर पर जो वर्षाकाल का जल पडना था वह पनसर को उनका पलका पर टिकता था, फिर वहाँ स गिरकर उनके आप्ठो पर जा पडता था, वहाँ स उनक स्तना पर गिरकर बिलर जाता था फिर उनक पेट पर बना हुए त्रिवलिया स हावा हुआ बढा दर म नाभि म पहुँचता था ।<sup>३</sup>

यहाँ सामिग्राम विशपणा द्वारा विनिष्ट का उक्ति हात स परिवर अलङ्कार<sup>४</sup> है तथा नेत्र म पानी ठहरन स नत्र लाम का क्षणिक स्थिरता का, ठहरन से अथर के

१ कुमारसम्भव १।७

२ कुमारसम्भव ८।३७

३ वही, ३४

४ वही, ५।२४

५ वही, २।२२

मादव का, स्तन पर ठहरने मे स्तनो की कठोरता का, नामि म ठहरने से नामि का गम्भीरता की व्यजना हो रही है ।

कविनिबद्धवकृप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु व्यग्य—

‘ब्रह्मा जा कुबेर,स कहत हैं—‘कुबेर का यह बाहु भा गदा के विना ऐसा क्या लग रहा है जैसे कटो हुई शाब्बा वाला वृक्ष का ठूठ हो । यह बत्ता रहा है कि किसी बड़े शत्रु से हार जाने का काटा इनके हृदय मे कसक रहा हो ।’

यहाँ उपमा अलङ्कार से—‘वृत्रासुर क धोर अत्याचार से कुबेर अत्यन्त दु खी है’ इस वस्तु स्वार्थ की व्यजना हो रही है—यह उक्ति वक्ता के द्वारा कहलायी गयी है अतएव सारा सौंदर्य वक्ता के कथन के माध्यम से व्यक्त होता है ।

‘पृष्ठ ऋतुएँ अपने समय का विचार छोडकर एक साथ बाटिका का मालिना के समान, एक दूसरो ऋतुओ क पुष्प का विना छेडे हुए, अपने-अपन ऋतु के फूल पुष्पित कर तारकासुर की सेवा करती हैं ।’

यहाँ उपमा अलङ्कार से ‘तारकासुर के राज्य से शाव, उष्णादि दोष दूर भाग गये’—इस वस्तु की व्यजना हो रही है ।

मेना कहती है—‘कहाँ तो तपस्या और कहीं तुम्हारा कोमल शरीर । दखो ! शिरीष के फूल पर भीरे आकर बैठ जाये, ता क्या वह झट नहीं जायेगा ।’

यहाँ उपमा अलङ्कार से तुम जैसी कोमालाङ्गी को तपस्या नहीं करना चाहिए, इस निपेक्ष रूप अर्थ की व्यजना हो रही है ।

‘अपने निस्तेज दण्ड से पृथ्वी का कुरेदते हुए यमराज ऐसे क्या लग रहे हैं मानो उनका कठोर दण्ड भी बुझी हुई लूक जैसा वेकाम हो गया है ।’

यहाँ—‘करारा दण्ड तथा लूक का सम्भव सम्बन्ध द्वारा साहचर्य व्यक्त करने म निदर्शना अलङ्कार है’—उसस यमराज आप इतने दु खी मत हो’, इस वस्तु की व्यजना हो रही है ।

स्वत मम्भवी अलङ्कार से वस्तु-व्यजना—

हिमालय की विशाल गुफाआ म दिन में भी अँधेरा छाया रहता है अतएव दिन से डरने वाले उल्लू को हिमालय अपनी गोद म शरण दे देना था क्योंकि जो

१ कुमातरम्भव २।३६

२ कुमातरम्भव २।३६

३ वही, ५।४

४ वही, २।२३

५ वही, १।१२



अपने पिता क वचन सत्य करने क लिये राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डक वन म हा नही वरन् अपन इस सत्य व्यवहार से सज्जनों के मन में भा घर कर लिया ।'

यहा—आ राम का एकनिष्ठ पितृभक्ति स सभी ऋषि मुनि सन्तुष्ट हुए—इस बात का व्यजना हो रही है ।

जब हिमालय पर अपना षण्डा गाड कर रघु आगे कैलास की आर न बढ़कर सौट पडे तब कैलास पर्वत का इस बात का दडी लज्जा हुई कि एक बार रावण ने मुझे क्या उठा लिया, सभी मुझे हारा हुआ समझन लने ।

यहाँ 'दूरवार को किसा शत्रु से पराजित नही होना चाहिये' इस निषेध रूप वस्तु की व्यजना हो रहा है ।<sup>२</sup>

रघु के विजय क अवसर पर पहाडी राजाशा न रत्ना के डेर रघु को भेंट में दिए जिसे देखकर रघु न हिमालय क अतुल धन का अनुमान किया और हिमालय ने भी युद्ध म रघु के पराक्रम का अनुमान कर लिया ।<sup>३</sup>

यहाँ हिमालय म बहुमूल्य वस्तुएँ मिली और वे प्रथम बार पराजित हुए थे—इस वस्तु का व्यजना हा रही है ।

रघु क जन्म होने पर कवि कहता है—बालक तो ससार का कल्याण करने वाला था इसलिए उसके जन्म लने पर कवल सुदम्पिणा-पति दिलीप के राजमदिर में हा मनाहर वाजे और बस्याजा के गृत्यादि उत्सव नही हो रहे थे, अपितु आकाश म देवताओ के यहाँ भी नाच गान हो रहे थे ।<sup>४</sup>

यहाँ ब्रह्मा के अश से उत्पन्न रघु देवताआ का अवश्य सङ्कट दूर करेगा—मह सोचकर दक्षगण बहुत प्रसन्न हुए—इस वस्तु रूप अर्थ की व्यजना हो रही है ।

जब ये शक्तिशाली राजा शत्रुआ पर चढाई करत हैं तब सना क आगे चलने वान घोडा के टापा स उठी हुई घूल स शत्रुआ क मुकुटा की चमक घुँधली पड जाती है ।<sup>५</sup>

यहाँ हे सक्ति । इनका वाई शत्रु नही है अर्थात् इनसे ( अवन्ती देश के राजा से ) सभा शत्रुगण पराजित हो गये हैं इस वस्तु का व्यजना हो रही है ।

१ रघुवरा १०।६

२ रघुवरा ४।८०

३ वही, ४।७६

४ वही ३।१०

५ वही ७।३३

उही प्रसिद्ध वश मे ( कातवीय के वश मे ) ये अनूप देश के राजा उत्पन्न हुए हैं ये वेदों और बटे-बूढो की बड़ी सेवा किया करते हैं । लक्ष्मी को जो चचलता का दोष लगाया जाता है उनका वह दोष भी तब से घुल गया, जब से वह इनके साथ रहने लगी ।'

यहां 'यह राजा सब प्रकार क दोष, व्यसन से रहित हैं । अतएव लक्ष्मी सदैव इनके साथ रहती हैं अर्थात् यह प्रभून् समृद्धिवाच् हैं इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है ।

कविप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु व्यस्य—

'दिविजय के लिए रघु की सेना मे जो क्षण्डिया थी वे फरफराती हुई ऐसी लग रही थी, मानो शत्रुजा का अँगुला उठा-उठाकर डाट रही थी ।'

यहां 'उत्प्रसा अलङ्कार से—शत्रुओ सावधान हो जाओ तुम्हारा विजयया सतर मे है'—इस बात की व्यञ्जना हो रही है ।

राजा दशरथ बूढे हो गये थे । अब उनकी दशा प्रात काल क उस दीपक जैसा हो गयी थी जिसका तेल समान हो गया हो और वह बस बुझने ही वाला हो ।'

यहां उपमा अलङ्कार से—'राजा दशरथ की सब इन्द्रियां शिथिल हो गयी थी और उनकी मृत्यु निकट था' इस वस्तु की व्यञ्जना हो रहा है ।

राजा दिलीप प्रजापालक थे इसलिए उनके जङ्गल मे पहुँचते ही, वषा के बिना ही वन की अग्नि शान्त हो गयी, वहा क पेड भी फल और पुष्प से युक्त हो गये तथा बड़े जीवा ने छोटे जीवा को पीडित करना भी छाड दिया ।'

यहां विभावना अलङ्कार से—महाराज दिलीप इतने महान थे कि स्यावर-जगम सभी उनका आदर करते थे'—इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है ।

कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति अलङ्कार से वस्तु—

चारणगण कहते हैं—तुम्हारी सौ दय लक्ष्मी न जब यह देखा कि तुम निद्रा रूपी दूसरी स्त्री क वश मे हो तब वह तुम्ह चाहते रहने पर भी स्पष्ट होकर तुम्हारा ही मुख के समान सुन्दर चन्द्रमा क प्राप्त चली गया । पर इस समय चन्द्रमा भा मग्नि हो गया इसलिए वह सौ दय लक्ष्मी पुन निराधार हो गया है ।

यहां उपमा अलङ्कार से तुम्हारी अविरक्त सौ दय लक्ष्मी को धारण करने का और जिंसा मे कोई साम्य नहीं है अर्थात् आप अपूव शोभावाच् हैं इस वस्तु की व्यञ्जना हो रही है ।

इनका राज-भवन महाकाल के मंदिर में बैठे हुये और मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले शिव जी के पाम ही है। इसलिए कृष्णपत्न्य म भी शिव जी के सिर पर वन हुए चंद्रमा की चाँदनी से ये अपना खिया कं साय सदा शुक्ल पत्न्य का हा मान-द लेत हैं। हृ रम्भोर ! क्या तुम अपनी के उन उद्याना म विहार करना चाहता हा जिसम दिनरात त्रिप्रा नदी का शातल वायु प्रवाहित होवा रहता है।<sup>१</sup>

यहाँ उपमा अलङ्कार से—हृ सखि ! त्रिय ज्याहस्ना म विहार का सुख ही इनकं पाम है अथ कुट्ट नहा—इम वस्तु रूप अर्थ का व्यजना हो रही है।

कौरव राजा रघु स कहत हैं—हृ राजन् ! जाने अपना सब धन अच्छे नागा को द डाना और केवल यह शरीर मात्र आपक पास बचा है। इससे आर उस त्रिप्रा कं पीये का ठूँठ जैस रह गए हैं, जिसक दानें तपस्विन्या न झाड लिए हैं। सब कुट्ट दकर और दरिद्र होकर भी आप उस चंद्रमा क समान सु दर लग रहें हैं जिसकी सारी कताएँ दवताप्रा न पा डाला हा।<sup>२</sup>

यहा उपमा अलङ्कार म सब बुद्ध दान कर देन स महाराज की आत्मात्मिक एव शारीरिक आभा त्रिगुणित हो गयी हैं इस वस्तु का व्यजना हा रही है।

स्वतन्त्र मम्भवी अलङ्कार मे वस्तु व्यंग्य—

अज धनुर्जों के सिर पर बाया पैर रखकर मुँदरी इन्दुमती का लकर चल। उनक रथ कं धाडा का टापा स उठी हृद धून मे, इन्दुमता क केश भर गग और वह सायान् विजयलक्ष्मी जैस जान पड रहा था।<sup>३</sup>

यहा उपमा अलङ्कार स—जब विजयलक्ष्मी स्वरूपा इन्दुमती साय म है—तो अथ का क्या आवश्यकता है—यह वस्तु का व्यजना हो रही है।

रघु कं जन्म हान पर कवि कहता है—वाजक का तंज सौरी-घर म चाग और इतना कैना हुआ था कि बावी रात समय घर म रख हुए दीपा का प्रकाश भा विलकुल फाका पडा गया और व ऐस जान पडन लगे—माना चित्र म बने हुए हा।<sup>४</sup>

यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार स—दवताप्रा का अश जाने क कारण रघु का शारीरिक कातिक समय अथ सर्पा पीक पड गए इस वस्तु की व्यजना हो रहा है।

१ रघुसता ६।३४

३ वही ७।७०

२ रघुसता ५।१५

४ वही ३।१५

मेघदूत—

मेघदूत विरह शृङ्गार प्रधान काव्य है। उसमें वियोग का जैसा अनूठा वणन हुआ है—वह विश्वविदित है। अतएव मेघदूत में अलङ्कार एव वस्तु व्यंग्य का वैसा सौन्दर्य प्राप्त नहीं होता जैसा रसव्यंग्य का। काव्य में प्रयुक्त वस्तु एव अलङ्कार-रस के दो चाख्त्वात्कर्ष के साधन हैं। केवल एक दो स्थला में ही वस्तु ध्वनि का किंचित सौन्दर्य लक्षित होता है। जिनका कुछ वणन किया जा रहा है—

कविनिवद्धववतृप्रौढोक्ति वस्तु से वस्तु व्यंग्य—

प्रातः काल उज्जयिनी में बहुत से प्रेमी लोग अपनी उन स्त्रियाँ के आँसू पीछे रहे होंगे, जिन्हें रात में अकेली छोड़कर वे कहीं दूसरी जगह रमे थे। इसलिए उस समय तुम सूर्य को भी मत आच्छादित करना क्योंकि वे भी उस समय अपनी प्रिय कमलिनी के मुह कमल पर पड़ी हुई आस की वूदे पीछने के लिए आ गये हंगे। तुम उनके हाथ न रोकना नहीं तो बहुत बुरा मान जायेगे।<sup>१</sup>

यहाँ कामिनियों की इच्छा में अवरोध होने से वे अत्यधिक क्रुद्ध हो जाती हैं जिससे तुम्हारे काव्य में हानि हो सकती है।

इस वस्तु की ध्वनि हो रही है।

हे मेघ ! तुम वहाँ ( कैलास पर्वत पर ) पहुँच कर पहले तो तुम मानसरोवर का जल पान करना जिसमें सुनहरा कमल खिला करत है। एरावत के मुह पर घाड़ी देर बख्र के समान छाकर उसका मन बहला देना, फिर जाकर कल्पद्रुम के कोमल पत्ता को महीन कपड़े की भाँति हिला देना। इस प्रकार अनेक प्रकार का क्रीडा करते हुये तुम कैलास पर स्वेच्छा पूर्वक घूमना।<sup>२</sup>

यहाँ कैलाश पर्वत तो तुम्हारा सहज मित्र है अतएव मित्र के घर में किसी प्रकार का सकोच नहीं करना चाहिए—इस वस्तु रूप अर्थ की व्यञ्जना निकल रही है।

अलकापुरी में रगबिरगे वस्त्र, नेत्रा में बाँकापन बढ़ाने वाली मदिरा, कोमल पत्ते और फूल, तरह-तरह के आभूषण, पैरों में लगाने का महावरादि स्त्रियाँ के शृंगार की समस्त वस्तुयें अकेले कल्पवृक्ष से ही मिल जाती हैं।<sup>३</sup>

यहाँ अलकापुरी में किसी वस्तु के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता, कल्पवृक्ष समस्त इच्छाओं की पूर्ति कर देता है इस वस्तु की भ्यजना हो रही है ।

कविनिन्दवक्तृअलकार से वस्तु व्यंग्य—

अवन्ति देश का वणन करता हुआ कवि कहता है—वह नगरी ऐसा लगता है माना स्वर्ग में अपने पुष्पा का फल भोगन वाले पुष्पा मा लाग अपन पुण्य समाप्त होने में पूव ही, अपने बने हुए पुण्य के बदले स्वर्ग का कोई चमकाला भाग अपन साथ लेकर उमें पृथ्वी पर उतार लाय हा ।<sup>१</sup>

यहाँ उपमेधा अलकार से—समस्त भूतों का अतिव्रमण करने वाली—उजयिनी वही ही सोमाग्वती है इस वस्तु का व्यजना हो रही है ।

यस कहता है—हे सज्जन ! हृदय में रख हुए इन लक्षणा स द्वार के अगल-वगल चित्रित शल और पन्न को देखकर निश्चय ही तुम मरे भवन का पहचान लोगे । सूर्य क अस्त हो जान पर कमल अपनी शोभा नहीं धारण करता ।<sup>२</sup>

यहाँ भवन क सामान्य धम शोभाहीन होने का कथन होने स प्रतिवस्तूपमा अलकार<sup>३</sup> स—स्वामी अपना पति स हान घर का कोई शोभा नहा होती', इस वस्तु रूप अय की व्यजना हो रहा है ।

हे श्रेष्ठा—तन्निर्धायु चलन पर देवदाह क वृत्ता क आपस में घषण से जब जगल में आग लग जाय जोर उठन हुए अंगारे सुरगाय क लम्ब लम्ब रायें जलाने लगे तब तुम धुआँपार जब वषण कर उस बुना दना बधाकि भल लागे क पास जो कुछ भा होता है, वह दान दु गिया का दु ग मिटान के लिए हा होता है ।<sup>४</sup>

यहाँ विषय का सामान्य स समयन होने के कारण—अर्थात्तरयाम अलकार स अपेक्षित गवट में पट लागे का सहायता अवश्य करना चाडिए—इस वस्तु का व्यजना हो रहा है ।

ऋतुसंहार—

इस वाक्य में ऋतु-भा का वणनात्मक दोहा में वणन होने क कारण, वस्तु, अलकार, इत्यादि का व्यंग्यता क उदाहरण प्राय नहा प्राप्त होत । उदाहरन विमलादि क अ जगत ऋतुभा का वणन होत क कारण भाव एव रग की व्यजना परिकल्पित हो जाता है किन्तु अलकार एव वस्तु का व्यजना का आम्वा<sup>५</sup> तहाँ मिल पाता । अतएव प्रस्तुत वाक्य में वस्तु व्यजना का चर्चा नहा का गयी है ।

१ पू० मे० ३०

० पू० मे० १७

२ पू० १५३, पू० ४८४

४ पू० मे० ५६

## गुणीभूतव्यंग्य

जैसा कि प्रथमाध्याय में मकेत किया जा चुका है, कि जहां व्यंग्य के सम्बन्ध के कारण वाच्यता की चारुता अधिक रहती है वहाँ गुणीभूतव्यंग्य नामक काव्य का प्रकार होता है।<sup>१</sup> वस्तुतः वाच्य अथ कं प्रधानरूपण चारुत्वस्थाना हानि के कारण तथा व्यंग्य अथ कं गुणाभूत होने के ही कारण इस 'गुणाभूत व्यंग्य' नाम दिया गया है। ध्वनिकार द्वारा दिये गये 'गुणाभूत-व्यंग्य' के लक्षण का देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्यार्थ का वाच्यार्थ से समप्रधानता का स्थिति होना पर भी गुणीभूत-व्यंग्य ही माना है। यद्यपि इस समप्रधानता को चञ्चा आनन्दवचन न स्पष्ट शब्दों में नहीं की है तथापि उनके लक्षण में आए 'चारुत्वप्रकचवत्' पद का व्याख्या करते हुए दोषितिकार कहते हैं—

'वाच्यस्य चारुत्वप्रकच इति चारुत्वसाम्यस्याव्युत्पत्तक्षणम् — दोषित पृ० ४६३

किन्तु आचार्य भग्मत इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं— अतादृशि गुणाभूतव्यंग्य व्यंग्य तु मध्यमम्' । का० प्र० सूत्र ३ पृ० ३१

अतादृशि वाच्यादनतिशायिनि ।

अर्थात् वाच्य से व्यंग्य के अनतिशया हान पर गुणीभूतव्यंग्य नामक मध्यम काव्य होता है। यहाँ व्यंग्य का वाच्य से अतिशया न हान का अर्थ है, व्यंग्य का वाच्य से 'यून हाना अथवा तुल्यकोटिता होना।'<sup>२</sup> इन प्रकार यह निश्चित होता है कि इन दोनों ही अवस्थाओं में गुणाभूतव्यंग्य नामक काव्य माना जायेगा।

जैसे—

लावण्यसिंघुरपरेव हि केयमत्र यत्रोत्प्लानि शशिना सह सम्प्लवते ।

उमग्जतिद्विरवकुम्भतटौ च यत्र यत्रापरे कदलिकाण्डमृणालदण्डा ॥

ध्व पृ० ४५६

यही निम्न पत्र म परिष्कारना उरान शून्य म कटागच्छन, शना शून्य म गुण आदि ज्यों की व्यक्ता हा रना है किन्तु य शना अथ अना म अप्रतिष्ठित रहत हूण अरैय नयमत्र इग विस्मयक्य वाच्यक्य क उरान क माधन बन रना हैं । अत्र वाच्यक्य क हा अधिग समरकारकाण होत म गुणभूतव्यस्यवाच्य माना जायगा । किन्तु माध ही इग शना का पदवगण करत पर यह तथ्य गमन आता है कि यही नापिरा पत्र विस्मय का नूननर अभिवापक्य विप्रतम्भ का आलभ्या बन रहा है । अत्र य पत्र का हाता है कि रम का स्थिति हान पर ता यह शना ध्वनिकाव्य का काटि म आ जगगा कि यही गुणभूत व्यस्य करा माना गया ?

इसका समाधान यह है कि रम न प्रथम म विभावादि ता वाच्यक्य स्थानाय हा हाता है अत्र विस्मय म अभिवापक्य का माग प्रसंग वाच्य ही माना जायगा क्योंकि इसा म माग समरकार निहित है । उरान उर इग वाच्यक्यस्थानाय (नापिरा क्य) विभावादि क पदार्त्ता गमित हान वाता विप्रतम्भट्टाकारम अगम्य हा व्यस्य स्थाताय हाकर ध्वनि काटि त्र पद्वैच जायगा ।<sup>१</sup> इग प्रकार रस दृष्टि म यह ध्वनि काट्य का सना स अभिहित हागा दमा वात का और अधिग स्पष्ट करत हूय ध्वनिकार कान है — रमभावादि क्य ता पय का पदातायना करत पर ता यह गुणा भूत व्यस्यता य नी ध्वनिकाट्य स्थानाय हा जाता है । उरान गुणभूतव्यस्यता ता रम प्रथम व्यस्य का दृष्टि म माना जाता है ।

जातार आनन्दनन न रसभावादिपर व्यस्य के अप्रधान या अङ्गस्य म स्थित रहन का गुणाभूतव्यस्यवाच्य माना है । अङ्गस्य स रहन पर रसभावादि जय वातपार्थीभूत रमादि क उपस्वाग्य हान के कारण अत्रङ्कार का काटि म आ जात हैं । इस प्रकार रसादि प्रधानस्वन स्थित रहन पर व्यस्यवाच्य क अतगत आर्षेग, किन्तु अप्रधानरूपण स्थित हान पर क अय क चारु व हनु होत स व अत्रङ्कार रूप बन जायेग । जेम—

अय स रसानोत्कर्षी पीनस्तनविभवत ।

नाम्पूरजघनस्पर्शा नीवी विस्त्रस्तन कर ॥

यही अत्रङ्कार रस कर्मण का उरक्याधायक हान क कारण अत्रङ्कार का कोटि म आ जाता है ध्वनि म नहा । आचाय विश्वनाय भा इसा वात का समयन करते हैं ।<sup>२</sup> यहाँ यह धाङ्का हा सकता है कि रम तो सबधा अलङ्काय है फिर उस अलङ्कार क्या कहा गया ?

आचार्य आनन्दवर्धन का कथन है कि वस्तुतः रसादि अथ प्रधान वाच्यार्थ के चाक्षर्य हेतु होने के कारण उन्हें अलङ्कार कहा जाता है, अथवा वे सदैव अल-  
कार्य ही होते हैं।<sup>१</sup>

अतएव अप्रधानरूप से स्थित रस को रस-यग्य न कहकर रसवत् अलङ्कार कहा जाता है, और इसी प्रकार रसाभास, भावाभास, भावशांति के अङ्गरूप से स्थित होने पर क्रमशः प्रेयस ऊजस्वि तथा समाहित नामक अलङ्कार कहा जाता है।<sup>२</sup> इस समय उनकी स्थिति भृत्य के विवाह में उपस्थित भृत्यानुगामी (वस्तुतः प्रधान, किन्तु इस समय अप्रधान बने) राजा के समान है।<sup>३</sup>

यद्यपि रसादि की चर्चा अति प्राचीन है, किन्तु उन सबको इस प्रकार से व्यवस्थित करने का परम श्रेय आचार्य आनन्दवर्धन को ही है।

इस प्रकार गुणीभूत-यग्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। व्यंग्याथ से उपसृष्ट हुआ वाच्य सहृदया में चमत्कारानिश्चय का जनक होता है। इसीलिए ध्वनिकार इसे 'ध्वनिनिष्पन्न रूप' कहते हैं।<sup>४</sup> वस्तुतः गुणीभूत-यग्य काय का वास्तविक अभि-  
प्राय 'व्यंग्यार्थ' के सम्बन्ध से विशेष रमणीय वाच्य सौन्दर्यमय 'कायवच' का है।<sup>५</sup> अतएव प्रसादगुणयुक्त तथा व्यंग्याथयाग के कारण गम्भीरपदा से युक्त काव्यप्रन्यासा में ध्वनि की सम्भावना न रहने पर, गुणीभूत-यग्यकाय प्रकार की ही याचना करनी चाहिये।<sup>६</sup>

ध्वनिकार के यह कहने का वास्तविक अर्थ यह है कि 'वयात्मक काय प्रबन्ध' तो सर्वश्रेष्ठ काय है ही। उसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं किन्तु ऐसी भावकृतियाँ काय हैं, जिनमें यग्य सौन्दर्य के आकर्षण का अपेक्षा वाच्यसौन्दर्य का आकर्षण अधिक प्रबल हुआ करता है।

'गुणीभूतव्यंग्य'-काय को श्रेणी में ससृष्ट काय साहित्य की अनकानक रचनार्यो स्थान पाती हैं। ध्वनिवादी काव्याचार्यों ने इन काय विभाग में उन सभी अनकृत सूक्तियाँ को भी अतमूत कर दिया है जिन्हें प्राचीन अलङ्कारवादी आचार्य केवल किसी न किसी अलङ्कार से अलङ्कृत कह कर मौन रह गये थे, किन्तु आनन्द-  
वर्धन ने स्पष्ट कहा है कि—वे सभी वाच्यानङ्कार विभूषित रचनाएँ 'गुणीभूतव्यंग्य

१ ध्व० पृ० २९३

२ वही, ४६५

५ वही, ३१३४

२ बा० श्लो० पृ० ८५

४ ध्व० पृ० ५०७

६ वही, ३१३५



काव्य' का श्रेणी में अन्तर्भूत हो जाएँगी, जिनकी काव्यात्मक रमणायता का रहस्य उनके वाच्यालङ्कार में नहीं, अपितु उन वाच्यालङ्कारों में अन्तर्निहित वस्तु या अलङ्कार रूप व्यंग्यार्थ के अयमास में रहा करता है।'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यदि 'ध्वनिवाच्य ध्वनित'व का पूर्णाकार है तो गुणाभूतव्यंग्य' वाच्य उद्योग असावधान अवश्य है। अतः दोनों रमणीय काव्य-प्रकार हैं।

आचार्य आनन्दबोधन ने ध्वन्यालोक में कुछ अलङ्कारों को व्यंग्य तत्त्व से युक्त स्वीकार करके उनके व्यंग्यार्थ का सूचय किया है और उनमें युक्त काव्य को गुणाभूत व्यंग्य काव्य को श्रेणी में रखा है यद्यपि उन सब में वाच्य का सौंदर्य व्यंग्य का अयमास अधिक हुआ करता है। ये अलङ्कार हैं—समासोक्ति आगेप अग्रस्तुतप्रशंसा अनुत्तनिमित्ताविशेषोक्ति, अपह्नुति, दोषक पर्यायोक्ति सङ्कर इत्यादि। इनमें से कुछ अलङ्कार कानिदास के काव्य में यत्र-तत्र प्राप्त हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

समामावित—

शनपयुक्त विशेषणा द्वारा अप्रवृत्त (क व्यवहार) का कथन—समान सशेषण उक्ति (अर्थात् दो अर्थों का सशेषण में कथन होने के कारण) समासोक्ति अलङ्कार कहलाता है।<sup>१</sup>

कुमारसम्भव के लुताय सग में वसन्त ऋतु के वणन में समामावित की सुन्दर योजना हुई है—वसन्त का समागम होने ही दूज के चन्द्रमा के समान टेढ़े रत्नवण के अधविकसित, धनभूमि में विकीर्ण, पलाश के पुष्प ऐसे लग रहे थे माना वसन्त ने वनस्थलियाँ के साथ विहार करके, उन पर जपन नक्षत्रत बना दिए हैं।<sup>२</sup>

यहाँ प्रस्तुत वसन्त-वनस्थलियाँ के साम्य से अप्रस्तुत नायक नायिका के व्यवहार का व्यञ्जना होता है किन्तु यह अप्रस्तुत अर्थ प्रस्तुत अर्थ का हा उक्तीर्थायक होने के कारण गुणाभूतव्यंग्य का स्थल बन रहा है।

रात्रि का वणन करता हुआ कवि कहता है—इस समय चन्द्र ऐसा प्रनीत हो रहा है जैसे वह अपना (किरण) अगुलिया से रजना के मुग्धमण्डल पर पयस्त बंश समूहों को हटाकर उसका मुख चुम्बन कर रहा हो और रजनी भी उस चुम्बन का आस्वाद लेने के लिए जपन कमल-नेत्र को निमालित किए बैठा है।<sup>३</sup>

१ ध्व० पृ० ५०३

२ का० प्र० सूत्र १४७

३ कुमारसम्भव ३।२६

४ कुमारसम्भव ८।६३

यहाँ प्रस्तुत चन्द्र-रजनी के साम्य से नायक-नायिका के व्यवहार की व्यजना हो रही है किन्तु यह व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ का ही सौंदर्य बधन करने के कारण, गुणीभूत व्यंग्य के अन्तर्गत आ जायेगा ।

मेघदूत म निर्विध्या नदी का वणन करता हुआ यक्ष कहता है—'निर्विध्या तुम्हारे वियोग में बेणीवत् वृक्ष हो गयी होगी, और तट स्थित वृक्षा के पर्ण गिरने के कारण उसका वण पीत हो गया होगा । हे मेघ ! अपना इस वियोग दशा को दिखाकर, वह यह कह रही होगी कि मैं तुम्हारे वियोग में क्षीण हाती जा रही हूँ ।'<sup>१</sup>

यहाँ मेघ-निर्विध्या के मायम से नायक-नायिका के व्यवहार की व्यजना हो रही है, किन्तु यह व्यंग्याथ वाच्याथ का ही उपस्कारक बन जाता है ।

हे मेघ ! तुम्हारे समान अनेक मेघखण्ड, वायु के क्षान्ति-के साथ, वहा (जलका-पुरी में) के उच्च भवना के अप्रमाण में पहुँचकर, वहाँ स्थित चित्रा को अपने जलकणों से आद्र कर और फिर शास्त्र हा धूम का रूप ग्रहण करने में निपुण, शङ्कित होकर वातायन भागों से जजर होकर निकल आत हैं ।<sup>२</sup>

यहाँ भी प्रस्तुत द्वारा अप्रस्तुत नायक नायिका की गतिविधिया की व्यजना हो रही है, किन्तु वह प्रस्तुत का हा शोभावधन होने से गुणीभूत व्यंग्य का स्थल बन रहा है ।

पर्यायोक्त—

वाच्य वाचकभाव के दिना (व्यजना व्यापार-द्वारा प्रकारान्तर से) जो (वाच्याथ का) वधन करना, वह पर्यायोक्त (अलङ्कार कहलाता) है ।<sup>३</sup>

रघुवश क द्वितीय सर्ग में पर्यायोक्त के सुंदर स्थल प्राप्त होत हैं । दिन भर अपने सचरण से दिग्गता का पवित्र कर, अब दिन के अवसान समय नवकिसलय सी अरुण सूर्य का आभा न तथा मुनि की धेनु नदिना ने निलय की ओर चलने का उपक्रम किया ।<sup>४</sup>

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य की चाखता अधिक है ।

'संध्या बेला में, वसिष्ठ की धेनु के पीछे वन से लौटे, राजा का मुदक्षिणा अपलक नेत्रों से देखता रह गई मानो वह बहुत देर में राजा क रूप-सौन्दर्य को पान करने की प्यासी हा ।'<sup>५</sup>

१ सू० मे० २१

२ उ० मे० ८

३ का० प्र० सूत्र १७४

४ रघुवश २।१५

५ रघुवश २।१६

यहाँ व्यंग्य की अपेक्षा वाच्य का शीघ्र अधिक है अतएव यह गुणाभूत व्यंग्य के अतगत आ जाता है ।

रघुवश के पष्ठ मग म पयायोत का जिस निपुणता म योजना हुई है, वह प्रशस्तनीय है । स्वयम्बर के अवसर पर, देशान्तर से आय आठ राजाओं क परिचय म कवि न सवया अपनों मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया । मगधरवर की प्रशंसा करती हुई मुनगा इन्दुमती स कहता है—

यदि तुम इनक साथ विवाह करना चाहता हो, तो अवश्य करो । क्याकि जय तुम विवाह कर इनक साथ ( इनरी ) राजधाना ( पाटनीपुत्र ) में प्रवेश करोगी तब तुम्हारे ( दिव्य ) शीघ्र का देखकर वहाँ का मिथ्या को बड़ा मुम मिलगा ।'

यहाँ पर, हे राजकुमारा ! इनक साथ म स्त्रियाँ तुम्हारा बड़ा स्वागत करेंगी इसलिए इच्छा हो इनके साथ विवाह कर लो, यह व्यंग्य हो रहा है किन्तु इस व्यंग्यार्थ का अपेक्षा वाच्य म चाहता अधिक है अत गुणाभूतव्यंग्य के अतगत आ जाता है ।

पुन जङ्गराज क समझ पहुँचकर कहता है— प्रख्यात है कि, लक्ष्मा और सरस्वती म स्वामाविक विराय है फिर भी इनके यहाँ दोना परस्पर मैत्रीभाव से रहती हैं । हे कन्याणि ! तुम रूप म लक्ष्मा के समान एव वाणा म सरस्वती के समान हो, अतएव उन दाना क साथ मिलकर उनका भा तासरी हो जाओ ।'

यहाँ यह नृप रूप और विद्या दोना से मण्डित है, अत यदि इच्छा हो तो इनके साथ विवाह कर लो इस व्यंग्य अर्थ का अपेक्षा वाच्य म शीघ्र अधिक है अत गुणाभूतव्यंग्य काय की कोटि म आ जाता है ।

अनूपराज के देश म नर्मदा का प्राकृतिक शाभा अनुपम है । नर्मदा के अभिनव अभिराम-दृश्य का वणन करती हुई कहती है— यदि तुम भवन क क्षराद्ये म आसान हो मुन्कर तरङ्गावाला नर्मदा के मनोरम दृश्य देखना चाहती हो, तो इन महाराज की अङ्कलक्ष्मी बन जाओ ।'

यहाँ भी इस राजा का राजभवन नर्मदा के अत्यन्त समाप है इस व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य की चाहता अधिक उत्कर्ष युक्त है ।

राजा सुपेण का वधन करती हुई कहती है—'इनके साथ पाणिग्रहण कर, आप धनपति के चैत्ररथ नामक उद्यान से अधिक सुन्दर, वृन्दावन में मृदु प्रवाल एवं पुष्पा की शैल्या पर विहार काजिये ।<sup>१</sup>

यहाँ भी हे बाले ! उनका राज उद्यान की शोभा अद्वितीय है, अत यदि अभिलाषा हो तो इनके साथ विवाह कर ला इस योग्य अथ की अपेक्षा वाच्य का सौंदर्य अधिक उत्कृष्ट है ।

इसी प्रकार शेष राजाया के वधन में भी पर्यायात्त का निवन्धन हुआ है ।

दीपक—

जहाँ प्रवृत्त (प्राकरणिक अर्थात् उपमेय) तथा अप्रवृत्त (अप्राकरणिक जयति उपमान) के (त्रियादिरूप) धर्मों का एक बार ग्रहण किया जाए (अर्थात् जहाँ एक ही त्रियादिरूप धर्म का अनेक कारकों के साथ सम्बन्ध हो, वहाँ त्रियादीपक नामक दीपक का एक भेद होता है । इसी प्रकार (२) बहुत सी त्रियाया का एक ही कारक से सम्बन्ध किया जाए, वह दीपक अलङ्कार का दूसरा भेद अर्थात् कारक दीपक माना है ।<sup>२</sup>

कुमारसम्भन में हिमराज सप्तर्षिया से विनम्र प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'हे सप्तर्षिया ! मैं अपने को दो प्रकार से पवित्र मानता हूँ, एक तो मेरे सिर गङ्गा की पवित्र धारा गिरत में तथा दूसरे आप लोगों के चरणा का प्रक्षालन व्याप्त कर लेने से ।<sup>३</sup>

यहाँ अनेक कारकों का एक त्रिया से सम्बन्ध होने में त्रियादीपक है । यहाँ चरण एवं पवित्र धारा में साम्य द्वारा उपमा का व्यञ्जना होती है साथ ही उन दोनों का (चरण धारा) सम्बन्ध हिमवान में होने के कारण उनकी पवित्रता की व्यञ्जना होती है, किन्तु इस योग्य की अपेक्षा वाच्य का चारित्र्य अधिक हान से गुणीभूत व्यंग्य का स्थल माना जायेगा ।

उत्तरमेघ में यश अपनी प्रिया के विरहा जीवन का चित्र ब्रीचन हुए कहता है—'या तो वह देवताओं की पूजा कर रही होगी, या अनुमान से मेरा चित्र अङ्कित कर रही होगी अथवा पिंजरस्थ मधुरभाषिणी गीता से—ह रसिक ! क्या तुझे अपने स्वामी का याद आती है ? क्योंकि तू ही उनकी प्रिया है—इस प्रकार की वार्ता करती हुई ललित होगी ।<sup>४</sup>

१ रघुवत् ६।५०

३ कु० स० ३।५७

२ का० प्र० सूत्र १५५

४ उ० मे० २५

यहाँ अनेक त्रियात्रा का एक कारण में सम्बंध हान से कारण दातक है ।  
 इन अतद्धार में यथाणी का विरहावस्था का व्यजना हा रहा है किन्तु यह अथ वाच्य  
 का हो उत्तरपायायक बनने के कारण गुणामुतय्यस्य के अन्यगत आ जाता है ।

सङ्कर—

अपने स्वल्पमात्र में त्रिकला विश्रान्ति न ही (अथात् जा परम्पर निरपम  
 स्वतंत्र रूप में अतद्धार न बात में) उनका अज्ञातभाव हान पर सङ्कर अतद्धार  
 होता है ।<sup>१</sup>

सङ्कर अतद्धार में यथा यथा अधिन अतद्धार । (अथ जयवा जय जयवा  
 दाता का मिषण) का कथन में व्यजना का सम्भावना हा नही रहता अथ  
 इसमें सबन वाच्य में हा चमत्कानि हुआ करता है ।

कुमारसम्भव में पायशा का नत्र प्रामा का कथन करता हुआ कवि कहता  
 है— उस आयतनयना पावता न नत्र हवा से चंचल नात्रमल के समान अधार  
 दृष्टि क्या मुगिया से ला था, अथवा मुगिया न उसन ला था ।

यहाँ हरिणा का दृष्टि के समान पावता का दृष्टि है—यत् उपमा यद्यपि  
 व्यग्य है, तथापि वह सङ्कर रूप वाच्य का हा जगुष्टान्तर करता है, अत्र स्वयं  
 गुणीभूत हो जाता है, क्योंकि उसका पयवमान स दत्त का पुष्टि में हा हा रहा है ।<sup>२</sup>

रघुवश के पष्ठ संग में जङ्गलन के राता का परिचय देती हुए मुत्ता  
 कहती है—'इहनि (त्रिन रात्रात्रा का युद्ध में मृत्यु के घाट उतार दिया) उनका स्त्रिया  
 न स्वामिया के शत्रु में मुक्ताहार ना उतार फेंक किन्तु उनसे रात्न में उनके स्तना  
 पर गिरता है अश्रुवन्तु, मुक्ता के समान प्रताप होता थीं । अत्र उह दलकर  
 एसा प्रताप ठाना था माना इहनि शत्रुजा का स्त्रिया के कण्ठ से मुक्ताहार उतार  
 कर बिना मूत्र का हार पहना लिया हा ।'<sup>३</sup>

यहाँ अश्रुकिन्तु तथा मुक्ताहार में साम्य प्रतिपादित कर, फिर अतिशयोक्ति  
 द्वारा उद्यम अश्रु प्रतिपादन किया गया है । उत्तरधार, बिनामूत्र का हार पहना  
 लिया इसमें विभावना का कथन किया गया है । इन अतद्धारा (उपमा अतिशयोक्ति  
 विभावना) से पसायानि का अज्ञातभाव है । अत्र इनका (अतद्धारा में) गुणभाव  
 होने से यहाँ गुणीभूतय्यस्य है ।

प्रयोदश सग मे सरयू नदी का बणन करते हुए राम कहते हैं—'माननीय महाराज दशरथ से वियुक्त मेरी माना के समान यह सरयू अपने शीतल पवन से प्रेरित तरङ्ग रूप हाथ को उठाकर माना दूर स्थित मुझे कण्ठ से लगाना चाहती है ।<sup>१</sup>

यहाँ महाराज दशरथ एव सरयू मे साम्य द्वारा यद्यपि उपमा व्यग्य है, तथापि तरङ्ग रूप हाथ' म रूपक तथा 'मानो मुझे कण्ठ से लगाना चाहती है' म उत्प्रेक्षा रूप वाच्य को हा उपस्थित करने के कारण, उसका गुणीभूत भाव हो गया है ।

मेघदूत म सङ्कर के अनेक स्थल प्राप्त हात हैं ।

(१) यक्ष की विक्षिप्तावस्था का बयन करता हुआ कवि कहता है—कहाँ तो धूमाम्निमत्तसलिल के सम्मिलन से बना मेघ और कहीं स-देश को ले जाने वाले चतुर लोग । किन्तु यक्ष को इसका ध्यान कहाँ, अत वह अपना स-देश ले जाने के लिय मघ से प्रार्थना करने लगा, क्याकि काम विक्षिप्त को जड-चेतन की मुघ कहाँ रहती है ।<sup>२</sup>

यहा मेघ एव स-देश ले जाना—इन दो अनुत्प वस्तुआ को घटना का बणन होने से विपमालङ्कार है, और उत्तराध म अथा तर-यास का बयन किया गया है । इन दोनो अलङ्कारा की स्थिति होने से सङ्कर अलङ्कार है, जो गुणीभूत व्यग्य के अतगत आता है ।

(२) मेघ के विख्यात वश का बयन करता हुआ यक्ष कहता है—ह मघ ! विश्वमे प्रसिद्ध पुष्कर एव आवत नामक वश मे तुम्हारा ज म हुआ है । मैं यह भी जानता हूँ कि तुम इन्द्र के दूत तथा यथेच्छया रूप धारण करने म समय हा । इसलिये प्रिया से दूर स्थित, मैं अभागा अञ्जलीबद्ध होकर तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ, क्याकि गुणा के सम्मुख हाथ फैलाकर भी निराश लौट आना श्रेयस्कर है, अधम स इच्छित फल प्राप्त करना ठीक नहीं ।<sup>३</sup>

यहाँ मेघ के प्रियतर आम्थान का बयन होने से प्रय अलङ्कार है तथा उत्तराध म मघ जैसे गुणवान से प्राथना करने का समयन होने से अर्थान्तर-यास है । इनकी स्थिति से सङ्कर अलङ्कार होने से गुणीभूत व्यग्य का स्थल माना जायगा ।

१ रघुवशा १३।६३

३ पू० मे० ६

(३) मेघ स कहता है—'रात्रि समय जब कामिना खिपी अपने प्रमिया के समाप श्रात्रजा में गमन करता है, तो उनकी बेनी सज्जित कल्पद्रुम व पुष्प एवं पत्र कण म स्थित स्वर्ण कमल, हार के मुक्ता इतस्तत् गिरकर गिरकर गिरते हैं। (प्रातः-काल) जब मूय उदित होता है तो इन विह्ला द्वारा उनके गमन माग का सूचना मिल जाता है।'

यहाँ नैरा माग की सूचना व लिए अनन्नादि स पतित मन्दार कुगुमादि आक वारणा व उक्त हान व कारण समुच्चय जनङ्कार है तथा पत्र म पतित मन्दार-कुगुमादि साधना द्वारा अभिसारिकाओं व गमन का अनुमान हान स अनुमान अनङ्कार है। इन दाना अलङ्कारा का स्थिति उनस्कार-उपसृत भावन होने स सङ्कर अलङ्कार है जो गुणीभूत व्यंग्य का स्थल बन रहा है।

(४) अपने गृह का परिचय देता हुआ यग कहता है—ह मेघ ! उस (वापी व) के तीर पर इन्द्रनालमणि स रचिन एक (कृत्रिम) पवत है—जो चारा ओर स स्वर्ण बदला स वष्टित है। यह मण प्रिया को अत्यन्त प्रिय है अतएव विद्युत से युक्त तुम्ह देखता हूँ तो उत्पन्न ही जाता हूँ और उनी पवत का स्मरण करने लगता हूँ।'

यहाँ मघ को देखकर क्रीडानैल का स्मरण हान से स्मरण अलङ्कार है। अथवा लोकातिशया सम्पत्ति का वणन होने स उदात्त अलङ्कार है। इन दोनों की स्थिति हान स सङ्कर जनङ्कार है जो गुणीभूत व्यंग्य के अन्तगत आता है।

आचार्य जगद्वधन क पश्चात् मम्मट ने विस्तार पूर्वक गुणीभूत व्यंग्य पर विचार किया और उन आठ भागा म विभाजित किया—तुल्यप्राधाय, सदिग्ध-प्राधाय, काव्यानिष्ठ अमुदर व्यंग्य अपराङ्ग-व्यंग्य वाच्यसिद्धयङ्ग अगूत व्यंग्य, अस्फुट व्यंग्य।

इही म स कसी की भा स्थिति हाने पर गुणीभूत व्यंग्य माना जायेगा। इनम से एक दा का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

सदिग्ध प्राधाय—

कुमार सम्भव क तृतीय सग म पावती को देखकर शङ्कर की जो अवस्था हुई, उसका वणन करते हुये ऋषि कहता है—चन्द्र क उदय के आरम्भ में समुद्र के

( उद्धेलित हो उठने के ) समान अधीर होकर शङ्कर ने त्रिम्बाकन के समान ( रक्त-वर्ण ) अपरोष्ठ से युक्त पावती के मुखमण्डल पर अपने तीनों नख गड़ा दिये ।<sup>१</sup>

शिव पावती का मुत्त-सुम्बन करना चाहते थे—यह प्रधानत्वन व्यग्य हो रहा है, अथवा वाच्य रूप नत्रा का व्यापार (दिलना) प्रधान है—यह सन्देशास्पद होने के कारण, यहाँ गुणीभूत व्यग्य माना जायगा ।<sup>२</sup>

कानिदाय के वाच्य में गुणीभूत व्यग्य के स्थल बहुत कम प्राप्त होते हैं । सच तो यह है कि, महाकवि का लेखनी से जो भा शनोक प्रसूत हुआ, वह ध्वनिवाच्य का ही उदरुष्ट उदाहरण बन गया जिनमें किसी भाव या रस की ही प्राधान्येन व्यञ्जना होती है । अतः व्यग्य का ही उनका वाच्य में महत्त्व है । फिर भी यत्र तत्र जो भी उनका वाच्य में गुणाभूतव्यग्य के स्थल प्राप्त होते हैं, उन्हीं का विवचन इस अध्याय में किया गया है ।





## कालिदास की शैली में व्यञ्जक योजना का वैशिष्ट्य

(क) कथानक की व्यञ्जकता—

अक्षरादिरचनव योग्यते यत्र वस्तुरचना पुरातनी ।

नूतने स्फुरित काव्यवस्तुनि ध्यक्तमेव सनु सा न बुध्यति ॥'

काव्य में पौराणिक कथानक का महत्व—

काव्य में पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मानव का अपने पुरातन देवा देवताओं तथा राजाओं के प्रति अटूट विश्वास एवं प्रेम होता है। पुराणा में प्रायः एम-व्यक्तिया का चित्रण किया गया है, जो इसी मानव-समाज के अङ्ग थे इसलिए समाज उन पौराणिक वृत्ता में अपने हा जावन तथा अपना ही कहानी का सत्य रूप में पाता है। पौराणिक व्यक्तिया की प्रसिद्धि तथा लोक-प्रियता का मही प्रधान कारण है कि वे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण काव्य कर गए जो मानव-समाज के बहुत कुछ पथप्रदर्शन का काव्य करते हैं। अतीत की स्मृति केवल सुखकारी ही नहीं होती वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी भी होती है। पुराण युग की जिन बातों को हम जानत समझते रहते हैं—उही बातों को कवि जब अपनी भावना एवं कल्पना के आधार पर मूल रूप प्रदान कर काव्यबद्ध करता है तो वे और भा सजीव एवं मार्मिक हो उठती हैं और हम उनमें लीन हो जाते हैं। सत्य एवं कल्पना के इस अद्भुत समन्वय की मनाप्राप्तता का ध्यान करके ही आचार्यों ने काव्य कथानक के लिये पौराणिक तथा इतिहास-प्रसिद्ध वृत्त की प्रधानता का निर्देश किया है। नितान्त कल्पित कथानक महाकाव्य के लिये उपयोग नहीं मना जाता, क्योंकि ऐसे कथानक

म कवि के अपने उच्च आदर्शों से बहक जाने तथा काव्य के प्रमुख प्रयोजन एवं प्रधान लक्ष्य (कान्तासम्मितयोपदेशप्रदत्व) से भ्रष्ट हो जाना का भय रहता है।

पौराणिक वृत्त काय का सहारा पाकर नव्य, मन्व्य, विश्वसनीय एवं प्रम-विष्णु बन जाता है। इस प्रकार का कथानक लोगो में काव्य के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है और पाठका को इस बात का विश्वास होता जाता है कि काव्य वर्णित यह सत्य इसी लोक का है। पौराणिक कथानक समाजगत आदर्शों को सजीवता से अनुरजित कर देता है और कवि कल्पना को उड़ान के खोलन आकाश से प्रतापि-योग्यता के घटातल पर ला खड़ा करता है। जिससे हम उसके साथ साधारणाकरण तथा तादात्म्य स्थापित करने में बड़ा सुगमता होती है। यह सत्य है कि काव्य में कल्पना का विशेष स्थान रहता है किन्तु प्रसिद्ध कथानक का आशय से वह उपमा का कारण नहीं बनने पाता।

काय में पौराणिक तथा ऐतिहासिक वृत्त का रखने का एक विशेष कारण और है—वह यह है कि उसके अध्ययन में पात्रों के जीवन एवं स्वभाव के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है क्योंकि उसका समग्र रूप हमारे सामने रहता है। यदि वर्तमान पात्र के जीवन का आशय लिया जाय तो उसका ठाक ठोक चित्रण नहीं हो सकता क्योंकि किस व्यक्ति के आगामी जीवन में क्या परिवर्तन होगा इसको नहीं जाना जा सकता। अतएव इस प्रकार के पात्र का संयोजन करने में बड़ा भय रहता है, हो सकता है हम उसके चरित्र में जिस गुण का वर्णन करने जा रहे हैं—वह आगे चल कर उसके चरित्र में न घटित हो तो इस स्थिति में काव्य विश्वजनान न होना पायेगा—वह अविश्वसनीय तथा तिरस्कारयोग्य हो जायगा।

महाकाव्य में किसी के सम्पूर्ण जीवन की प्रत्येक कथा का वर्णन नहीं किया जाता, अतितु कवि उसके जीवन का केवल उतना ही जरा उद्धृत करता है जितना काय रस विशेष के लिए उपयोगी होता है। इसीलिए आनन्दवर्धन का मत है कि विभाव, अनुभाव तथा संचाराभाव की उचित योजना द्वारा सुन्दर (प्रसिद्ध पौरा० ऐति० इत्या०) या कल्पित कथानक में मुक्त प्रबंध ही रस का व्यञ्जक होता है। उसमें मनोनात रस की प्रतिकूल घटनाओं का त्याग तथा अनुकूल घटनाओं की कल्पना भा की जा सकती है। यदि उतने में ही वह अपने पात्रों के अमोघ चरित्र का समग्र रूप से प्रदर्शन कर सका तो मानो उसने पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली। कालिदास के काव्यों का कथानक कल्पित भा है तथा ऐतिहासिक भी। रसभाव की

भ्यजता व अनुकूल अनक मनारम् प्रयुक्ता की महाकवि न अनक स्थला पर वन्दता मा की है, जो न किये पुराण म मितन हैं न इतिहास मे त्रिन्तु फिर भा सबथा समानान गत हैं अस्तु ।

### नुमारमम्भव—

शिव एव पावता का कथा प्राचानकाल स प्रसिद्ध रही है। यामाकि रामायण म शिव द्वारा काम भस्म का कथा का उन्नत मात्र किये गया है। राम द्वारा आश्रम व विषय म पूत्र जान पर गुप्त विश्वामित्र कहते हैं— राम । मुना यह विश्वका आश्रम है। पहन कल्प अर्थात् कामन्द मूर्तिमान था। एक समय यहाँ हा शङ्कर भगवान व्रत लेकर तर करत थे, तर उस त्रुद्धि काम न उन पर आश्रमण करके उनक मनम विकार उदरत कर लिया। तब महामा शिव न हृद्कार करके उमका आर इवा जिसम शरीर व मन अङ्ग म न गिर परे। इस आश्रम पर उमका शरीर नष्ट हुआ था, या मा कहिये कि देवश्वर शङ्कर आ न काय कर यहाँ हा उम अनङ्ग किया था।

पुराणा म न इस शिव पावता का कथा का उन्नत हुआ। मत्स्य-पुराण म काम का भस्म करन वान शिव का वणन है। स्कन्द पुराण म शिव-पावता का कथा विस्तृत रूप म जायी है—पावता भगवान् शिव की सेवा कर रहा था। उसा समय वसंत व माय काम न उनक मन म विकार उन्नत करन का प्रयत्न किया। कारण जानने पर शिव अत्यंत क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपना प्राधामि स काम को जला कर भस्म कर दिया। यह रोद्रहस्य दग्कर पावता ने भयाकुल हाकर अपन मन बच कर लिए और शिव वहाँ म अर्तिहत हा गये।<sup>१</sup>

शिवपुराण' म ता पावता का शिव का सेवा करन, शिव द्वारा कामदेव को भस्म कर देना, पावता द्वारा शिवप्राप्ति निमित्त घोर तपस्या करना, तपश्चात् उनका विवाह सम्पन्न हान इत्यादि का विस्तार व साथ वणन हुआ है।<sup>४</sup>

इन स्थला को देखकर विद्वाना का एसा मत है कि कालिदास न शिवपुराण तथा स्कन्दपुराण स अपनी कथा सामग्री ला है किन्तु अब यह निर्णय हो चुका है कि यह परवर्ती युग की रचनार्ये हैं और इनम कालिदास का ही अनुसरण किया गया

१ वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड २३वा सग ११।१२।१३

२ मत्स्यपुराण लौ०न० ३ पृष्ठ २५०

३ स्कन्दपु० ८।८७

४ स्कन्दपु० पृ० ६२४

है। 'भस्त्र पुराण' का समय अवश्य कालिदास से पूर्व माना गया है किन्तु उसमें इस कथा का विस्तार नहीं दाख पड़ता बवल एव स्थान पर-काम का भस्त्र करने वाले शिव का उन्नेख मात्र हा है। हाँ वाल्मीकि रामायण से कालिदास ने किंचित प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी किन्तु बला की दृष्टि में कालिदास ने उसमें परिवर्तन करना आवश्यक समझा।

इस प्रकार कवि न 'कुमारसम्भव' की कथा सामग्री प्राचीन स्रोतों में ग्रहण की है—किन्तु प्रेम का जैसा ममस्पर्शी एव प्रभावोत्पादक चित्रण किया है—उसके लिए वह किसी भी परम्परा का ऋणी नहीं है। काव्य में जा विविध घटनाओं का गुम्फन हुआ है—वह कालिदास की अपना काव्य-बला प्रतिभा है।

काव्य के नायक नायिका साधारण मानव स्तर पर वर्णित हात हुए भी अलौकिक शक्ति सम्भूत हैं। एव है जगद्विता शिव, दूसरा जगन्माता पावता। कालिदास का भावना क अनुसार उनके लिए पावता परमेश्वर जगत क भाता पिता थे। काव्य में वर्णित उनका विवाह साधारण छा गुम्प का विवाह नहीं है (अपितु दशन के शब्दों में) वह आत्मा का परमात्मा से तथा पुनः का प्रकृति से मिलन का प्रतीक है। वह जगत् क स्रष्टा पुरुष का जगत् का जननी प्रकृति क साथ मिलन है। उनकी कथा के माध्यम से सवत्र, त्याग और भाग सप एव विनास में सामजस्य स्थापित करना हा कालिदास का महान उद्देश्य रहा है।

हिमालय के द्विनिघ रूप का वर्णन—

काव्य का पारम्भ हिमालय के मन्त्र वर्णन से हुआ है। कवि न उसके जन्म तथा स्थावर दाना रूप का कथन किया है। हिमालय क उतुङ्ग शिखर हिम-मण्डित हैं, वहाँ नाना रत्न तथा विविध औषधियाँ उत्पन्न होती हैं; इनके धातुओं वाले उसके शिखर इस प्रकार शोभित हाते हैं—मानो रत्न विरङ्गे मेघध्वजा से मण्डित अकाशत से-या वहा स्थिर हो गयी हा। चाँदनी क समान शुभ्र पूँछ वाली चमरा गाये इतस्तत भ्रमण करती हैं।'

हिमालय के स्वरूप वर्णन क माध्यम से तप विलास में सामजस्य उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है हिमालय पर एक ओर जहाँ वितरगण अपनी त्रिभुतभाआ के साथ केलि क्रीडा में मग्न है वही दूसरा ओर योगी तथा तपस्वी लाग ध्याना-वस्थित तपस्या कर रहे हैं। हिमालय की ही एक चोटा केलास' पर भगवान शङ्कर भी अपनी पवित्र समाधि लगाए घोर तपस्या कर रहे हैं। तप और विलास का यह

वपन बड़ा ही सार्थक तथा कवि का भावना व अनुमात्र है। कारा तब असफनता का कारण समया जाता है और कारा विलास अनिष्ट का सूचक होता है। इसलिये नारनाय ससृष्टि दोनों के सामंजस्य में विश्वास रखा है। कालिदास ने सम्पूर्ण काव्य में तब प्रेम में साहचर्य उरस्थित किया है इसलिए प्रारम्भ में हा वह इस आर सक्त करता है जिसमें आगे चलकर उतका यथेष्ट पलनवन ही सब।

नख शिरा वपन—

कवि का अनुमम काव्य कला, नवयौवना पावता क नख शिरा क चित्रण में प्रस्तुतित है। वह काव्य क्या था यज्ञा का एक मात्र अनुमम सृष्टि था। उनको देखकर ऐसा प्रतात होता है कि विधाता क चित्त में यह कुतूहल हुआ कि सतार क समस्त सौंदर्य का यदि एक स्थान पर एक कर् लिया जा रहा तो वह कैसा हो ? इसलिये उन्होंने उसमें एक-एक अङ्ग का बड़े ध्यान में रचना की थी। विधाता ने लावण्यापात्क जितना सामग्री एकत्रित की थी व भी पावता का गोल और मुटोल जाया क निमाण में ही समाप्त हो गया था इसलिये शेष अङ्ग का रचना क निमित्त उन्हें और सौंदर्य विधायक उपकरणों का जुगत में अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ा।<sup>१</sup> पावता क रूपवर्णन में कवि की मनाहर कल्पना का मनोरम उमालन हुआ है। प्रारम्भ में हा पावता के अनुमम सौन्दर्य क वर्णन का विशेष प्रयोजन है। यदि वह अनुमम मुंदरा नहा हागा तो समाधिस्तर शिव की अना आर आर्कषित न कर सकेगा। तपोभूमि में भी जल काम शिव क दिग् रूप का देखकर भयभाय हा जाता है तो उम पावता क आकर्षित्व सौन्दर्य का हा सहारा मिलता है। इसलिये कवि पावता क विषय में और कुछ कहने में पहन उनका अपूर्व रूप शशि का वर्णन करना श्रेयस्कर समझता है।

पावती के प्रेम का बीजारोपण—

एक दिन पावता जब अना पिता क समाप बैठा हुआ थी तभी ऋषि नारद का सहसा आगमन होता है और व नवयौवन में पदार्पण करती हुए पावता का देखते हैं एव इस बात का उद्भावना करने हैं कि वह पूवज में म शिव जा का परना थी और अब भा उनका त्रिधाह उहा क साथ हागा। नारद का यह उक्ति पावता क प्रेम क उद्घापन का काम करती है और शिव क प्रति उनका हृदय में प्रेम का बीजारोपण करने में सहायक सिद्ध होता है। उनका हृदय शिव क प्रति आर्कषित्व होने लगता

१ कुमारसम्भव १।४८

२ कुमारसम्भव १।३५

३ वही

४ वही, १।५०

है और वह पिता की जाना लेकर सखा के माथ शिव जा का मेवा बग्ने लगती है । यद्यपि जितद्रिय शिव को यह अच्छा नहीं लगता है, किन्तु व उनकी भक्ति भावना का ठेस न पहुँचाना चाहते थे—इसलिये उह अनुमति द दते हैं क्याकि जो सच्चा धीर महामा होता है उसका मन विकार उत्पन्न करने वाली वस्तुओ क बीच रहकर भी विचलित नहा होता ।<sup>१</sup>

शिव-पावती के इस प्रसङ्ग को अधिक विस्तृत रूप न देकर-कवि यही समाप्त कर देता है और चूनासुर द्वारा त्रिशित देवताओ का ब्रह्मा क साथ गमन का क्याणव उपस्थित करता है, जो कामदेव को शङ्कर के समक्ष उपस्थित होने का हेतु बनता है ।

उत्पादित देवगण ब्रह्मा से कर्ण स्वर म प्राथना करने हैं कि 'ह ब्रह्मा ! आप हमारे कष्ट का निवारण कीजिये । ब्रह्मा उह राशगमन दते हैं और कहते हैं—महादेव क वीर से उत्पन्न होने वाला पुत्र हा इस भयङ्कर असुर का सहार करने मे समर्थ होगा । आप लोग कोई ऐसा उपाय काजिय जिमम समाधि मे लगे हुये शङ्कर का मन पावती के रूप की ओर आकर्षित हा जाय । यह सुन इन्द्र को विञ्चित घैय भिनवा है और वह कामदेव का स्मरण करने हैं ।

### कामदेव

इन्द्र की जाना न कामदेव उनके दरवार म उपस्थित होता है । इन्द्र उससे प्राथना करत है कि तुम को ऐसा उपाय करा जिमम शिव जो आत्मा को परमात्मा के ध्यान म लाने कर ममाधि लगाए बैठे हैं उनका हृदय हिमवान की ब-या पावती की ओर आकर्षित हो जाये—जा उनका सेवा कर रहा हैं । इस काय के लिये सब देवता तुमसे अनुमय कर रहे हैं ।

यह सुनकर कामदेव घबरा जाता है क्याकि शिव जो जैसे योगी एव हटो मन बाल की समाधि भङ्ग करना काइ बच्चा का खन न था किन्तु देवताओ की भलाई का विचार कर आना पालक सेवक का भाँति 'तथास्तु कहकर उनकी जाना का पालन करता हुआ शिव की तपाभूमि म पहुँचना है ।

### वसन्त का आगमन—

कामदेव न वसन्त के साथ शिव का याग भूमि म असमय म जिस उद्दाम एव उमत्त वातावरण की सजना की—वह यद्यपि क्यानर क विकास के अनुकूल था, किन्तु भैतिक न था ।

सम्पूर्ण कुमारसम्भव म कवि का यही काय अनैतिक एव अनुचित समझा जाता है। किन्तु अनैतिक क्या? कवि इसके लिए पहले से ही सावधान है उसने पहले ही यह स्पष्ट कह दिया कि इस काय में कामदेव की कोई स्वेच्छा एव स्वाय नहीं है। उसने देवताओं के कथाएँ एव वृत्रामुर के अत्याचार में प्राप्ति प्राप्ति करती हुई प्रजा के सुख के लिये यह काय किया है और जो काय परमुख एव कल्याण के लिए किया जाता है जिसमें 'यति' का अपना कोई स्वाय निहित नहीं रहता—यह काय कभी भी अनैतिक नहीं होता अशुचित नहीं होता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि कामदेव एव दत्ता हैं और दत्ता भोग जो काय करने हैं—यह सदैव दूसरा की भलाई के लिये ही करते हैं। यहाँ है महाकवि ने उद्देश्य की गरिमा। देव स्तुति की इस कथा का रखने का विशेष कारण है। वस्तुतः यह प्रसङ्ग शिव-पावती के विवाह एव कार्तिकेय के जन्म के निमित्त रूप में आया है। शिव पावती में विवाह उनकी रूपासक्ति से जाकर्षित ही नहीं करते, बल्कि लोक-कल्याण एव दत्ताओं की इच्छा से करते हैं क्योंकि उनके लिए भक्तिगत सुख का कोई महत्त्व नहीं है।

कामदेव दहन और उसका प्रतीकाय—

मन में विकार उत्पन्न करने वाले कामदेव के इस काय से शिव जी बड़े ही क्रोधित होते हैं और अपने क्रोध का ज्वाला से उन जलाकर क्षणभर में भस्म कर देते हैं। कवि द्वारा वर्णित काम-दहन का अपना एक विशिष्ट अर्थ है।

मानव न केवल शरीर-इन्द्रिय है न केवल मन है और न केवल मानसिक विचार। अपितु पूरा मानव शरीर-इन्द्रिय मन तथा आत्मा की समष्टि है। उसी प्रकार प्रेम के भी तीन स्वरूप या तीन स्तर हो सकते हैं। (१) शारीरिक ऐंद्रिक या वासनात्मक प्रेम (फिजिकल लव एव आफ लव)। (२) मानसिक प्रेम (इमोशनल इंटेलक्चुअल लेवल आफ लव)। (३) आध्यात्मिक प्रेम (स्पिरिचुअल लेवल आफ लव)। जब प्रेम का उत्स शारीरिक या ऐंद्रिक सौंदर्य पर आधारित होता है तब ऐसा प्रेम केवल पार्श्विक प्रेम होता है और स्वस्थ दृष्टि रखने वाले मानव का कर्तव्य है कि अपनी आध्यात्मिक ज्योति से ऐसे वायनात्मक प्रेम को भस्माभूत कर दे।

कुमारसम्भव में वर्णित 'कामदहन' में प्रथमतः काम इसा ऐंद्रिक-वासनात्मक या पार्श्विक प्रेम का प्रतीक है। विश्व सुदरा पावती के रूप वर्णन मात्र से शिव के मन में प्रेम या काम उत्पन्न होता है। पावती के अनुपम सौंदर्य से जो आवरण प्रस्फुटित होकर शिव के मन में हलचल उत्पन्न करता है, वही काम के वाण है। पावती के मन और आत्मा का परलक्ष किये बिना, मात्र बाह्य रूप सौंदर्य से शिव के

मन मे काम का जागरण होता है। इसका सामना करने के लिए शङ्कर की सारी आध्यात्मिक ज्योति जग उठती है और जगो काम भावना मुट्ठ मानसिक तथा आध्यात्मिक अग्नि स भस्मीभूत हो जाती है। कुमारसम्भव मे 'कामदहन का यहाँ गूढार्थ है। 'कामदहन' के माध्यम से महाकवि कालिदास ने मानो उदात्त प्रेम भावना का व्यञ्जना का और स्वस्थ मानव प्रेम का सन्देश दिया। महाकवि के अनुसार, जो प्रेम केवल बाह्यरूप सौन्दर्य से उत्पन्न होता है बिना मन-आत्मा को निष्ठा के, वह विकार है, निवृष्ट है, अतएव ऐसे काम के वशीभूत न होकर, स्वयं सयम को उसका दहन करना चाहिये। किन्तु जब अन्तःकरण की निष्ठा, अनयता स्थिरता तथा आध्यात्मिकताभूत भावना से प्रेम उत्पन्न हो, तब ऐसा काम 'स्वस्थ काम' है और वह दो निष्ठावान आत्माओं के ऐक्य का सम्भूत प्रतिफलन है अतएव स्पृहणीय है। महाकवि कालिदास इसी पूर्ण प्रेम के समर्थक हैं। रूप दर्शन मात्र से जिनमे प्रेम उत्पन्न होता है कालिदास उन सभी पात्रों को तपोधनी बनाते हैं और तपस्या के पश्चात् जब मन-आत्मा शुद्ध हो जाते हैं, तभी 'स्वस्थ काम' का समर्थन करते हैं। दुष्यंत शकुंतला के प्रथम मिलन मे भी रूपाकर्षण की प्रमुखता है। यही कारण है कि कालिदास शकुंतला से तप करवाते हैं तब जाकर अन्त मे तपोवन मे शकुंतला और दुष्यंत का पुनर्मिलन होता है।

कुमारसम्भव मे वर्णित, 'कामदहन और फिर काम पुनर्जीवन मे इसी स्वस्थ, उदात्त, परिपूर्ण प्रेम की अभिव्यञ्जना की गई है। यदि इही दोना पशुओं के गूढार्थ समझ लिया जाए तो न 'कामदहन' आलोचनीय है और न विवाहापरान्त शिव-पार्वती विनास हो निन्दनीय है। दोना पूर्ण तथा उदात्त मानवीय प्रेम के आवश्यक अङ्ग हैं। इम प्रसङ्ग के माध्यम से कालिदास का प्रेम सन्देश या प्रेम-दर्शन आज भी उतना ही सत्य है, जितना प्राचानकाल मे था।

रूप सौन्दर्य मात्र से सच्चे प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती—

कामदेव के अनैतिक कार्य से शिव बड़े हा विघ्न हो जाते हैं और अपन सहचरों के साथ पावती की उपेक्षा करके शीघ्र ही उस स्थान से अतर्हित हो जाते हैं। यह देख कर पावती दुःखी एवं लज्जित हानी हैं शिव न उनकी सखियों तथा पिता के सम्मुख उनका रूपाकर्षण का साक्षात् निरादर किया है यह देख पार्वती इस बात को भली प्रकार समझ लेती हैं कि शिव बाह्य सौन्दर्य मात्र से आकर्षित होने वाले साधारण पुरुष नहीं हैं। अतः वह बठार साधना और तपस्या द्वारा उन्हें प्राप्त करने का निश्चय करती हैं। कवि बाह्य सौन्दर्य से उत्प्रेरित प्रेम को सदैव निम्न मानता रहा है इस प्रकार के प्रेम मे स्थायित्व का लेश भी नहीं होता।



मात्राय मन्त्रित्त में प्रेम का स्वस्व बड़ा ही उच्च है। यह हृदय का मध्या नाचना पर आधारित प्रेम का सम्यक् करता है। कावित्वात् भाष्य का नाचना म पवित्र एवं निमल रूप में उद्ग्रेयत प्रेम का ही सर्वोच्च मानत है।

रति का प्रमत्त और वरणा रग—

कावित्वात् न जहाँ पावता व माध्यम से प्रेम का आत्मा रगा वही दूषण आर रति व माध्यम से प्रेम का धनानुवृत्ता तथा पतिव्रता नागा व आत्मा का उपस्थित किया है। पति का मृत्यु व उरगा व वृत्तियों को कुल नहीं कहता सारा दाय अनन का दता है और सावता है कि मर हा बन धर में किना प्रकार का वृत्ति हुई है त्रिभुज काम उत वप्र हा धार कर बना गया है।

यहाँ है नागा का उच्चादा। पति का मृत्यु व पश्चात् रति का अब इहवाक म रह हा करा गया था। भारतीय पतिव्रताशा का मध्यम तो पति का मृत्यु व माय हा समान हा जाता है। यह कावित्वात् क युग का मन्त्रित्त का प्रभाव था और हमारा भारतीय सनातन धर्म। उद्य युग म म्त्रिया पति का विवा पर व्रत कर भस्म हा जाता थी।

रति का यह प्रमत्त जहाँ एक आर पतिव्रता नागा व उच्च आत्मी का व्यक्त है, वही दूषण आर वरणा रग का मायिक व्यक्तता भा करता है।

पावती तपस्या—

मानवय धरातल पर स्थित पावता तापार्थ मर क्षेत्र में प्रवेश करता है। अनन रूप का महत्त्व तन वाला पावता जो अब तक यह समझता था कि मसार म रूप का जाकपण है वहा आत्र मानसिक एवं शारीरिक रूप का मध्यम दन मगता है निता द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-वैभव का त्याग कर हाय म रगा का माना ल वक्ल धारण कर मागान् योगिया का वेत्त बनाकर तर करना प्रारम्भ करता है। कवि कहता है— जो कभी अनापान मन्त्र-भारत एक जाया करता था वगैरे मुनिया व समान वडाए वन रावन म वर हा गई है। उनका वरार तो समस्त जाकपण का वदर था आत्र कुहवाकर श्यामल ता गगा है। त्रि व विद्यापानल म व्रत रहा पतिव्रता त्रि चरन क सत तथा हिम पृहा का उर्रिता चट्टाना म भा वैन नहीं मितता था उन हा अब उठ का तुहरो म पचालि व मन्त्र वटित तन वरत दत्त आरव्य हाता है।<sup>१</sup> वया का अविवाह रति विद्युत रूप जना जीवा म पावता

१ कुमारसम्भव ४।८

० कुमारसम्भव ५।१

३ वही ५।५५

४ वही ५।२०

की उग्र तपस्या को देख, दयार्द्र हो आसू बहान लगती है। पावती की सारी तपस्या शिव की प्राप्ति के लिए उपायभूत है। कवि यह कहना चाहता है कि जो पावती केवल ऐश्वर्य के वातावरण में पालित थी, वे केवल कोमलाङ्गी ही नहीं अपितु घोर तपस्या भी कर सकती हैं जिस देखकर शिव का जासन भा डाल जाता है।

सच्चे प्रेम का शिव पर प्रभाव—

पावती की एकनिष्ठ तपस्या के वशीभूत होकर, शिव स्वयं ब्रह्मचारी का वेप बनाकर-परीक्षा लेने के लिए पहुँचते हैं, ता अतिथि सत्कार करने वाली पावती बड़े सम्मान पूर्वक उनका सत्कार करती हैं।<sup>१</sup> अर्थात् प्रेमी शङ्कर जो एक दिन उनके सुकुमार सौन्दर्य का विरस्कार करने चल गये थे, वे इस बात का अच्छी प्रकार जान लेते हैं कि पावती ऐश्वर्य-वैभव तथा इन्द्रादि लोकपाला के दिव्य रूप की आकांक्षा नहीं है<sup>२</sup> वे तो मन-वचन से केवल शिव को ही चाहती हैं और मन हा मन शिव के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर चुकी हैं। वे उनकी तनिक भी निन्दा नहीं सुन सकती। यह देख शिव बड़े प्रसन्न हाने हैं और अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर देने हैं। और कहते हैं— 'तुमने अपनी तपस्या में जिस जीव लिया है यह वही तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है।'<sup>३</sup>

यह था पावती की कठोर साधना का परिणाम। उनकी कठोर तपस्या जितना इस बात पर जार नहा दती कि तप से उह कष्ट हुआ, जितना इस बात पर कि पावती का प्रेम एकनिष्ठ और जनय है। उहाने अपने हृदय की सारी भावनाओं को शिव के ध्यान में ही लगा दिया है। पहले वाला उनका चंचल मन, तप की मापण अग्नि में तपकर स्थिर और एकाग्र हो गया है और जैसे ही उनका चित्त एकाग्र हुआ वैसे ही श्रेय और प्रेय के प्रतीक शङ्कर का उह प्राप्ति हो जाती है।

प्रेम के सम्मुख पावती अपना कर्तव्य नहीं भूली—

पावती ने अपना साधना में शिव के स्नेह को प्राप्त कर लिया था किन्तु प्रेम के प्रति एकनिष्ठ हाने हुए भा माता पिता के प्रति अपन कर्तव्य को नहीं भूला। इस प्रकार पावती जीवन में एक आदर्श कथा रूप में चित्रित की गयी है। यही कानिदास का आदर्श रहा है। उनकी नायिकायें स्वतंत्र नहीं हो पायी हैं। पावती

१ कुमारसम्भव ५।३१

२ यही ५।८६

३ कुमारसम्भव ५।५३

सामाजिक नियमों को विचरुद्ध नही होना देती । यह समाज द्वारा कहलवा देती है कि यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो मेरे पिता पयतराज हिमालय से प्रायता कीजिये ।<sup>१</sup> पावती ने अपना हृदय तो शिव का समर्पित कर हा दिया है किन्तु शरार पर अपने पिता का अधिकार समझती है । सार की मर्यादा और समाज का नियम भी यही है ।

सर्पपिण्ड का हिमानयराज के पास गमन—

सर्वार्थमा शिव भया नहीं कर सक्ते थे किन्तु समाज का मर्यादा का पालन करना उन्होंने उचित समझा । इसलिए वे सत्त्व श्रुति गणा को आदर सहित बुलाते हैं और कहते हैं— हे मुनिगण ! आप लोग जानते हैं कि हम अपने लिए कुछ नहीं करते । हमारा आठा मूर्तिया (पृथ्वा, जल अग्नि, वायु आकाश सूर्य चंद्र होना) इस बात की साक्षी हैं । जैसे प्यास चाकर, वाष्पता में जल की धूँदे माँगत हैं, वैसे ही शत्रुओं से सताए हुए देवता लोग भी मुझसे पुन उत्पन्न कराना चाहते हैं । इसलिए पुन उत्पन्न करने की इच्छा से, मैं पावती जा को उमी प्रवार लाना चाहता हूँ जैसे अग्नि उत्पन्न करने के लिए यज्ञमान अरणि लाता है । आप लोग मेरा आर स हिमानय से पावता को माँग लीजिये । क्योंकि सज्जन लोग बीच में पड़कर जा सम्बन्ध कराने हैं—उसमें बाधा नही होना, फिर ऐग ऊँचा प्रतिष्ठा वान और पृथ्वा को धारण करने वान हिमालय में सम्बन्ध करके मैं भा अपने को धर्म समझूंगा ।<sup>२</sup>

यह सुनकर श्रुतिगण उनका प्रशंसा करने हैं और चाग्र ही हिमालय के पास पहुँचते हैं ।

पिता का आदेश—

श्रुतिगण शिव का शुभ सन्देश हिमालय राज से निवेदन करते हैं तो वे बड़े हा प्रसन्न होते हैं । किन्तु उनके द्वारा विवाह के लिए पुत्रा एवं पत्नी में भा स्वाट्टि लाना उनके सदगृहस्थ होने का परिचायक है ।

इसके पश्चात् पावता का जा विस्तृत रूप वर्णन है वह विवाह का अङ्ग है तथा पावती के सौंदर्य को बढाने के लिये है जिससे उनका एक उजात रूप समझ आता है ।

इसके पश्चात् कथानक का विकास विवाह का तैयारी, बारात के प्रस्थान तथा शिव के रूप सौंदर्य के माध्यम से विकसित हुआ । विवाह के समय के समस्त

१ कुमारसम्भव ६।१

२ कुमारसम्भव ६।२६ ३० तक

माङ्गलिक क्रियाओं का वणन कुमारसम्भव में हुआ है जिससे तत्कालीन सृष्टि एवं सामाजिक रीति रिवाज का स्पष्ट ज्ञान होता है।<sup>१</sup> वाराणसी के आन से पूर्व पावती का सर्वाङ्ग शृङ्गार किया जाता है, माँ उनका हाथ में कङ्कन बाँधती हैं। फिर विवाह के सब रीति रिवाज को जानने वाली मैना अपने कुन का यश बढ़ाने वाला पावती को से सब कुन के दस्तावेजों को प्रणाम करवाती हैं और फिर सब सखियाँ कंधे पर छुवाती हैं।<sup>२</sup> यह सब कुछ तत्कालीन समाज में प्रसिद्ध वैवाहिक पद्धति का उज्ज्वल स्वरूप है।

### शिव शृङ्गार वर्णन—

कवि ने शिव के शृङ्गार का बड़ा ही उचित समय में वर्णन किया है। प्रारम्भ में कवि ने उनके जिस दिव्य रूप का समक्ष उपस्थित किया है वहाँ उनके शृङ्गारवर्णन का कोई अवसर नहीं था किन्तु जब अवसर मिला तो शिव का शृङ्गारवर्णन भावहीनता के साथ किया, क्योंकि विवाह सौन्दर्य का राजशासन है। मङ्गल सामग्रियों के स्पष्ट मात्र से ही उनके शरीर पर पुती हुई चित्रा का भस्म, अङ्गराग बन गया, कपान, गले में मुन्दर आभूषण बन गए, हाथी का चर्म, रश्मी वस्त्र बन गया और बाचल में गोरौचन से हम के जोड़े छत्र गए। उनके मस्तक का निम्न हस्ताल का सुन्दर तिनक बन गया। और तब ही अङ्गा के सप भी उन उन अङ्गा के आभूषण बन गए और फणा के मणि चमकने लगे। चन्द्रमा उनका चूचामणि बन गया। फिर नन्दी के हाथ का सहारा लेकर सिंह की खाल बिछी हुई, बैन का पीठ पर बैठता, माना शिव जी में भक्ति के कारण कैलास में अपने रूप की छोटी बना लिया हो। मूय ने छत्र का काय किया गङ्गा-यमुना ने चक्र द्रुताया और विष्णु ने जय जयकार करके उनकी महिमा को और भाँटा दिया।<sup>३</sup>

शिव के शृङ्गार वर्णन के माध्यम में उनका महिमा एक दिव्य स्वरूप की ही व्यञ्जना हुई है। इतना ही नहीं उनके शृङ्गार के साथ उनका वरदात्रा की शोभा भी देवी सम्पत्तियाँ सँभरा था।

इसके पश्चात् शिव पावती का विवाह एवं उनका विलास ब्राह्मणों का सर्वाङ्गीण वर्णन किया गया है। कवि ने अष्टम सर्ग में अपने इष्ट रस शृङ्गार को बड़ा विस्तृत रूप प्रदान किया है। विद्वानों ने इस शृङ्गार को अति मानवीय स्तर पर चित्रित

१ कुमारसम्भव ६।५८-६८

२ कुमारसम्भव ७।२५, २६

३ वही, ७।३१-४३ तक

होने के कारण शोष पूण बना है किन्तु यदि हम विचार करें, तो यह सबका निर्दोष पूण शृङ्गार का बणन नगना है। कवि ने एक साधारण स्त्री-पुरुष के शृङ्गार का बणन नहीं किया है अतः यत्र जगत्सिद्धा गिर एव जगन्माता पावता का शृङ्गार बणन है। यह वह शृङ्गार है जिसके लिए देवताओं का प्रसाद न स्तुति करना पडा और जिसके लिए जगत्सर्व का मम्म होना पडा। पावता ने अपना पार संपन्ना शरीर गिर को प्राप्त किया था अतः गिर ने उता का काम प्रसाद का स्वरूप बना दिया है। गिर पावता का विचार नगाने के लिये एव गुच्छना के जागावा के फल-स्वरूप हुआ है - इत्यन्तिरुक्तं च काम मयथा दीप रश्मि ओर आभ्यामिदम् ह।

कविश्याम के समय तक - रा मा म स्तिर पावता के प्रणय का बाद महे न न था इत्यन्तिरुक्तं कविश्याम ने श्यामना गिर-पावता का प्रणय कथा का काव्यरस बनाने में अशोभ साहस का परिचय दिया। कवि ने कहा ना उनही भक्त्यामहस्वरूप का उन्निमित्त नहीं किया कथन प्रणय चित्रा का हा निरानन्द उपात्त स्वर पर चित्रित किया है। यह सब बुद्ध मन्मथी का प्रतिभा का हा परिणाम है।

इस प्रकार कुमारमन्भव के कथानक-संयोजन में घटनाओं के विकास में कवि ने अथना कारचित्रा तथा भावचित्रा प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि का कथानक शृङ्गार रस की व्यञ्जना एव कवि के उद्देश्य का व्यञ्जना में पूण समर्थ है।

रघुवश—

रघुवश एक चरित्र प्रधान महाकाव्य है। इसमें रघुवश राजाओं के जीवन चरित्र का विस्तार में बणन किया गया है। शिवान रघु, जन राम इत्यन्ति मन्वा मूरवश राजाओं के माध्यम में मानव जीवन के महाज्ञान तथा का ज्वलन चित्रण हुआ है। रघुवश का प्रत्यक्ष नरेश अनुपम गीय का ज्ञान प्रताप है एव शास्त्रानुगत न्यायपरतापणता जीवित, भगवान्पतना प्रजापुत्रजन घासुन कुसुमता, दृढचरित्र बणा थम धम-मानन अरुव-उपस्था, नि स्वार्थी मुमुक्षुर्दीय मन्वा उपात्त गुण उक्त सञ्जाय के चरित्र में विद्यमान हैं।

द्वितीय और उत्तरी गो मवा—

महाराज शिवान प्रजापति एव धर्म के महान रक्षक हैं। पुत्र विहान होने के कारण, वे वज्रिष्ठ ऋषि का जाना में अपना भाषा महिष पुत्र लाभ हेतु बडा भक्ति एव श्रद्धापूर्वक नरिणा का सेवा करने लगते हैं। इतना हा नहीं मिह के समर्थ वे नरिणा का प्राण रता हेतु अपना शरीर दान देना भी स्वाकार के सत्त हैं।

दिलीप का इस गौ-सेवा एव अनुपम भक्ति का ऐसा अनुश्रुत वृत्तांत अत्यंत प्रशंसनीय नहीं माना जाता। यह कवि का प्रतिभा की नितांत मानिक सूत्र है जिसे उसने दिलीप के धर्मवीर स्वरूप की व्यंजना के लिए निबद्ध किया। अतः उनके द्वारा सीवा अश्वमेध यज्ञ करना उनकी धार्मिक आस्था को व्यंजित करता है। काव्य का नाम 'रघुवश' दत्तकर पाठका को यह शङ्का हो सकती है कि काव्य का प्रारम्भ रघु के वंश से होना चाहिए, फिर दिलीप का प्रसङ्ग पहले क्या रखा गया ?

इस विषय में पहले भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि काव्य में दिलीप का वंश वस्तुतः रघु के हेतुमूत रूप में किया गया है जिससे उनके महात्मा आदर्शों का सम्मरण रघु के जीवन में सरलता से किया जा सके। ( प्रवृत्ति इव दीप प्रदायात् ) ऐसे उच्च आदर्शों वाले पिता का पुत्र भी अवश्य उच्च आदर्शों से युक्त होगा।

रघु-इन्द्र युद्ध एव कौत्स के आगमन—

रघु इस काव्य के सर्वशक्तिशाली स्वप्न हैं। कवि ने विविध प्रसङ्गों की योजना कर युद्ध दान एव धर्म तीनों प्रकार के धर्म की व्यंजना रघु के माध्यम से की है। इन्द्र के साथ युद्ध कर उन्होंने जिस साहस एव अपूर्व रण-वीर्य का परिचय दिया—वह उनके वीर चरित्र के सर्वथा अनुकूल है। रघु चतुर्विंशती में एकक्षत्र राज्य की स्थापना करते हैं, किन्तु विरोधी राजाओं के साथ युद्ध करने समय भी वे धर्म का पालन नहीं छोड़ते। इस प्रकार यह दोनों ही प्रसङ्ग रघु के युद्ध वीर्य के व्यंजक हैं।

रघु की दान वृत्ति भी सर्वविदित है। उनकी असामान्य दान वृत्ति के कारण ही उनका काव्य भी रिक्त हो गया है। उनके दान विषयक उत्साह की व्यंजना के लिए कवि ने बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से कौत्स के आगमन कराया है। अतः रघु मोक्ष द्वारा शरीर त्याग करते हैं।

काव्य में रघु के जीवन का आद्यतन चित्रण देखकर यह सत्य ही प्रतीत होता है कि काव्य का नाम रघु के नाम पर ही पड़ा है क्योंकि कवि ने बड़ी सम्यक्ता से रघु के जीवन का वंश किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च नैतिक गुणों से युक्त रघु के चरित्र के प्रति, कवि कुछ विशेष झुकाव एव आक्षेप अवश्य रखता था क्योंकि कालिदास ने किसी भी रघुवशी राजा का वंश जन्म से मृत्यु

पसत नहीं किया, बसल रघु हा इसके अपवाद हैं । इस प्रकार काव्य में रघु का चरित्र बढा ही महत्तरपूण है ।

अज—

दा बार चरित्रा क बार प्रसङ्ग को उपस्थित करने क पश्चात् ऐसा लगता है कि महाकवि रस म कुछ परिवर्तन करना चाहते थ । इसलिए अब वह एस नायक को उपस्थित करना चाहते हैं—आ शृङ्गार क सवया उपयुक्त हो । सक्न सोदय स युक्त अज हा एम नामक हैं जा शृङ्गार क आश्रय बन सकत हैं अत कवि न उनक माध्यम स शृङ्गार का मुदर अभि यक्ति का है । बार क पार्श्व म शृङ्गार सबम अधिक सुगोमित हाता है अत शृङ्गार का नायक यदि वीर भा हा—तो उसका आकषण टिगुणित हा जाता है (सोन म मुहागा) अज एक प्रमा ही नहीं अद्भुत बार भा हैं । विरोधा राजाजा क साथ भयङ्कर मुद्ध कर उहनि अपनी जिस वीरता का परिचय लिया—वह उनके कुन परम्परा क अनुकूल था ।

स्वयवर—

स्वयवर क प्रसङ्ग म, अज क माध्यम म कवि न शृङ्गार का जा यजना का है—वह निता ३ मौनिक एक चित्र नवान है । अज एक ब्रह्मा के रूप निमाण का अद्भुत रचना इन्तुमता क शृङ्गारिक अनुभावा एक विभावा का एया अनूठा यणन किना भा काय म नहीं भिदता । इस प्रकार स्वयवर का प्रसङ्ग बढा ही सप्रयाजन है ।

अज विलाप—

एसा लगता है कि शृङ्गार क पश्चात् कर्ण का प्रसङ्ग उपस्थित करना कानिदाम का अम्याम सा बन गया था । अज-इन्दुमता का विवाह हुए अभा थो ही दिन हुए थ कि महमा हा इन्तुमता का निधन हो जाता है और इस प्रकार अज इम कठार वज्रपात का दु ख सहन के लिए अबल रह जात हैं । प्रिया क मृत शरार का दम्बर अज कर्ण विलाप करने लगते हैं । अज के विलाप के माध्यम स एक बार जहाँ कर्ण की मामिक अभियक्ति हुद है, वही दूसरी ओर अज क एकनिष्ठ प्रेम का भी मुत्तर व्यजना हुई है । प्रिया क वियोग म उनका जावित रहना डूमर हा जाता है । अत म वह किछा प्रकार शरारधारण कर—प्रिया की प्रतिवृत्ति का दम्बर कर दिन उताव करन लगते हैं ।

इसके बाद कथानक का विकास दशरथ राम भरत, लक्ष्मण इत्यादि रघुवशो नरशा क माध्यम से हुआ है जा वामीकि-रामायण के आधार पर ही वर्णित है ।

कवि ने इन राजाओं के विषय में कुछ नवीन न कहकर, कथानक की आवश्यकता के अनुसार काव्य में उनका निबन्धन किया है।

महाराज दशरथ अनन्य प्रजावत्सल एवं धर्मप्रिय नृप हैं। राम रघुवश के महान उन्नायक हैं। कवि ने उनका वणन विस्तार के साथ चार सर्गों में किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि—यह अथ यदि रघुवश से अलग कर लिया जाए तो यह एक खण्डकाव्य का रूप ग्रहण कर सकता है। राम एक आदर्श राजा आदर्श प्रजापालक, आदर्श पुत्र, आदर्श-पति, आदर्श-भ्राता हैं। श्रीराम महा प्रस्थान से पूर्व सारे राज्य को चारों भाइयों के आठों पुत्रों में बाँट देते हैं। इनमें कुश सबसे बड़े थे इसलिए राम उन्हें उत्तराधिकाररूप में एक विशेष रत्न देते हैं जो उन्हें अगस्त्य ऋषि से प्राप्त हुआ था। अंत में यमराज की प्रार्थना पर राम वैकुण्ठ गमन करते हैं।

कुश और अयोध्या की नगरवधू—

कुश की राजधानी कुशावती है। उनका विवाह नागवत्या कुशावती से हुआ है। एक दिन रात्रि को जब कुश शयनकर रहे थे उनके शयन कक्ष में अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी का आगमन होता है। उस देखकर कुश आश्चर्य से भर जाते हैं फिर कुछ सजग होते हुए पूछते हैं—हे शुभ ! तुम (अधरात्रि में) मेरे पास किस प्रयोजन से आयी हो। कुश के वह वाक्य उनके चरित्र का उच्चता एवं जितेंद्रियता की व्यंजना करते हैं। तत्पश्चात् वह स्त्रियाँ अपना परिचय देकर अयोध्या की दुदशा का बड़ा ही वर्णन वणन करती हैं और कुश से अयोध्या में निवास करने का प्रार्थना करती हैं। अयोध्या की मार्मिक दशा कथन में वर्णन रस की बड़ी ही सुन्दर व्यंजना हुई है।

कुश के शयनकक्ष में अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी का आगमन और अयोध्या का वर्णन दशा का वणन न किमा काय में और न ही इतिहास में वही देखने का मिलता है। यह कवि की प्रतिभा की मौलिक प्रसूति है। कुश के चरित्र की नैतिक उच्चता एवं वर्णन रस का मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए ही कवि ने उस प्रसङ्ग की योजना का है।

कुश के वणन के पश्चात् कथानक का विशेष विकास नहीं हुआ है। कवि ने कुछ सर्गों में कुश के बाद होने वाले रघुवश के इक्कीस राजाओं का नाम-परिगणन मात्र कर दिया है और अंत में मुदशान के पुत्र अग्निवण की धार विलासिता एवं दुःखद मृत्यु वणन के साथ काय समाप्त हो जाता है।





देता है। रघु वीरस से पूछते हैं—क्या गुब्बोजी ने आपका भली प्रकार पढा लिखाकर प्रसन्न हो घर जाने की आज्ञा दे दी है, क्याकि आप सब आयमा का उपकार करने में समय गृहस्थाश्रम में प्रवेश के योग्य हो गये हैं।

रघुवश में आदश प्रजा का भव्य चित्रण अज एव दिलाप के वणन में प्राप्त होता है। जैसे कुशल सारथी जब 'रथ चलाना है तो रथ का पहिया, रेखा से तनिक भा इधर उधर नहीं होता ठीक उसी प्रकार शिरीष के पास काल में प्रजा, मनु द्वारा निर्दिष्ट नियमों से जरा भी विचलित नहीं होता है। जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का जल पाकर उसका सहस्रगुना जल वृष्टि रूप में लौटा देता है वैसा ही राजा भी प्रजा से प्राप्त सम्पूण कर का शिव-साधना में नियाजित कर देता है। अज, अपनी नातियाँ में केवल अपना आधीनता स्वीकार करवा लेते थे, उन्हें सिंहासन च्युत नही करते थे, जिस प्रकार भयम गति वाला वायु वृक्षा को केवल झुका देता है—उसका उन्मूलन नहीं करता।' कवि ने यहाँ उपमा के द्वारा अज का मध्यम-मार्गी राजनैतिक नायिनी की मुदर-पत्रना का है। इस प्रकार कवि कथा के बीच-बीच में अनायास ही राजनातिके रहस्या का उद्घाटन करता चलता है और हम उन्हें समझने के लिए विशेष प्रयास भी नहीं करना पड़ता। राज्य का सचान्त कठोर बुद्धि से चक्कर सवेदनशाल विवेक के आधार पर करना चाहिए यह कवि का परिनिष्ठित सिद्धांत है। इस प्रकार कालिदास ने रघुवश में राजाओं के स्वस्थ शील शौर्य की जिस मर्यादा का वणन किया है, वह उम युग की सस्त्रुति का प्रभाव और कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा का परिणाम है। रघु की राय-भना का चित्रण जिम त मयता के साथ हुआ है—वह प्रजावत्सल शासन का परिचायक है। रघु जब राज्याराहण करते हैं तो उम समय भौतिक पचनत्वा में उत्कण्ठ आ जाता है, जल और अधिक माठा हा जाता है और पुष्प सुगन्धित हा उठते हैं।

रघुवश में युद्ध का भी बड़ा हा मजीब चित्रण हुआ है। किन्तु रघुवशी नरेश युद्ध, रत्नपात करने कौशल प्रदर्शनाय नहीं बल्कि अपने राज्य विस्तार के लिए, धर्म की रक्षा तथा यथाविस्तार के लिए ही करते हैं। रघु पराजित राजाओं के साथ भी सम्मानपूर्वक आचरण करते हैं जो उनके वश के आश्रय के अनुत्पत्त। यहाँ तक कि युद्ध स्थान में नैतिक भा अपने धर्म का पालन करते हैं एक अश्वारोही अपने विगाधी अश्वारोही पर प्रहार करता है जिममें वह अपने घाह के कंधे पर झुक जाता है क्याकि उसमें इतनी शक्ति नहीं कि वह सिर उठा सके। यह दक्ष प्रथम अश्वारोही पुन हाय नहीं उठता बकि उसके शत्रु ही जीवित हो जाने की

प्राथम्यता करने लगता है।' इस प्रकार सारी घटनाओं का कल्पना और सभी परिस्थितियाँ म नायक की महाशयता एवं महापरायणता आदि का वर्णन कर महाकवि ने अपनी इस अनुपम गौरवमयी कृति में बार रस के विभिन्न पहलुओं का बड़े ही अनोखे ढंग से अभिव्यक्ति किया है। कोई चरित्र यदि तुलाद्रुण पर स्वल्प ही हलका होता तो, सम्भवतः इतना गुरुतर अभिव्यक्ति न कर पाता। इसलिए कवि ने उन-उन परिस्थितियाँ म प्रायः सभी चरित्रों को विशिष्ट चित्रित किया है।

सम्पूर्ण रघुवश पर विचार करने पर हमें इसमें दो पक्ष दिखनाई पड़ते हैं—एक है लोक पक्ष, दूसरा व्यक्ति-पक्ष। लोक पक्ष में तो उन्होंने राजाओं के शील शौर्य ऐश्वर्य का वर्णन किया जिससे समाज एवं राष्ट्र उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सके। व्यक्ति पक्ष के अंतर्गत उन्होंने दो विशिष्ट रघुवशियाँ के व्यक्तिगत जीवन का चित्रण किया। य राजा अजय एवं जग्निवर्ण हैं। 'जिस प्रकार काय में प्रथम पक्ष के चित्रण में कालिदास ने अपने सामाजिक एवं राजनीतिक जादशों को परिलक्षित किया, उसी प्रकार द्वितीय पक्ष के अंतर्गत, उन्होंने व्यक्ति के रूप में अपनी शृङ्गारप्रिय अ तवृत्तियाँ का योजना का है।<sup>२</sup>

वास्तव में शृङ्गार-रस के वर्णन के प्रति कवि का विशेष आकर्षण रहा है यही कारण है कि उनके काव्य में शृङ्गार रस किसी न किसी प्रकार (प्रधान या अप्रधान) अवश्य आया है। 'रघुवश में बार रस का प्रधानता होत हुए भी कवि शृङ्गार वर्णन का मोह नहीं सवरण कर पाया है। निष्कपत हम कह सकते हैं कि प्रथम पक्ष में यदि कवि की वीर रस प्रिय रुचि की योजना है तो द्वितीय पक्ष में शृङ्गार लिप्सा का दिग्दर्शन है। इस प्रकार रघुवश श्रेय एवं प्रेय का जादश प्रतीक है। कालिदास के उपरोक्त सिद्धांतों की व्यंजना में रघुवश का कथानक सदायन पूरा समय है।

मेघदूत—

खण्डकाव्य की परम्परा में 'मेघदूत का प्रथम स्थान है। खण्डकाव्य का कथानक महाकाव्य की अपेक्षा लघु होता है। उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण चित्रण करने में हार्कर केवल विशिष्ट घटना तथा विषय से सम्बन्धित भावाँ एवं अनुभूतियाँ का वर्णन किया जाता है। महाकाव्य में यदि विषय का प्रमुखता होती है तो खण्ड-

१ रघुवश ७।४१

२ 'कालिदास', रमाशङ्कर तिवारी, पृ०

काय मे विषयी की, जिसके सहारे कवि अपने व्यक्तिगत विचारो, अनुभूतियो एव मावो का कथानक के म्थूल सचि मे ढालने का प्रयत्न करता है । खण्डकाव्यो मे प्रवृत्तिदेवी के मञ्जुलतम स्वरूप का र्णन देखने को मिलता है ।

‘मेघदूत’ के प्रारम्भ काल में कथानक का एक सूदम रूप दिखाई पडता है—एक यक्ष है जिसे कत्त-यच्युत होन पर यक्षपति द्वारा एक वष का प्रवास दे दिया जाता है । फलस्वरूप अपनी प्रियतमा से बहुत दूर रामगिरि जाग्रम पर अपना डेरा डालता है ।’ इन प्रारम्भिक सबेतो से ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास कोई आख्यायिका की रचना करने जा रहे हैं किन्तु ‘आपाङ्गस्थ प्रथम दिवस’ यक्ष ज्यो हा पवत शिखर पर मेघ को उमडते हुए देखता है, त्यो ही, उसका सुप्त चेतना विरह-व्यथा का आवरण ओढ लेती है और मेघ को देखकर यक्ष अत्यन्त व्याकुल हो उठता है तथा उसके द्वारा अपनी प्रियतमा को सदेश भेजने का उपक्रम करता है ।

‘मेघदूत’ ने प्रथम भाग मे अर्थात् ‘पूर्वमेघदूत’ मे मेघ के अलकापुरी जान व लिए माग मे आने वाले नदी, पवत, नगर इत्यादि का भावपूर्ण वणन हुआ है और उत्तर—‘मेघदूत’ मे यक्षिणी की विरह दशाओ का चित्रण हुआ है । इस प्रकार ‘मेघदूत’ मे यदि कथा तत्व है तो केवल इतना कि—हे मेघ ! तुम अमुक अमुक नदियो पवता को पार करते हुए अलकापुरी पहुँच जाना और वहाँ मेरी पत्नी को यह सदेश सुना दना, कि मैं सकुशल हूँ तथा शाप की अवधि की समाप्ति पर शीघ्र ही तुममे मिलने वाला हूँ । इस प्रकार मेघदूत की कथा विरही यक्षवत् ही अत्यंत दृशकाय एव क्षीण है । काय में कही भी नायक-नायिका के नामो का उल्लेख नहीं किया गया है केवल यक्ष के जीवन मे घटित होने वाली एक घटना मात्र का ही वणन किया गया है ।

पूर्वमेघ मे गिरि, वानन, सरित नगर इत्यादि के वणनो में दृश्य-वैविध्य द्वारा कथा का किंचित आनन्द अवश्य मिलता है, किन्तु इसमे मानव जीवन मे सम्बन्धित घटनाओ एव प्रसङ्गा का क्रमत्व विद्यमान नहीं है, हाँ भावनाओ की एक-सूत्रता अवश्य है ।

‘मेघदूत’ को देखने से ऐसा लगता है कि प्रवृत्ति की विविध दृश्यावलिया क मध्य एक भावस्रोत को प्रवहमान दिखाना ही कवि का लक्ष्य था । मेघ कही जाता नहीं—वह पवत शिखर पर झुका हुआ यक्ष की सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनता रहता है और यक्ष भी अत्यन्त विश्वास पूर्वक अपने हृदय की सारी बातें कहता रहता है और कहते-कहते ही कथा समाप्त हो जाती है । केवल कथा समाप्ति के क्षण पूर्व वह मेघ से पूछता है कि—हे प्रिय मित्र ! क्या तुमने निज वधु का काय करना स्वीकार

कर लिया । क्याकि मैं यह नहीं समझता कि तुम उत्तर में कुछ कहा तभी तुम्हारी स्वीकृति समया आय—अर्थात् मेघ के लिए श्रवण करना ही अभिप्रेत है—उसमे उत्तर का अपेक्षा नहीं करना चाहिये ।

मेघ का दौत्य काय म नियोजित कर स दश का उद्भावना का मौलिक श्रेय कालिदास का मिनना चाहिये अथवा नहा—इस सम्बन्ध में विद्वत् गण एक मत नहीं हैं किन्तु इतना अवश्य कह्ये कि कालिदास का नवनवा'मेघशानिनी प्रतिभा मे जिस 'रसपथल' का य की सजना का है—वह मानव के अम्य तर को द्रवित कर देने वाला है । विप्रलम्भ प्रधान कान्य म दूत क सहारे वियुक्त प्रेमा अपनी सारी भावशा का स'देश रूप म प्रयत्ना क सम्मुख भेज सकता है जा प्रियतम की पाती का भाति प्रिय सङ्गम का सा मुख दता है ।

यह मेघरूत एक प्रकार मे प्राचानकाल श' प्रेमी का प्रेमात्र था । तब न टाक था, न तार था, न टाकिया था । सारी प्रक्रिया को कवि न अपनी प्रतिभा म अलौकिक कायमाला म शूथ कर विश्व के सहृदया का सहृदयहार बना दिया ।

यक्ष ता स्वय विरह कातर है हा, किन्तु उम इस बात को जोर चिंता है कि उसका पत्नी भी उसके वियाग म बडा क नई म जा रहा हागी । वस्तुतः प्रेम द्विपक्षाय व्यापार हाता है । यदि प्रेमी को यह भान रह कि उसका न्य भी उसके लिए चिंतित होगा, तो सम्भवतः उस म प्रेम का उत्तम निरन्तर प्रवहमान न हागा । इस तथ्य का कालिदास भला प्रकार जानते हैं । तभी तो उ'हाने यक्ष क लिए दयिता-जाविताभवन की प्रेरणा ग्रहण कराने का उत्तम किया । यक्ष पहन पुष्पाय देकर उसका स्वागत करता है जोर कुशल मङ्गल पूत्रता है । भौतिक दृष्टि म मेघ धूम ज्याति मरुत सलिन का सम्मिश्रण है अतएव अचतन होने के कारण उम स दश-वाहन का काय नहा सोपा जा सकता । किन्तु अधार यक्ष म इस स्थिति का सङ्गति अमङ्गति का इतना चिक्क कहाँ । यह ता मघ म दयनाय स्वर म प्राथना कर ही बैगता है क्याकि कामान व्यक्ति अचतन अचतन क विषय म विक्क शून्य हा घन जात हैं ।<sup>१</sup> कालिदास मनी प्रकार जानत हैं कि मघ अचतन है जोर दौत्य-काय कर म असमथ ह अतएव यह जा कुछ कह रहा है उमक प्रति पात्रक म कही अविश्वास उत्पन्न न हा जाय इसलिये अचतन-अचतन का विभाजक रखा मिटान का श्रेय काम' का दे दता है—कामाता हि प्रहृष्टिहृपणाश्चेतनाचेतनपु । यक्ष मघ का इद्र का 'काम रूप

प्रधान पुरुष ही मानता है—“जानामि त्वा प्रवृत्ति पुरुष कामरूप मधोन ’ इसीलिए तो यक्ष अपनी कामातुर दशा में उनके पाम प्रार्थी बनकर आया है। मल्लिनाथ ने ‘प्रवृत्ति पुरुष कामरूप’ का अर्थ किया है—इच्छानुसार रूप धारण में समथ प्रधान पुरुष। इस प्रकार मेघ काम का रूप है, स्वयं काम नहीं। वह समस्त प्रवृत्ति में नवीन प्रसव का विधान करता है, मेघ ही प्रवृत्ति के वं यात्रक दोष को निराकरण करने की सामर्थ्य रखता है—इसी कारण वह ‘प्रवृत्ति पुरुष एव ‘कामरूप’ है। तभी तो यक्ष ने उसे अपना सन्देशवाहक बनाया है।

मेघ का सवेदनशीलता से यक्ष भली प्रकार परिचित है। वह जानता है कि मेघ ही उसकी वेदना को भलीभांति, गम्भीरतापूर्वक समझ सकता है इसीलिए वह उसे अलकापुरी भेजता है।

कालिदास ने मेघ-गमनार्थ जिस माग का उल्लेख किया—वह वस्तुतः हृदय की मधुर भावनाओं से ओत-प्रोत है। मेघ शीघ्रातिशायन यक्ष का सन्देश उसकी प्रिय पत्नी को मुनाना चाहता है क्योंकि—

‘आशावध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यङ्गनाना

सद्यः पातिप्रणयिसदश विप्रयोगे वृणद्धि ॥५०॥ मे० १०

यक्ष को यह भय है कि उसके वियोग में उसका प्रिया कहीं प्राण त्याग न करे—किन्तु माग में पड़ने वाले वन, लता, पशु पक्षिया व वृक्ष का मोह भी कैसे छोड़ सकता है इसलिए स्वयं ही इस बात को कहता है कि—‘यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे काम के लिए तुम शीघ्र ही जाना चाहोगे, किन्तु तुम कुकुम सुगन्धि धत पुष्पो से आच्छादित उन पहाड़ों पर ठहरते हुए जाना, जहाँ पर मार अपनी दूक से तुम्हारा स्वागत कर रहे होंगे। वहाँ से चलकर तुम दशाण दश में पहुँच जाना, जहाँ के उपवना के कुछ फूलें हुए कवचा से उज्वल हो उठें होंगे। गावा के मन्दिर में कौवे धोसले बना रहे होंगे और सारा जगल काली काली जामुना में आपूण होगा और हंस भी कुछ दिनों के लिए वहाँ आ बसे होंगे।’

हे मेघ ! वहाँ से चलकर नीच नामक पहाड़ पर श्रम मितान के लिए रुक जाना। जहाँ पुष्पित कदम्ब के पुष्प ऐसे प्रतीत होंगे मानो तुमसे मिलकर उनके रोम-रोमाचित हो उठे हो। उसी पहाड़ी की गुफाओं में ऐग सुगन्धित पदार्थों की दिव्य सुगन्धि निकल रही होगी जिन्हीं का उपयोग वहाँ के विलासांगण सुरत-समय में करते हैं। आगे समझाता हुआ यक्ष कहता है—वहाँ ठहरकर ज़मी को सिंचते हुए, तथा उन



क्षण ठहरने पर भी यदि वह न जाग तो तुम जल कणा से शीतल अपन वायु के झाकों से उस जगा देना और कहना—वैरी ब्रह्मा ने तुम्हारे प्रिय का माग अवरुद्ध कर दिया है किन्तु बिरह-काग की समाप्ति पर वह तुमसे शीघ्र ही मिलेगा ११

उद्देश्य—

प्रेम क महत्त्व को स्थापित कराना 'मधदूत' का प्रमुख उद्देश्य है। कवि प्रणय व देण-वाहक मेघ के सम्पूर्ण माग मे सहानुभूति, सेवा साहाय्य तथा प्रणय का चित्र उपस्थित करता चलता है। अनुबूल पवन, म-द-म-द गति से सौम्य मेघ को आगे बढ़ा रहा है, गव म भरा पवीहा मधुर ध्वनि कर रहा है, प्रिय सखा तुङ्ग पवत कण्ठश्लेष के लिए आतुर है। माग मे यात्रा करत-करते जब कभी यक्ष धक जायेगा—तो वह अमुक अमुक नदियो का जलपान करता जायेगा। इस प्रकार वह स्थान स्थान पर नव चेतना एव स्फूर्ति अर्जित करता जायेगा तथा सम्पक म आयी वस्तुआ को सौ दय प्रदान करता जायेगा।

इन प्रसङ्गा द्वारा कवि ने सबन्ध प्रेम के उज्वल स्वरूप की व्यञ्जना की है। संस्कृत साहित्य मे अधिकतर कवि की कल्पनाशक्ति वैभव एव समृद्धि के ही वातावरण मे विचरण करती है अतएव रमणिया के सुगठित अङ्गा एव उनके सौ-दय प्रसाधना का उपमाओ एव उत्प्रेक्षाओ द्वारा अप्रस्तुत रूप म भय चित्रण बहुतायत मे हुआ है। कालिदास के अप्रस्तुता मे अजन, बेणी उरोज, परिधान, मुक्ताजल इत्यादि का अधिक वणन मिलता है।

इस प्रकार प्रेम कवि की दृष्टि म शरीर, मन, आत्मा का समन्वित रूप है। इस उद्देश्य मे वे पूण सफल हैं।

ऋतुसंहार—

ऋतुसंहार महाकवि की प्रारम्भिक रचना है। कवि न इसमे किसी कथानक का वणन नहीं किया है, अपितु पङ्क्तुओ का हा अनग-अनग वणन किया है। अ-य काव्या की भाँति इसमे हमे भावनाआ का सौ-दय एव अभिव्यक्ति की चारुता के दशन नहीं होने—कवल उद्दाम यौवन का हा सधन चित्रण मिलना है।

(क) चरित्र चित्रण की व्यञ्जकता—

संस्कृत प्रबन्ध काव्या मे पात्रो का चरित्र प्राय विशेष प्रकार के ढाँचे म ढला हुआ होता है। प्रत्येक पात्र बुद्ध विशेष प्रकार से निर्धारित आन्शों का पालन करता हुआ सा प्रतीत होता है। भरत, धनजय आदि पूव आचार्यों ने नायक-नायिका, प्रति-



नायक, दूत सती विदूषण आदि सब का स्वल्प तथा काय निर्धारित कर किा है। परन्तु कवि अपने नाटका तथा काव्या में उन निर्धारित आश्यों का यथासम्भव पालन करने का प्रयत्न करते रहे।

संस्कृत काव्या में पात्रों द्वारा जिसा नियत आश्यों का पालन विमोचन हुआ गया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पात्रों को वैयक्तिक विनयना नगण्य रहनी है। पात्रों के इतिहास तथा मोक्षवृत्त में प्रसिद्ध रूप का परिवर्तित करना तो कवि के लिए बड़ा भारी अपराध माना जाता है। हम रम भरत, लक्ष्मण इत्यादि का जैसा चरित्र एवं स्वभाव का वर्णन पात्रों में है यदि कोई कवि उसमें परिवर्तन कर नये रूप में प्रस्तुत करता है तो वह हमारे लिए शास्त्रनाश के समान नहीं बल्कि हमारी चित्त-वृत्ति शास्त्रनाश में इस नये चरित्र के साथ तात्कालिक स्थापित नहीं कर पाता। इसका अर्थ यह भी नहीं कि संस्कृत साहित्य में नवानता की कमी है। किन्तु कवि प्राचीन सौना से अपने पात्रों को ग्रहण करता हुआ भी अपने कथानक एवं रंग के अनुस्यूत उसके स्वभाव का कल्पना करता चलता है।

इस प्रकार महाकवि अपने कथानक में पात्रों का मन्त्रित्व सादृश्य करता है। वह उन्हें पात्रों को काव्य में स्थान देता है जो उसके व्यंग्य उद्देश्य एवं आश्यों का व्यञ्जना करने में समर्थ होत हैं। इस दृष्टि में महाकवि कालिदास ने अपने काव्या में पात्रों की योजना करने में बड़ा कुशलता का परिचय दिया है। उन्होंने पात्र-अवतारण का एक नूतन गौना चलायी। उन्होंने काव्या में नवन उन्हें पात्रों को स्थान दिया जो कथानक के लिए अपरिचित तथा रस-व्यञ्जना के लिए सहायक हैं। इस प्रकार कालिदास के काव्य में पात्रों के चरित्र व्यञ्जक रूप में ही आए हैं। कुमारसम्भव में शिव पावती रति कामदेव हिमालयादि कुछ प्रमुख पात्रों का ही स्थान दिया गया है जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। यहाँ इस बात पर विचार करना है कि कालिदास के पात्र उनके उद्देश्य की सिद्धि में कहीं तक सहायक हुए हैं।

शिव -

भगवान् शिव कवि के आराध्यदेव एवं पूज्य हैं किन्तु उनका वर्णन मानवीय-स्तर पर हुआ है। कवि को भावना के अनुसार वे सब न सवात्तिमान निष्काम एवं निरीह हैं और सीता के उस श्रेष्ठ पुरुष का तरह हैं—जो साक सचह के लिये समस्त मर्यादाओं का पालन करते हैं।

पहली पत्नी सती के दुःख अवसान से उनके हृदय को अति ठेस पहुँचती है जिसमें वे विभुतसंगतापस का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। उनका सारा समय

अध्यात्मचिन्तन एवं साधना में व्यतीत होता है। किन्तु सेवा करने की इच्छुक पावती को पूजा के लिये, वे आज्ञा दे देते हैं क्योंकि उनके इस बाह्य रूप के अतिरिक्त एक और रूप है जो प्रणयि प्रिय का है। शृङ्गार में स्नेह का पात्र भारतीय परम्परा के अनुसार समयी होना चाहिये। धीरोदात्त नायक धीरललित नायक से कहीं अधिक सम्मान भाजन होता है। धीरललित नायक के चरित्र में लाघव होता है। कालिदास के शृङ्गार के नायक सभी धीरोदात्त रहे हैं और सबके चरित्र में कवि एक गरिमा प्रतिष्ठित करना चाहता है और इस काय में तथा अपने इन आदर्शों की प्रतिष्ठा में कवि ने अपना सर्वश्रेष्ठ नायक शङ्कर को बनाया। अथ से इति तक कही रेखा नहीं आन दी। वह जितन समयों एवं योगों दिखाई पड़ते, उमा के प्रति उनका व्यक्तित्व उतना ही आकर्षक होता। शिव के चरित्र में मृदिमा के साथ दृढिमा भी है। उह बड़ा से बड़ा आकर्षण भी विचलित नहीं कर सकता।<sup>१</sup> वे सच्चे अथ में धीर हैं। चित्त को चंचल होने देना, वे सतक हो जाते हैं और अति निर्ममता से कामदेव का अपनी क्राधाग्नि से भस्म कर देते हैं। वे पावती के मनोमोहक रूप से आकर्षित न हुये किन्तु उनकी कठोर साधना से उनके 'क्रीतदास' बन जाते हैं।

इस प्रकार शिव भोग एवं भोग के सामजस्य के अनुपम प्रतीक हैं। कामदेव जब उनके आश्रम में पहुँचता है तब वे पद्यासन लगाये आम साक्षात्कार में लीन हैं। उनके समाधि एवं योगासन का वणन कवि ने अनुपम ढङ्ग से चित्रित किया है। उनके नेत्र निर्वातदीपवत् अत्यन्त शांत अविचल प्रतीत होते हैं।<sup>२</sup> उनके इस गम्भीर रूप का देखकर कामदेव घबरा जाता है और उसके हाथ से धनुष छूट जाता है। वे महान् कर्मयोगी भी हैं सप्तर्षिदास वे कहते हैं—'आप जानते ही हैं कि मैं कोई काय स्वार्थ भावना से नहीं करता।' पावती से विवाह कर वे सप्तरी वनते हैं और फिर अष्टम सग में उनके गृहस्थाश्रम की जा विस्तृत शाकी प्रस्तुत की गई है उसमें दाम्पत्यस्वरूप की मधुर व्यञ्जना हुई है।

इस प्रकार कवि शिव के जीवन में योग भोग दोनों को स्थापित कर दोनों में समन्वय के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। वह इसी को जीवन की पूणता मानता है। कोरा भोग पतनो-मुख होता है तथा कोरा राग अनिष्टकारी होता है। अतएव देश काल-परिस्थिति के अनुसार भोग भी होना चाहिये तथा देश-काल-परिस्थिति के अनुसार योग भी होना चाहिये। दोनों के उचित समन्वय से ही

१ कुमारसम्भव १।५६

२ वही, ३।४५, ४८

मानव स्वस्य जीवनमान कर सकता है—गिव-चरित्र क माध्यम से कवि का यही व्यक्तना है।

पार्वती—

इस महान् काव्य का नायिका पावता हिमवान का पुता है। व अनीतिक मोक्ष्य से मण्डित, प्रतिभावान है। जा सारा विद्याभा का आपस थाता है। अनर असाधारण रूप का कपन ब्रह्मचारा शङ्कर ना कर्तु है— प्रया जा क उच्चकुत म तुम्हारा राम हुआ है—तुम्हारा रूप एसा तावप्यमय है जि माना विनारा का सो रूप मूर्तिमान हा उठा है। गिव जा क उग्र प का दयकर जब काम निगा हा जाता है, ता उन पावता क मोक्ष्य का हा पहारा मितता है। पावता का यह असाधारण सौन्दर्य हा अनका बगोर तस्सा का कारण बना है। बगारि एस रूप क तिय एसा राम तथा एसा पति बिना बठार सापना क न मितता।

पावता हृदयवन्ता है। तब अनर रूप-नाशय द्वारा गिव का नहीं प्राप्त् कर पाता ता वह बठार तस्सा द्वारा नन्द विजित करन का मुक्त्य करता है। व साधारण छिया क समान निगा नहा हाता बन्कि तस्सा तप तप करता रट्टा है जब तक उहें सफ्तता नहा मितती ब्याकि उनका प्रेम अब शारारि नही आध्यात्मिक हो चला पा।

कुमारसम्भव में प्रधानत पावती एक शिष्य प्रमिका-रूप म चित्रित की गई हैं। वह अनका प्रेम भावनाभा को तप पूत करन क लिए पार तप करता हैं आर वही उनका प्रेम शक्ति शानन से अत्राव हाता हुआ आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाता है और व प्रेम क उच्चतम रूप को तपावल म प्राप्त् करता है। उनका प्रेम, स्वय अनर म देवा हा जाता है और प्रेम क देवा होउ हा श्रेय और प्रेय क प्रतीक गिव की मद्य प्राप्ति हा जाता है। पावता क माध्यम से यही कवि न प्रेम क विभिन्न सांगना का चित्रण किया है तथा पावता को एसा प्रमिका का प्रताक बनाया जा विगुड नारख एव विगुड सता व क दृष्टिकान मु गहनतम तथा व्यापकतम स्वप्न को प्रेष करक—पूण प्रेम का उदात्त भावमूमि पर प्रतिष्ठित हा जाता है। विवाहोत्तराव पत्ना क रूप म पावता विनासा गिव क माध्य मुग्धा नायिका का तरह रति प्राढा में पूण सहयोग दता हैं और वह देवा पावता भानवाम स्तर पर उवरता हुई प्रतीव होता हैं। इस विनाय—श्राढा म यही यह राम न होना चाहिय कि यह

सामान्य मानव की क्रीडा है वरन् यह विलास दो आत्माओं या जीवात्मा एवं परमात्मा के पूण सहयोग अथवा पूण एकीकरण का प्रतीक है अथवा मानव एवं मानवी क शारीरिक, मानसिक एवं आत्मारमिक संयोग का प्रतीक है। इस प्रकार पावती के माध्यम से कवि न एक आदर्श भारतीय नारायण आदर्श की यजना की है।

### काम-रति—

काम एवं रति हमारे के अमृत मनोभोग हैं, जिन्हें वैदिक युग के कवि का कल्पना न मूर्तरूप प्रदान कर उन्हें व्यक्ति बना दिया। कुमारसम्भव के काम एवं रति शरीरधारा प्राणी है। इनका कुछ शक्तियाँ अति मानविय हैं और उन्हें देवता कहा जाता है। ये सब न सौन्दर्य एवं मादक के आदर्श प्रतीक हैं।

काम इन्द्र का स्वामिमत्त सेवक और वार पुरुष है। इन्द्र को भी उस पर विश्वास है। इन्द्र उससे कहता है—'मैं तुम्हें भी अपनी तरह ही उत्तरदायी समझता हूँ। अतः बड़े भारी काम में लगा रहा हूँ।' काम अपनी प्रशंसा सुनकर गव से फूल जाता है और गव में आकर शिवजी को हरा सबन का दम भरता है। इन्द्र उसमें अपने प्रभाव से शिव को पावती के प्रति आकर्षित करने की प्रार्थना करता है। काम कुछ घबरा जाता है किन्तु अपनी यात पर अटल रहता है। काम का यह चित्रण करते समय सम्भव है, कवि के मानस पटल पर किसी नाटक का प्रभाव रहा हो—जिसमें विट विद्रुपक राजाओं का प्रेम लीलाओं में महायत्ना किया करते हैं। और जिसका आभास कवि के नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में मिलता है।

कामदेव कहता है कि पतिव्रताओं के धर्म, तपस्विण्या के तप, नीति विशारदा की भाँति का विफल कर देना, तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है।

रति कामदेव की प्रिय पत्नी है। उसका चरित्र भी वैसा ही सुन्दर है, जैसा उसका रूप। वह पति से असीम प्रेम करती है किन्तु उसका मत य पालन में बाधक नहीं बनती। जब रतिपति की तपस्या में विघ्न डालना जाता है, तो रति भी उसका साथ बन जाती है, किन्तु उसे रोकती नहीं। यहाँ नारायण-जीवन का आदर्श भी है कि वह पति के किसी कार्य में बाधक नहीं होती सहायता करती है। पति की मृत्यु-से यद्यपि उसका सारा सुख समाप्त हो जाता है किन्तु उसे शंका है कि उसका पति कतए पालन करता हुआ, वीर-गति को प्राप्त हुआ है। अतः में वह एक आदर्श पत्नी का भाँति पति की चिता पर जलकर सती होना चाहती है किन्तु आकाशवाणी

सस ऐसा करने से रोक देता है। माना शिव पावता के विवाह जैसे गुम काय में यह मनष (रति मृ यु) अनष नहा हुआ और कालिदास ने अपने आराध के विवाह में कही भी अमङ्गल नहीं जान दिया। इस प्रकार रति के माध्यम से कवि ने नारा जावन के उच्च आशों का व्यञ्जना का है।

### हिमालय—

पवतराज हिमवान् हिमानयाय उन प्रदशा का अधिपति है, जिन्हें कवि दव-भूमि' अर्थात् स्वर्ग मानता है। काय के आश में ही उस देवा मा' कह कर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह निर्जिव परवर नहा अपितु चेतन मानव हैं। उनका शरीर लम्बा चौड़ा गौरवण आर वलिष्ठ है। उनके होंठ लाल, भुजायें दवशा' के समान लम्बी और वगस्थल चटपट की तरह दृढ़ हैं। उहाने कुलस्थिति के लिए मैना में विवाह किया है। इस प्रकार वे सद्गुण्य हैं।

वे शिष्ट एव नम्र हैं। उनका व्यवहार मधुर एव बोलचाल मुसष्टव है। अङ्गिरा ऋषि उनसे कहते हैं— तुम्हारा मन भा, तुम्हारे दन शिखरा के समान उच्च है। अविच्छिन्न एव निमल प्रवाह वाचा कीतिया से तथा समुद्र तक वे रोक टोक पहुँचनी हुई तुम्हारा मदिया स ताना साक पवित्र हा रह हैं। यद्यपि पवत रूपी तुम्हारे शरीर में समस्त कठ रता भरा हुई है, तो भी सत्पुष्पा का सेवा करने वाला यह दृढ़ भक्ति भाव से सदा मुका रहता है। विवाहापरा त जब पावती जा विदा गयी हैं तब उनके विवाह का विचार उनका विकल कर देता है। उच्च-चरित्र का पिता ने जिसका सारा परम्पराये अतिशय उन्नत रही हैं अपनी समस्त उच्च परम्पराशा की विना वह पुत्रा में सन्नाह किया है। एक पिता की पुत्री उमा हा ही सकती हैं। कवि उनके चरित्र के माध्यम से आश एव गौरवशाला पिता के रूप का व्यञ्जना करता है।

### रघुवश—

#### दिनाप—

महाराज दिनाप धर्म प्रिय राजा हैं। क्षत्रिय व की भावना उनमें कूट कूट कर मरो है। वह जो भा काय करत हैं वह पूण निष्ठा एव उरसाह स करत है जिससे वह कार्य स्वयं उनका ह्यय सा दन जाता है।

१ कुमारसम्भव ५।४५

२ वही १।१

गौचारण, गुरु के समाप गमन, सिंह सवाद, नदिनी-परीक्षा एव वरदान तथा एकोनशतअश्वमेधग्राहण सब में महाराज दिलीप का अन्त्य उत्साह एव कर्मयोग शक्तता है। न कहीं निराशा के लिये स्थान है, न कहीं विवेक शून्यता है। भावुक दशा में भी वे कर्तव्य परायणता नहीं भूलते। इस प्रकार उनका काव्य में चित्रित जीवन पूण रूप से धर्मवीर स्वरूप की अभिव्यक्ति करता है।

रघु—

रघु का चरित्र धर्मवीर एव दानवीर का प्रतीक है। वान्मौकिक रामायण से इस बात का पता चलता है कि मूय वश में पहले काकुत्स्थ और फिर रघु—ये दो राजा एते हुये जिसके कारण उनके वंशज काकुत्स्थ तथा राघव कहलाये। दिलीप ने गौ से यही वर माँगा कि उनका पुत्र वश का कर्ता हो 'परवर्ती काल में राम न यद्यपि ईश्वर का रूप ग्रहण किया किन्तु वे वश को अपना नाम न द सके। वश के कर्ता के रूप में कवि न रघु का वणन किया। रघु का जन्म दिलीप सुदर्शना की वृद्ध साधना धारणा एव तपस्या के परिणाम स्वरूप हुआ है। वे ओजस्विता, बल, पौरुष एव सहृदयता में अपने पिता से भी बढ़कर हैं।<sup>१</sup> उनकी भक्ति एव विनयशीलता की प्रशंसा करते हुये कौस कहता है— 'पूयो के प्रति तुम्हारा भक्ति-भाव अपने कुल के अनुरूप ही नहीं, किन्तु उससे बढ़कर है।'

रघु दान वृत्ति में भी किसी से कम नहीं। उन्होंने भिक्षार्थियों को अपना सख्त दान कर दिया है और केवल मिट्टी का पात्र ही शेष रह गया है। कौस को उनकी इच्छानुरूप दान न कर सकने के कारण वे अत्यंत दुःखी होने हैं जिससे उनकी विवशता व्यक्त होती। किन्तु कौस जब अग्रज जाने की इच्छा प्रकट करते हैं, तो वे उत्साहित हो उठते हैं। यह उनके शौर्य का ही प्रभाव है कि भय के कारण कुवेर उनके कोप में अप्रत्याशित धन वर्षा कर देता है। इस प्रकार कुवेर पर युद्ध का विचार उनके रणोत्साह एव यशोधनता को ही अभिव्यक्त करता है तथा उससे रघु का वीर स्वरूप की व्यञ्जना होती है।

अंत में रघु वानप्रस्थी वन-योग की साधना में लीन हो जाते हैं तथा योग द्वारा शरीर त्याग कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार महाराज रघु का जीवन दानवीर धर्मवीर तथा युद्धवीर की परिधि से होता हुआ मोक्ष पद में लीन हो जाता है रघुवश के महान स्थापक एव लोक में राजरत्न पद के आदर्श नेता रूप में प्रतिष्ठित हुये हैं।

अज—

अज धार ललित नामक हैं। व कालिदास के प्रणय प्रतीक कहे जाते हैं। किन्तु अज मामास स्वर के प्रणयों नहीं हैं, इन्द्रमता का रक्षा के लिए जब वह विराधा राजाओं से भयङ्कर युद्ध करते हैं तो उनके अखण्ड शीघ्र एवं साहस का परिचय मिलता है। नर्मला के तट पर अज्ञाना हाथा का एक हा बाण न दात कर देना उनके वीर चरित्र का व्यञ्जक है।

किन्तु इतना धन हान पर भी रघुवश में उनके प्रेम प्रधान चरित्र का हा प्रमुखता रही है। फिर एव गुणा में उनका कोई समता नहीं कर सकता। उनके इस आकर्षण पर इन्द्रमता माहित हो जाता है और वरमान उनके गल में हान देता है। साथ ही अज बड़े हा रघुवश एवं विनृमल हैं। उनका सहृदयता का व्यञ्जना के नियम के एक रावक घटना का संनिवेश किया है वह है—इन्द्रमता का आकस्मिक निघन। प्रिया का मृत्यु में सह्य बहुत बड़ा आघात पहुँचता है और व साधारण मानववत् फूट-फूट कर बिलान करने लगते हैं। अष्टम मग, अज विनाश का करुण चित्र उपस्थित करता है। प्रिया का 'प्रतिवृत्ति' पुत्र में दक्षतर आठ वर्ष व्यतात कर देते हैं और पुत्र के युवा हान तक किसी प्रकार शरार धारण क्रिय रत हैं। इस प्रकार कवि ने अज के मास्यम में प्रेम का अनपेक्षा का चित्र उपस्थित किया है।

दशरथ—

राजा दशरथ के चरित्र का विकास प्रायः वामाकि रामायण के आधार पर हो हुआ है। व भावुक अधिक विवक्षान कम हैं। निःसंजान हान के कारण कहीं—वश का विनाश न हो जाय अतएव पुत्र प्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि-यन करते हैं और क्षत्रिय धर्म का रक्षा के लिये प्राणाधिक प्रिय अथवा पुत्र राम-सदमण का विश्वास के साथ भेज देते हैं।

दशरथ के वार चरित्र में टुट्टार का पत्रवन भी अनाथे ढङ्ग से हुआ है। वन में जाते हरिण का अपना लम्प बनाते हैं तो बाच में हरिणों को खड़ा दक्षकर नहीं मागत हरिणों के आकुल मन में प्रिया के चञ्चल मन का स्मरण हो जान पर फिर उन पर बाण नहीं चलाते—दशरथ कारण बताता हुआ कवि कहता है कि व प्रमा हृदय य।”

अन्त में महाराज दशरथ अपना प्रतिपाद का पालन करते हुये पुत्र विनाश में शरार त्याग कर देते हैं। दशरथ का चरित्र धर्म से अनुप्राणित है इसलिये उनके मान्यम से कवि ने धर्मशर की ही व्यञ्जना का है।

राम—

रघुवश म राम आदश पुत्र, आदश भ्राता, आदश पति एव आदश राजा के रूप म वर्णित हैं। भारतीय चरित्र की पूण प्रतिष्ठा उनके चरित्र के माध्यम से हुई है। राम का आस्थान, कवि ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर वर्णित किया है। कवि ने रामायण मे वर्णित ईश्वरवादा भावना का पूण समर्थन किया है।

राम आदश पुत्रा पालक राजा हैं। सारा प्रजा राम राज्य मे बड़ा सुखी है। राम का प्रत्येक काय धर्म की आधार शिला पर ही निर्मित होता है यहाँ तक कि राजताति जैसे क्षेत्र म भी धम उनका साथ नहा छोड़ता।

राम एक आदश प्रेमी भी हैं। सीता उह प्राणा मे भी अधिक प्रिय हैं कि तु लाकापवाद के कारण निर्दोष सती माध्वी परनी का परित्याग भी कर देते हैं। इस प्रसङ्ग म उनका चरित्र आदश पति का आवरण ओलकर मम्मूख आता है। व साता का त्याग करके भी उसे हृदय से नहीं निकान पाते। लदमण क मुख स साता का सदेश सुन, विह्वल हो जाते हैं। उनका आदश तो देखिए कि व दूमरा विवाह नहीं करत—यहाँ तक कि मन क अवसर पर भी सीता का साने को भूति बनवाकर ही—समस्त क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं। उनके प्रेम का यह एकनिष्ठता हा है कि सीता के चित्रा को देख-देखकर अपना समय व्यतीत करन लगते हैं किन्तु पर नारी का विचार तक नहीं करत।

उनका स्वभाव सम है—'राज्य प्राप्त करते समय तथा वन जात समय उहें न हूप होता है और न विपाद। वन क लिये प्रयाण करते समय शान्तमना रिता का आजा लेकर चल आते हैं। वे गुरुओं के परम आदरकर्ता तथा दुष्टा का नाश करने वाले हैं। ससार म उनका ज म ही धर्म की रक्षा तथा अधर्म क नाश के लिये हुआ है।

इस प्रकार राम मानवता के एक पूण प्रतीक सिद्ध होत हैं। और उनके चरित्र के माध्यम म थोछ धमवीर स्वरूप की अभिव्यजना हाती है।

कुश—

कुश जितेन्द्रिय एष वीर नृप हैं। अधरानि ने समय अपने शपन कण में सहसा नारी को आने दख, व अचम्भित हो उठत हैं और कहत हैं—हे शुभे ! कौन हो और मुझसे क्या चाहिये ? यह विचार कर वालना कि रघुवशियों का मन पराई खिया की ओर से विमुख रहता है। इस कथन मे उनके चरित्र की उच्चता की व्यजना हो रही है।



अपने पिता के समान कुश अत्यंत वीर हैं। उनका निस्सीम शौर्य से भयभात होकर कुमुदराज उनकी अपहृत मुद्रिका शीघ्र ही लौटा देता है और उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार कुश के माध्यम से धर्मवार एवं युद्धवीर की व्यंजना हुई है।

### अग्निवण —

अग्निवण एक विलास प्रिय तथा कृतव्यच्युत नायक है। वह रम्य एवं स्वर्णता का प्रतीक है। वह अहर्निश कामिनीयों के साथ नित्य नवीन वस्त्रों में व्यस्त रहता है, बावलिधो म जल-विहार करता है, मदिरा पान करता है, नृत्य तथा मृदङ्ग-वादन में लीन तथा रतिक्रीडाओं में व्यस्त रहता है - यदि मन्त्रियों के अनुरोध पर प्रजा को कमी दशन भी देता है तो वस केवल इतना कि 'झरोखे से अपना एक पैर लटका देता है।'

'परिजनाङ्गनाओं के साथ भी सम्भोग कर लेना—यह नैतिक एवं मानसिक पतन है। इससे निम्नस्तर अधोगति की कल्पना एवं प्रजापति के लिये नहीं की जा सकती। एस विकट कामुक का जीवनावसान जैसा दुःखद एवं अपमानपूर्ण होना चाहिये—वैसा ही अग्निवण का हुआ।'

कालिदास 'अतिवाद' के समर्थक नहीं हैं। अग्निवण के माध्यम से उन्होंने अतिवाद का तिरस्कार किया है। अग्निवण के जीवन में काम का आधिपत्य हुआ है इसलिये उसका बड़ा ही कार्शणिक अन्त हुआ। इस प्रकार कवि ने अग्निवण के विवृत जीवन का ही सबब उल्लेख किया है मानो वह उसके ऐतिहासिक जीवन से चिढ़ा हुआ सा लगता है और अस्तो-मुख रघुवश के प्रति कोई विशिष्ट आशा नहीं रख पाना। अतः वह इस विशुद्ध काम पुरुषार्थ भोगी के प्रति अपनी कुत्सा प्रकट करता है। धर्मवारा के लिए कामा की कोई जगह नहीं। न कालिदास के शृङ्गार में विषयी का शौरव। उनका वीर धर्ममय और प्रेमी जघ्धारम मय होता है।

### स्त्री पात्र—

'कालिदास ने 'रघुवश' में नायिकाओं के सम्पूर्ण चरित्र के स्वतंत्र विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस महाकाव्य में केवल तीन चार स्त्री पात्रों को ही स्थान मिला है। इसका कारण सम्भवतः यह ही सकता है कि कालिदास रघुवशी

राजाओं के चरित्र से ही विशेष रूप से प्रभावित थे । उनके आदर्श जीवन, राजकीय कृतव्या तथा धीरे-धीरे चरित्र का वणन करना ही उनको अधिक प्रिय था जिससे उनका अभाष्ट सिद्ध हो सके । यही कारण है कि उन्होंने नायिकाया के सम्पूर्ण जीवन चरित्र को न उद्धृत कर—बस उही विशिष्ट पक्षा का हा काव्य में स्थान दिया जो रस की घटनाओं का तथा सबसे बढ़कर कवि के जीवन्त उद्देश्य का समयन दे सकें । इस दृष्टि से कवि की योजना ठीक एव युक्तिपूर्ण प्रतीत होती है ।

### सुदक्षिणा—

सुदक्षिणा महाराज दिनीप की आदर्श भारतीय परती हैं । वह पति के प्रत्येक सत्कृत्या में साधक है बाधक नहीं । जो गौ-सेवा निमित्त बठोर ब्रत पालन करती हैं और हृदय से उसकी पूजा करती हैं । वह गुह्या का उचित सरकार बरने वाली राज महिषी है । इस प्रकार रघुवश में उनका चरित्र एक सद् गृहणी, सद्तारो का व्यजक है और वह भी अपन पति के स्वरूप को अनिव्यक्त करन में सहायक होती है ।

### इन्दुमती—

इन्दुमती सौन्दर्य एव प्रेम का साकार प्रतिमा है । कवि न उसे शृङ्गार रस का ऐसा आलम्बन बनाया है कि स्वयंवर में उसे देखकर राजाओं की क्या स्थिति हुई, उसे कवि के शब्दों में सुनिये—वह कया कया है अज्ञा की रचना का कौशल है जिसे सहस्रनेत्र एकटक होकर देख रहे हैं । उसे देखते ही राजाओं के मन तो उसके पास चने गये—केवल शरीर मात्र हा मञ्च पर रह गया ।’

विद्वाना ने—जिस आनन्द वादा भावना का कालिदास की सरस्वती की मुख्य प्रेरणा कहा है—उनका मनोरम रूप इन्दुमती के प्रसंग में हा दृष्टिगोचर होता है ।’ कवि ने उनके नख शिख वणन में विशेष रुचि दिखाई है ।

इन्दुमती के जीवन का एक पक्ष और है—वह है आदर्श गृहणी का । गम्भीर विषया में भी वह पति को एक सचिव की भाँति सलाह देती है । उसकी मृत्यु पर अज कहता है—तुमने कभी मन से भी मेरा अप्रिय चिन्तन नहीं किया । मुझसे कोई झूल हो जाती तो कभी बुरा नहीं मानती थी, फिर तुमने मुझे इस तरह अकेले छोड़ जाने का कठोर निश्चय कैसे कर लिया ?

इन्दुमती का प्रेम उदात्त एव निश्चल है उसमें वामना की तनिक भी गन्ध नहीं है । इस प्रकार उसके माध्यम से शृङ्गार की सुन्दर योजना हुई है ।



मानने के लिये सवाद का कलात्मक समीजन करता है। इसीलिए उरुवृष्ट काव्य में सवाद समीजना महत्त्वपूर्ण है। उनके सौन्दर्य को हम नकार नहीं सकते। इसीलिए महाकाव्य के लक्षण में नाट्य संधियों का समावेश वैध बताया गया है। सर्वे नाटक प्रथम (सा० ६०)। जिस काय में, जितना ही पात्रों के सवाद द्वारा भाव एवं कथानक का परिपाक किया जाता है, वह उतना ही श्रेष्ठ होता है। ध्वनि काव्य यदि पात्रों के मुख से बहलवाया जाता है तो अधिक निखरता है (जैसा कि श्रीहृष ने कहा है—विदग्ध नारी का मुख ध्वनि का आकर होता है—विजृम्भित मस्य 'ध्वनेरिय विदग्ध नारी वदन तदाकरा)। महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में सवादों की समीजना में विशेष कुशलता का परिचय दिया है। इन्द्र कामदेव, ब्रह्मचारी-पार्वती, दिलीप-सिंह, रघु इन्द्र इत्यादि सवाद इसी कोटि के हैं। यद्यपि ये कथोपकथन किसी नाटक के भाग तो नहीं तथापि अभिनयात्मकता से पूर्ण हैं। काव्य में सवाद सदैव दो रूप में निबद्ध होते हैं अनुभाव तथा उद्दीपन।

कुमार सम्भव में कथोपकथन—

कुमार सम्भव में कामदेव-इन्द्र, ब्रह्मचारी-पार्वती, हिमालय सप्तपिण्ड इत्यादि कुछ सवाद बड़े ही रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। इन सवादों में कुछ भी अनर्गल नहीं कहा गया है, बल्कि उनका एक-एक शब्द वाञ्छित प्रभाव उत्पन्न करने वाला है।

इन्द्र-कामदेव सवाद - इन्द्र-कामदेव प्रसन्न कुमारसम्भव के तृतीय वग में आया है। इन्द्र की जाना से कामदेव उनके दरबार में पधारता है और आते ही कहने लगता है—हे स्वामि ! तूना लाका में ऐसा कौन सा काय है, जिसे आप मेरे द्वारा कराना चाहते हैं। फिर कहता है—ऐसा कौन सा पुरुष उत्पन्न हो गया है जिसने घोर तपस्या करके आपके मन में ईश्या जगा दी है अथवा आपका शत्रु बनकर ससार के कष्टों से घबराकर मोक्ष की आर चला पडा है। आपका शत्रु यदि शुक्राचार्य से भी नीति पढकर आया होगा, तो भी अत्यंत भोग की इच्छा से ऐसा हुआ दूत बनाकर मैं आपसे पास भेजता हूँ, जो उसका धर्म, अर्थ दोनों को नष्ट कर देगा। अथवा ऐसी कौन सी हठीली पतिव्रता आपके चंचल मन में बैठ गयी है—मैं उस पर ऐसा ध्यान चलाता हूँ जिसमें कि वह अभी आपके गले आ लगेगी। हे स्वामि ! आपकी कृपा हो तो मैं एकमात्र वस्तु को साथ लेकर महादेव जी के भी छत्रके छुटा हूँ। कामदेव के अनुभाव रूप इन वचना से उसके दर्प-एवं उसकी असाम शक्तिमत्ता की व्यञ्जना हो रही है। कवि ने निरूपण काम की वीर पुण्य रूप ही अभिप्रेत है क्योंकि शिव जैसे योगी की समाधि भङ्ग करना किसी साधारण पुरुष के सामर्थ्य से परे

है। इसानिए उन्होंने इस काय व लिए काम जैम प्रभूत शक्तिसम्पन्न देव का ही चयन किया है।

किन्तु फिर भी आना पालक की भाँति वह किना प्रकार अच्छा कहकर दमन का साथ लेकर निवृत्ततावन की ओर चन पडा। महा उनके कर्तृनिष्ठता एव स्वामिभक्ति का सुदृग् व्यजना ही रहा है।

शिव शायती सवाद—

कुमारसम्भव का यह कथोरकथन इतना उच्छृष्ट है कि यह सण्डवाच्य माना जाता है। हिमालय पर तपस्या करता हुई पावती के पास शिव जा ब्रह्मचारा वेश बना कर आत हैं और आत हा पावता क रूप शीत की प्रशमा करत हुए उनका कुशल क्षेम पूछत हैं नैम कोई पण्डा यज्ञमान स अपनी बात कहलान व लिए उसकी आवभगत करता है तथा बाता ही बाता म उसकी सहानुभूति प्राप्त कर लेत हैं। व पावता के मुक्त स हा प्रभूत सम्पदा के रहत हुए भी कठोर तपस्या का कारण पूछते हैं। किन्तु पावता एक भारतीय कन्या हैं शालीनता के आवरण म टनी रहता हैं। भारतीय स्त्रिया स्वभाव स हा लज्जशील होती हैं। अत वह अनन मुक्त स अनन प्रेम का निवचन नहीं कर पातीं इसानिए वह अपनी सखा को वालन के लिए सकेत करती हैं। सखा वताता है ता व उनकी उग्र तपस्या का हँसा उडात हुए कहत हैं यात भा किस वैनुक्त स प्रेम करन लगा हैं। पाणिग्रहण क समय विवाह के मङ्गल स सूत्र स सजा हुना आपका यह हाथ शकर जा के सप लिपट हुए हाथ का केन छू सकेगा ? कहा ता हस छ्मा हुई चुनरा आड आप और कहा रक्त का बूद टपन्ती हुई महादेव जा क कचे पर पडी हुई हाया का ध्यान। ब्रह्मचारा क यह वाक्य शिव के शायती व प्रेम का उगीत करन में इधन का काय करत हैं जिस सुन्दर पावती जा क्रोधित हा उठता हैं उनके हाँठ काने लगत हैं और नत्र लान हा जात हैं और कहती हैं— जिनमें योग्यता नहीं हाता व सवन महादेव जा का कित्ता भा प्रकार नहीं जान सकत। उनके अनुभाव रूप इस वाक्य स शिवनिन्दक ब्रह्मचारा का अवहलना एव शिव क प्रति एकनिष्ठ प्रेम का व्यजना होता है। अत पावता क य वाक्य उनके प्रेमभाव क व्यक्तक मान जायेगे।

यह सारा स्पन-शायता व अनन्य प्रेम शङ्कर के प्रति अद्वैत निष्ठा-गम्भीरतम् अनुराग का परिचायक है। शिव क प्रति पावता क मन का आस्था का मान किसी प्रकार नहीं लगाया जा सकता यदि कुछ अन्तज मिल सकता है तो पावता का तपस्या के स्वप्न स हा। औपधिप्रस्य का नारिया न वरपाना क समय में पावती के प्रेम का माटर स माना था—

शिव पावती के सवाद का अतः तो शृङ्गार की प्रेम कहानी को, सर्वोत्तम भूमि में प्रदर्शित करता है जिसमें नाटकीयता की पराकाष्ठा है "त वीक्ष्य वेपथुमती" जिसे शाङ्गुतल निर्माता को ही प्रतिभा बलिष्ठ कर सकती थी।

हिमवान् सप्तपिण्ण—

कुमारसम्भव के पष्ठ सग म वर्णित हिमवान् तथा सप्तपिण्यो का वातालाप भी बड़ा ही व्यञ्जनापूर्ण है। शङ्कर की आत्मा से सप्तपिण्ण हिमवान् के पास जाते हैं। हिमवान् उनकी यथोचित अन्वयता करते हैं ऋषिगण उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और उनकी महिमा का व्याख्यान करते हुए कहते हैं कि—'भगवान् विष्णु की महिमा ससार में तब फैली थी जब उन्होंने वामन-अवतार ग्रहण कर—तानों लोनों को नाप लिया था, पर आपकी महिमा तो पहले से ही तीनों लोको में फैली हुई है। यज्ञ का भाग पाने वाले देवताओं में स्थान पाकर आपने सुमेरु पर्वत की मुनहरी एक ऊँची चोटिया को नीचा दिखा दिया।' इस प्रकार से उनकी प्रशंसा कर पुनः शिव का शुभ सन्देश सुनते हैं।' —गा लोक के नाथ भगवान् शङ्कर ने हम लोगो क मुँह से सन्देश भेजकर अपने लिए आपकी पुत्री पावती माँगा है।' सप्तपिण्यो के ये वाक्य उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं।

यहाँ एक ओर जहाँ हिमालय के शिष्ट व्यवहार द्वारा उनके चरित्र के विनय की व्यञ्जना होती है वहीं दूसरी ओर कवि प्राचीन विवाह-तद्धति की ओर संकेत करता है। स्त्री-पुरुष में कितना ही प्रेम क्यों न हो, विवाह के क्षेत्र में उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता पड़नी है जो कि उनके गुरुजनों से उनके विवाह के सम्बन्ध में बात कर सके। यही कारण है कि शङ्कर पावती का मिलन हो चुका था फिर भी वे सादर सप्तपिण्यो को पावती के पिता के पास भेजते हैं और उनकी अनुमति की प्रतीक्षा करते हैं। यह हमारी भारतीय मस्तिष्क में प्रसिद्ध वैवाहिक पद्धति का स्वरूप है और इसी की मुद्दर पञ्जना कवि ने हिमराज तथा सप्तपिण्यो के बयोपकथन के माध्यम से की है। साथ ही, विवाह के लिए शाश्रता होते हुए भी, शिव के धैर्यशाल स्वरूप का अनुपम दिग्दर्शन हुआ है।

रघुवश

दिलीप सिंह सवाद

रघुवश का सबप्रथम सवाद दो सिंहा का होता है एक हैं अवधराज द्वितीय हैं वानराज। दुष्ट सिंह का, राजा दिलीप ज्यो ही बध करना चाहते हैं क्योंकि उनका हाथ बाण म सलग्न हो जाता है और वे बाण-संचालन में असमर्थ हो जाते हैं। इसी समय राजा दिलीप को आश्चर्यचकित सा करता हुआ सिंह मनुष्य का बाणी में

कहता है— तुम पर हाथ न उठाया क्योंकि तुम मुझे मार नहीं सकते । मैं भगवान् त्रि का कुम्भोदर नामक मुक्क हूँ । मुझे इस देशवार की रक्षा के लिए नियुक्त किया है । अतएव इपर आने वाले पशुधा को शाकर मैं अपना शत्रु निर्वाह करता हूँ । हे राक्षस ! आत सन्निवृत्त न हा कि आत गो का रक्षा नहीं कर सक क्योंकि इन्व न त्रिष्का रक्षा सम्भव नहीं उत बचा मुकने म गविदा क नाम को समझू नहीं मगता । इस (उगातन रूप) कपन म रात्रा को क्लिप्त गतोर मितता है किन्तु व गो को केने छोड़ सका है, अतएव नम्र प्रायता करत हुए कृत हैं — मैं भा भगवान् ग्दुर का सम्मान मुद्दाग हा तरह करता हूँ इत्यति तुम उनका आत्मा का पानन भयन करो किन्तु तुम वा गो का रक्षा करना मरा परम कर्मण है, अतएव मैं उमका उगात नहीं कर सकता । हे सिंह ! तुम उसके शत्रु मुझे शाकर अपना पट भर मा, क्योंकि उमका नहा मा बद्धा सींग को त्रिपना उमका म इतक आत का यह देग रहा हागा । (त्रिपन का यह उक्ति प्रमुक्त है ) ।

यह सुनकर सिंह त्रिपिर् मुम्बान सहित रात्रा का समताता हुआ कहता है— अगत में मुद्दाग एक शत्रु रात्र है । तुम पुरा और मुद्दर हा । आरक्षक है एक सामान्य वा गो के लिए अपना सर्वस्व दाद रहे हा । अपना प्राण दर वा तुम कपन एक जीव को हा रक्षा कराये किन्तु यदि आविष्ट रहा, तो सारा प्राण का पुनवत् पानन करगे ।

यह कानिनाम का अनुगत रचना-कीर्तन है । दप वि का वा अम्पितान हा मुना वा किन्तु त्रिपन का त्रिपन त्रिपिर् व समरूप है ।

इस संवाद म कहा भा अतिष्टनारूप कपना का प्रमाण नहा किया गया है । सम्पूर्ण कथोरकथन म रात्रा के नम्र विनया सर्पित्वा चरित्र का सुन्दर व्यक्तता हुई है । उनका कपन उनका संस्मृति एवं कुन का मर्णा का रणक है ।

रघु दूत—

रघुवरा के वृत्तय संग म वर्णित रघु दूत संवात् रघु के वार चरित्र का सुन्दर व्यक्तता कराता है । हे दूत ! आत वा मग काम में विप्र हातन वात रात्रा का वध करन बात है कि जात कया मर रिता के मग म विप्र हातन रहे हैं । यत् वा माग त्रिपान वाले महाभाषा का ऐसा तुम्हें कार शाना नहा दता । रघु के अनुभाव रूप दन कचना म दूत बढ ही जातवचकित हात है और कहत है—तुम वा कहत हो वह सत्य है पर हम कानिनाम का यह भा काम है कि विरामिना स यत् का रक्षा करें । मैं तो यत् करन का ना म्प पारा है, उस मुद्दहार त्रिपि मुद्दस धर्मना आहत है । इस संघार में शत्रुत्रु कवल मेरा नाम है यदि तुम मपस अत सत का

प्रयत्न करोगे तो हमारे क्रोध से मरम हो जाओगे ।' इन्द्र के उद्दीपन रूप इस वाक्य को सुनकर रघु क्रोधाभिभूत हो उठते हैं, और निरङ्गता पूर्वक हसकर कहते हैं—'यदि आपने यही निश्चय किया है तो शस्त्र उठाइये और युद्ध कीजिये । रघु को बिना जीते आप घोडा लेकर नहीं जा सकते ।' तत्पश्चात् दोनों में घमासान युद्ध हाता है और रघु विजयी होते हैं ।

यहाँ रघु का वीरोक्तियाँ उनका धीर चरित्र की व्यञ्जना करने में पूरा समय है ।

### रघु-कोरस—

रघुवश के पंचम सर्ग में—रघु की दानवृत्ति के प्रसङ्ग में रघु एव कोरस के वधापकयन का सुन्दर वणन प्राप्त होता है । कोरस रघु से मित्रता माँगने आते हैं—'रघु उनका सत्कार करते हैं । किन्तु रघु के हाथ में मित्रता का पात्र देखकर चिंतित हो, कोरस से कहते हैं—'हे राजन् ! आपके राज्य में सब प्रकार का सुख है । बर्षों की पूजा करना आपके वश का धर्म है । मैं आपके पास कुछ माँगने आया था किन्तु मुझे आने में कुछ विलम्ब हो गया, इसी का मुझे खेद है । आपने अपना सब कुछ दान दे डाला, केवल यह शरीर ही आपके पास शेष है ।' इतना बहकर कोरस विषादमना अवनत जान के लिए तत्पर होते हैं किन्तु कोरस क (उद्दीपन रूप) इन वचना को सुनकर परम धार्मिक रघु कहते हैं—आप जैसा वेदपाठा ब्राह्मण गुह्यदक्षिणा व लिये हमारे पाग धन माँगने आये और यहाँ से निराश होकर लौट जाये यह नहीं हो सकता । इसलिए हे द्विजवर ! आप मेरी यश शाला में चलकर दो-चार दिन विश्राम कीजिये तब तक मैं आपकी गुह्यदक्षिणा के लिए कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य करूँगा । बाद में अप्रत्याशित रूप से धन वर्षा होने पर उह विनम्रता पूर्वक इच्छित धन दान स्वरूप देते हैं । यहाँ याचक की दीनता और दाता क सहृदयत्व की सुंदर व्यञ्जना हुई है । इस प्रकार यह सवाद रघु के दानवीर स्वरूप का व्यञ्जक है ।

### राम-परशुराम—

राम द्वारा शिव-धनुष तोड़ दिये जाने के फलस्वरूप परशुराम अत्यन्त प्राधित होत हैं । इसलिए विवाह के पश्चात् लौटते हुए राम के भाग में प्रकट होकर बड़े ही राय पूरा स्वर में कहते हैं—मेरे पिता का वध करके जिन शत्रुओं में मुझ से शत्रुता है ली है, उह बहुत बार मार कर मुझे कुछ शांति मिली है, पर जैसे डण्डे से छेद देने पर रूप फुफकार उठता है वैसे ही तुम्हारा पराक्रम सुनकर मेरे शरीर में आग लग गयी है । जनक जी के जिस धनुष का कोई राजा आज तक झुका मान सका, उसी को तुम्हें तोड़ दिया । अब तक मैं जो सबसे बढ़कर बलवान् समझा जाता



था - वह सारा यश आब नष्ट हो गया है । पहले सगर में राम बटने से मुझे ही लोग समझते थे, किंतु वह अर्थ अब तुम्हारे नाम के साथ लगता जा रहा है—यह सब देखकर मुझे लज्जा होता है । इसलिये क्षत्रियों का नाश करने वाला मुझे तुम्हारा पराक्रम तब तक अच्छा नहीं लगता, जब तक तुम्हें जीत न लूँ । इसलिये युद्ध तो पछे होगा पहले तुम मेरे इस धनुष पर डोरी चलाओ । यदि तुम ऐसा कर सोगे तो मैं अपना पराजय स्वीकार कर लूँगा । परशुराम के उद्दीपन रूप इन वचनों को सुनकर राम हसते हँसते इस प्रकार धनुष को हाथ में ले लेत हैं मानो परशुराम व वचन का वही ठीक उत्तर हो । राम धनुष को तत्काल ही प्रत्यक्षा युक्त कर दते हैं और परशुराम हतप्रम से रह जाते हैं । तब राम कहते हैं— यद्यपि थापने हमारा अपमान किया है, पर आप ग्राह्यण हैं इसलिए निदया हाकर मैं आपका वध नहीं करूँगा पर यह बताइये कि इस बाण से मैं आपको गति राहू या आपका उन दिग्ग लाका म पहुँचना रोक दूँ जो आपन अपने यज्ञ द्वारा अर्जित किया है ।'

यह सुनकर परशुराम कहते हैं मैं आपको दखत ही प चान गया था व आप ही पुरातन पुरप हैं, किन्तु मैंने यह जानन क लिए आपको बष्ट दिया था कि थाव विष्णु का किजना तेज लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुमे हैं । इसलिये आप मेरी गति न राकिये ।'

यहाँ एक ओर जहाँ राम के शील विनम्रता एवं तेजस्विता का वधन हुआ है, वही दूसरा ओर परशुराम के क्रोधो, घमण्डी, उदण्ड स्वभाव की व्यजना हुई है । राम माधारण पुरप नहीं, साक्षात् विष्णु के अवतार हैं । वे दिव्य शक्ति से युक्त हाते हुये भा विरोधियों के साथ सदाचरण करते हैं—यही कहना कवि को अभिप्रेत है ।

कुश तथा जयोध्या की नगरवध—

रघुवश के पीडण सग मे वर्णित यह मवाद बडा ही उत्तृष्ट एवं नाटकीयता से परिपूण है । अधरात्रि मे अवरचित नारी को सम्मुख स्थित दख, कुश विस्मित हो जाते हैं और विस्फारित नेत्र सहित पूछते हैं— हे देवि ! तुम कौन हो तुम्हारे पति का क्या नाम है और मेरे पास किस प्रयोजन से आयी हो ? तुम मेरे इस बन्द भवन मे अ दर तो आ गई हो किन्तु तुम्हारा मुख से यह प्रकट होता कि तुम योगिनी हो, क्याकि तुम हिम से मारी हुई कमलिनीवत उदास दिखाई पड रही हो ।' कुश के (अनुभव रूप) प्रश्न को सुनकर, वह स्त्री उत्तर देती हुई कहती है - हे राजन् ! जब भगवान् राम वैकुण्ठ जान लगे थे, तब जिस निर्दोष अयो मापुरी के निवासियों को अना साथ लते गये थे, मैं उसी अनाथ अयोध्यापुरी को नगरप्रेवी हूँ ।

अन्त मे अयोध्या की करुणगाथा को सुनकर, नगरदेवी राजा से प्रार्थना करती हैं कि 'आ अपना कुलपरम्परा की राजधानी अयोध्या मे चलकर रहिये' और कुश भी 'तथास्तु' बहकर अयोध्यापुरी जाने का निश्चय करते हैं ।

कवि ने सवाद के माध्यम से कुश के जितेन्द्रिय चरित्र एव अयोध्या की मार्मिक स्थिति की व्यजना की है ।

### सीता-लक्ष्मण सवाद—

राम की कठोर आज्ञा के फलस्वरूप लक्ष्मण, सीता को वन में छाड़ने जाते हैं । वहाँ राम की आज्ञा कह सुनाते हैं और विनीत स्वर से कहने लगे—'देवि ! मैं पराधीन हूँ । इसलिए स्वामी का आज्ञा से मैंने आपके साथ जो कठोर व्यवहार किया है उसके लिए क्षमा कीजिये ।' सीता जो बोली ! 'हे सौम्य मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ । तुम चिरजीवी हो और सदैव मातृभक्ति का पालन करो । श्वश्रूजना से मेरा प्रणाम बहकर निवेदन करना कि मेरे गभ मे आपके पुत्र का तेज है अतएव मेरा कुशल मनाते रहियेगा । राजा से जाकर कहना कि 'आपने भुझे अग्नि मे शुद्ध पाया था, किन्तु इस समय कलङ्क क भय से जो मेरा त्याग किया है, वह आपके प्रख्यात रघुकुल के योग्य नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय पूर्व आपने जिस राजलक्ष्मी का तिरस्कार कर मेरे साथ वन-गमन किया था वही आज ईर्ष्यावश मेरा प्रतिष्ठा-पूर्वक आपके घर मे रहना न सह सकी । किन्तु हाय रे विधाता ! वन मे जिन तपस्विनी को मैंने आश्रय दिया था, अब मैं उन्हीं की आश्रिता बनकर किस प्रकार रहूँगा । मेरे गभ मे यदि आपका तेज न होता, तो मैं अवश्य आज ही प्राण त्याग देती किन्तु पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् मे भ्रूय मैं दृष्टि निविष्ट कर कठोर तपस्या करूँगी जिससे अगले जन्म में आप ही मेरे पति हो और मेरा कभी भी आरसे वियोग न हो । अपना स देश कहते कहते सीता अत्यन्त विह्वल हो जाती है और पुन कुछ सोचकर लक्ष्मण से कहती है—हे सौम्य ! राजा से कहना कि त्याग देने पर मैं यह समझकर मेरी देखभाल करते रहियेगा कि सीता आपकी प्रजा और तपस्विनी है ।

यह सुनकर लक्ष्मण कहते हैं—'हे देवि ! मैं सब कुछ कह दूँगा ।'

यहाँ एक ओर लक्ष्मण की दीनता, नम्रता एव असहायता की व्यजना हो रही है, तो दूसरी ओर सीता की दीनता, करुणा, तथा विपद का सुन्दर कथन हुआ है । इस प्रकार इस सवाद के माध्यम से करुण रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

## (घ) छन्दो की व्यञ्जकता—

छन्द योजना काव्य शिल्प का महत्वपूर्ण अङ्ग है। काव्य का आत्मारस का महत्वपूर्ण सम्बन्ध मानव अन्तस् की भाव तरङ्ग से है। मनावेग काव्य में प्रयुक्त शब्दों की, स्वर लहरी से उद्बलित होते हैं। यह स्वर लहरी मधुर, ललित एवं पर्य लय की व्यञ्जक होती है और यही लय ही छन्द को आत्मा है। इस प्रकार काव्य के यम्य रस और छन्द का औचित्यपूर्ण सम्बन्ध कुशल कवि की काव्यकला का परिचायक है। मधुर ललित अथवा पर्य लय को व्यञ्जना कवि भिन्न वर्णों के संयोजन से करता है यह विविध विधि का वण संयोजन वृत्तविधि का उद्देश्य है। अस्तु छन्द-योजना का रस व्यञ्जना से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

संस्कृत काव्य शास्त्रों में छन्दों की प्रकृति पर गहराई में विचार किया गया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने छन्दों के विषय में विशेष रूप से विचार किया और इस शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया कि अमुक छन्द अमुक भाव अथवा रस या वस्तु वणन के लिए विशेष उपयुक्त है। छन्दयोजना के विषय में उनका कथन है -

‘काव्य म रस तथा वणनीय वस्तु के अनुसार छन्द का साव समपत्रर विनियोग करना चाहिये।’

## अनुष्टुभ—

आरम्भे सगवधस्य कथाविस्तारसङ्ग्रहे ।

समोपदेशवस्तान्ते सन्त शतन्त्यनुष्टुभम् ॥<sup>२</sup>

(जिस सग के प्रारम्भ में कथा के विस्तार का संग्रह करने तथा उपदेश या वृत्तांत वणन में अनुष्टुभ छन्द के प्रयोग की प्रशंसा विद्वानगण करते हैं।) अनुष्टुभ का स्वभाव इतिवृत्त वणन करने में बड़ा सुविधापूर्ण होता है। अतएव इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों में इसका बाहुल्येन प्रयोग किया गया है। कालिदास को भी जहाँ कहीं इस प्रकार के अधिक इतिवृत्त को कहना हुआ है इस वृत्त का प्रयोग किया है लेकिन उसमें वृत्तान्त नहीं रहने पाया। उनकी प्रतिभा ने अचञ्छार योजना में भावा का माधुर्य इस प्रकार मरा है कि वे भी सरस हो गये हैं।

कुमारसम्भव के द्वितीय सग में वृत्रामुर द्वारा सज्जए गय देवगणा का ब्रह्मा की शरण में जाना और उनकी अपनी करुण गायी मुनाकर पापी रक्षस के वध का उपाय पूछे जाने आदि पौराणिक इतिवृत्त का वणन हुआ है। पुराणा में यह कथा बड़े

१ मु० नि० ३।७

२ मु० ति० ३।१७

विस्तार के साथ वर्णित है कि 'तु कवि ने केवल एक ही सग मे—उस प्राचीन आख्यान का समेट लिया है।' इसी प्रकार छठे सग मे सप्तपिपा द्वारा शिव के विवाह का शुभ संदेश लेकर हिमरात्र के पास जाने का वणन हुआ है। कवि ने इन दोनों कथाओं का वणन अनुष्टुभ छंद मे किया है। यह दाना वयागे सर्ग के प्रारम्भ में एव पौराणिक हैं।

रघुवश मे भा अनुष्टुभ का बहुश प्रयोग हुआ है। प्रथम सग मे महाराज दिलीप की कथा के अतगत उनकी उज्ज्वल कीर्ति एव कुशल राज्य-परिचालन का<sup>१</sup> दशम सग मे—महाराज दशरथ की कथा, द्वादश सग मे राम की कथा<sup>२</sup>—वन-गमन तथा राम-रावण युद्ध पंचदश सग में प्रसिद्ध प्राचीन आख्यान - लवणासुर-वध तथा शम्बूक वध, कुशल व द्वारा राम की समा म मधुर गान, राम सीता का पुन-मिलन एव सीता का धरता में प्रवेश, तथा सप्तदश सग मे कुश के पुत्र राजा अतिथि की कथा इत्यादि प्रसङ्गा का वणन हुआ है।

रघुवश क चतुथ सग मे रघु के युद्ध यात्रा के प्रसङ्ग मे भी अनुष्टुभ का प्रयोग किया गया है।<sup>३</sup> निम्बिजय के लिये सैन्य तैयारी चारो प्रकार की सेनाओं का गमन तथा राजाओं के पराजय का वणन इसी छंद में हुआ है। रघु के प्रस्थान का वणन दक्षिणे—'सौभाग्यशाला रघु ने पहले राजधानी तथा सीमा के गढ़ों की रक्षा का प्रबंध किया, फिर शुभ मुहूर्त मे छह प्रकार की सेनाओं को लेकर विजय के लिये चल पडे।

मन्दाक्रान्ता—

'प्रावृटप्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते।'<sup>४</sup>

(वर्षा एव प्रवास और विपत्ति के वणन में मन्दाक्रान्ता छंद (काय में) उपयुक्त होता है)

कालिदास का लघु काय 'मेघदूत आचोपाद इसी छंद में सर्जित है। मन्दाक्रान्ता के प्रयोग का इस काव्य मे विशेष कारण है—इस काव्य का प्रारम्भ वर्षा ऋतु के वणन से होता है तथा प्रवासी यत्र की कर्ण स्थिति के वणन के उपरान्त

१ कु०स० २।१-६३

२ कु०स० ६।१-६४

३ रघुवश १।१-६४ तक

४ रघुवश १०।१ ८५ तक

५ वही, १२।१ १०१ तक

६ वही, ४।१-८६ तक

७ मु०ज० ३।२१

समान्त्र हा जाता है। वषा कान म मष क आगमन स साधारण प्रवास का १५ भा आश बन जाता है और उसकी गति म-पर हा जाता है। इमानिए क्षेमन्त्र न वषा प्रवास एव विपत्ति क वषण में मन्त्रात्राता क प्रयोग का निर्देश दिया। वृत्तरत्नाकर में मन्दात्रान्त्रा का मृदु चरणा म प्राण करता हूया, मुग्ध एव स्निग्ध म-पर गति वाना कहा गया है।

दो-य कर्म करन वाना मष मन्त्र मन्त्र चरण-याम स हा अपना लम्बा यात्रा में अपसर हाता है। भौगोलिक दृष्टि म भा दक्षिण में चलकर मानगून उसा पष का अनुसरण करता है जिस कालिदास ने अपना रम स्निग्ध रचना म निर्दिष्ट किया है और इस पष म वषा क नायक मघदूत ने मन्त्रात्राता क रय पर चलकर मनाहारा प्रवास किया।

मघदूत का प्रवास नायक दुभाग्य श्रमन्त्र नायक है। इमनिध कवि न उमक काश्य का वषण मन्दात्रान्त्रा म किया है। विषागा यन अपना पना का म का-कुल दश, का परिचय दता हुआ कहता है। विरह क बठार तिन बडा हा बठिनाइ स व्यतात करत करत उसका रूप विवण हा गया हागा। उस दमकर तुम्हें भ्रम हो सकता है कि यह काइ वाना है या पान म मारा हुई कमलिना।

मघदूत में महाकवि का सारा काव्य नेपुण्य पुजाभूत हाकर प्रस्फुटित हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि 'कालिदास का समग्र काव्यकला का दशन किमा एक स्थान पर दखना है ता मघदूत का अध्ययन करना चाहिये।

इस प्रकार मन्त्रात्रान्त्रा का अपना मन्त्र मन्त्र गति विप्रलम्भ शृङ्गार क कर्ण कोमलभाव का श्रवना करन म विशेष सहायक सिद्ध हुई है और कालिदास न उनक प्रयोग म विशेष निपुणता का परिचय दिया है। तथा ता आचार्य क्षेमन्त्र भा कालिदास के मन्दात्रान्त्रा का प्रशंसा करते हैं—

इस काव्य का अध्ययन कर यह कहना हा पढता है कि 'मघदूत का मन्दात्रान्त्रा अपना समस्त विशपता लकर अमर हा गयी है। कवि का सम्पूर्ण वाग्मैभव इसम प्रकट हुआ है। 'मघदूत म उ-दृष्ट कव्यना वैभव, कलापूर्ण सृजन सौष्ठव भावा का एकाग्रता अद्भुत एव अद्वितीय दङ्ग स व्यक्त हुई है। उनकी मन्त्रात्राता न दक्षिण से उत्तर दिशा तक—प्रवासी यज्ञ का स-दश उसका प्रिया तक पृथ्वान का स-रन

दोस्र काय किया २ । मृदु और मन्दर गति म का-पौरमिका का त्रिस आनन्द को अनुभूति हुई है—वह सचमुच आश्चर्यजनक है ।

रघुवश मे भी यत्र-तत्र म'दात्रा ता का प्रयोग हुआ है । अष्टम सग के अन्त में विधुर राजा अत्र के शरीर र्वाग' चतुदश सग के अन्त मे सीता विधोग के कारण दुखि त राम द्वारा यज्ञ करना , पचदश सग के अन्त म राम का शरीर' र्वाग, पौण्य सग के अन्त मे कुश कुमुद्वती का विवाह तथा सपौ का शान्त हो जाना', सप्तदश सग मे अन्त म राजा अतिथि के समुद्रिशानी राज्य का स्वरूप', तथा एकोनविश सग के अन्त म अग्नि वण की मृत्यु के फलस्वरूप दुखि त राना' इत्यादि प्रसङ्ग का वणन म'दात्रा ता छन्द म हा हुआ है । अग्निवण का मृत्यु क उपरा न महाराजा की शाका-बस्था का चित्रण देखिए—'राजा का दु खद मृत्यु म महाराजा का आँवो के उष्ण अश्रुआ म तोपे हुये गम पर, जब कुल पराम्परा के अनुधार हो वाल अमियेक के समय, सोन क घडे से शीतल जल पडा, तो वह शातल हो गया ।'

### उपजाति

शृङ्गारालम्बनोदारा नायिका रूप वणनम् ।

यसन्तादि तदङ्ग स्र सन्श्रायमुपजातिभि ॥१०

शृङ्गारादि के आलम्बन स्वरूप उदार नायिका के उदार रूप का वणन तथा शृङ्गार के अङ्गभूत वसन्तादि का वणन उपजाति छन्द म करना चाहिय ।

कालिदास के काव्या म उपजाति छन्द का प्रचुर रूप मे प्रयोग हुआ है । कुमारसम्भव म कवि न पावती के रूप वणन के अवसर पर उपजाति का सफल प्रयोग किया । शृङ्गार रस का आलम्बन-स्वरूप पावती क मन्त्र का प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है—

बडा-बडा आँखों वाली पावती की चितवन आँघा स हिलत हुय नाल कमलो के समान चलत थी । उसे देखकर यह पता नहो चलता था कि यह कला उहीने पावती से सीखी है या पावता ने उनसे ।<sup>८</sup>

१ रघुवंश ८।६५

३ वही, १५।१०३

५ वही, १६।५७

७ मु० ति० ३।१७

२ रघुवंश १४।८६ ८७

४ वही १६।८६ ८८ तक

६ वही, १६।५७

८ कु०स १।४७ ५२ बरु

कुमारसम्भव मृदाय सग म वामन्त-वपन में उपजाति का प्रयोग किया गया है। वामनायमन म प्ररति का बिन्न दगिये—'वमन्त व दान ही मूय भी दगिनायन म उगरायण बन जात हैं। उग समय शिणन म बहुता हुआ मनय पवन ऐसा प्रवात हाता है माना अतः पत्रि मूय व बन जान पर दगिण शिण दु गग होकर अतः मुह स सम्बा-सम्बा निम्बाग छार रहा हा। अगाऊ का मूय भा सगान नावे स ऊपर एक पून पना म मग गया ओर मुनमुनाउ बिपुत्रा वाता मुन्तरिया के चर्यों क प्रहाए का बाइ भा लमन नहीं दगा। मुन्तर वमन्त न नई कावनों व पग सगाकर आम की प्ररिया व बाग रीदार कर शिय। उन पर उगन जा भोरें बैठाए के एग मगत थ माना उन वाणा पर कामदेव क नाम क अरर निष हूए हैं।

पुन उपजाति छन्द का प्रयोग सप्तम अध्याय में नायक-नायिका व स्वाभाविक वय-साव-म व वपन म एव विवाह प्रसङ्ग म किया गया है। मुटौन अङ्गा वाचा पावता का निचता हाठ जा ऊपर क होठ म एक रगा म अलग हो गया था, त्रिष पर लगा हूइ विरुनाई न उग पर साचा खड़ाकर उन और भी मुन्तर बना शिया था वह हाठ जब फटबना था तब उग ममय, उसका मोभा श्रित्वाय प्रवात हाता था।

रघुवश म भा कवि न उपजाति का मरन प्रयोग किया है। छठे तथा सातवें सग में रात्राभा का विविध शृङ्गारिक चष्टाभा अत्र इन्तुमत्रा क प्रति श्विया व सहज आशयण का भाव उन दाना (अत्र और हनुमता) क अनुभावा तथा सचारिया का वपन उपजाति छन्द म हा हुआ है।

बही-बही कवि न उपजाति का प्रयोग अपना सुविधानुसार भा किया है, जैसे नायकों का अतिगम दानागलता श्विचय एव उनका वारता श्रियादि प्रसङ्गों को उपजाति छन्द म निबद्ध किया।

बुद्ध कार्णिक दृश्या का वपन भी कवि न उपजाति छन्द म किया है। चतुर्थ सग में बन म लीटे राम तथा माताभा का मिलन राम द्वारा सात्रा का श्याग हूय विदारक क्रन्दन तथा करुण सदा प्रेषण इत्यादि का वपन उपजाति म हुआ है।

बही-बही विस्मय एव आश्चर्यजनक यथाभावों के कथन म तथा जन-विहार व प्रसङ्ग में भा उपजाति छन्द का शिष्यन हुआ है। कुा के शयनागार म अपोश्या

देवी के आगमन का वणन देखिये—'एक दिन आधी रात को, जब शयन-गृह का दीपक टिमटिमा रहा था और सब लोग शयन कर रहे थे कुश को एक स्त्री दिखाई दी, जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, पर उसका वेश दखने से ऐसा जान पड़ता था कि उसका पति परदेश चला गया है।

अयोध्या की मार्गिक दशा का वणन भी इसी छंद में हुआ है।

रघुवशी नृपो क वश वणन म भी कवि ने उपजाति का ही प्रयोग किया है।

'ऋतु संहार' में ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, वसन्त इत्यादि ऋतुओं का वणन उपजाति छंद में हुआ है। इन ऋतुओं के आगमन से मानव मन में आह्लाद एवं आनन्द का संचार होता है और इनके प्रभाव से मानव के मानस पटल पर सुप्त भावनाएँ जागृत होने लगती हैं। इन विविध भावनाओं की अभिव्यक्ति जितने सुंदर ढङ्ग से उपजाति में हो सकती है, अथ छान्दा में नहीं। वसन्त वणन देखिये—'बोयल एव मदमाने भौरा के स्वरा म गूँजने वाले, बीरे हुये आम के पेड़ों से भरा हुआ और मनोहर कनेर क फूलों वाले, अपने तीष्ण वाणों से यह वसन्त मानिनी स्त्रियों के मन का भेदन कर रहा है जिससे उनके हृदय में प्रेम जागृत हो।

इस प्रकार कालिदास ने अपने काव्य में उपजाति का सफर प्रयोग कर, अपनी सृष्टि अभिरुचि का परिचय दिया है। उनके काव्य में उपजाति का बहुल प्रयोग ने ही, सम्भवतः परवर्ती काल में उपजाति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया। काव्य में वैदर्भी रीति को व्यक्त करने में यह छंद अधिक उपयुक्त है—न बहुत बड़ा न बहुत छोटा। विशेषकर वीर एवं शृङ्गार रस का व्यक्त करने के लिए, इससे बढ़कर उपयोगी दूसरा छंद नहीं है।

वसन्ततिलका—

(वीर और रौद्र रस के मेल में वसन्ततिलक छंद उपयुक्त होता है)

वसन्ततिलक का यह स्वरूप कालिदास का अभीष्ट न था। उन्होंने वसन्त-तिलका का प्रयोग कहीं तो सग में किया और कहीं सग के वाच में। वस्तुतः अपनी प्रतिभा के प्रताप से कवि ने जिस छन्द को जहाँ लगाया, वह वहीं सज गया तथा

१ रघुवंश १६।१-६५ तक

३ ऋतुसंहार १।२१ तक

वही, ४।१ १३ तक

२ रघुवंश १८।१ ५१ तक

ऋतुसंहार २।१-२० तक

वही, ५।१ १० तक



उसी भाव का अभिव्यक्ति करने में सफल हो गया। कर्मात्मक भाँति के स्वयं में  
 गति का आवश्यकता नहीं है। अतएव इसके लिए बस-उत्तिवका छन्द उपयुक्त  
 होता है। क्योंकि इसमें भाव का गति में मानना या जानना है अतएव उक्त छन्द  
 का चयन करने में बस-उत्तिवका बड़ा उपयुक्त माना गया है। कुमारसम्भव में कवि  
 ने हाँसिक छन्द विप्रलाषी धैर्य पाएषे बन्धन के प्रसङ्ग में तथा बाप का मरने का  
 अवसर पर बस-उत्तिवका छन्द का प्रयोग किया। पावना का धार तथा कवि के  
 स्वयं मङ्गल का प्रसङ्ग है और कदा है ह कामवादा। मात्र म तुम ह्ये उर  
 द्वारा प्रत्येक अनामक ममता। इतना मुनक पावना का उर म विवना कष्ट  
 हुआ या कदा मरना का अवसर काय दूना ही जाता है या उमक विव निर  
 विना कष्ट दूना जाता है।

रघुवंश के कवि स्वयं पर बस-उत्तिवक का प्रयोग हुआ है। पवन सग म  
 इन्दुमत्रा का प्राप्त करने के लिए अत्र का विन्दा एव चारणा द्वारा अत्र के वा  
 चरित का प्रसक्ति गान नवम् सग म महागत्र मरुत्त का जागृत प्रता प्रया  
 सग म राम लम्भा मरुत्त इत्यादि के वाच आत्म चरित के व्यक्तता आदि के  
 प्रसङ्ग में भाँ बस-उत्तिवका छन्द का प्रयोग किया। इस प्रकार रघुवंश में  
 राजा का के वाच चरित के बचन में बस-उत्तिवका का प्रयोग हुआ है किन्तु  
 उसमें रीति का लोप भी नहीं है बस उक्त उक्त आत्मों तथा पोष्य स्व  
 कथन हुआ है।

वन में लौट राम का भजन के लोप मरुत्त करने का तथा महागत्र दारुण  
 के आसक्त के बचन देना छन्द में हुआ है।

नवम तथा अष्टमस्कंधों के अन्त में बस-उत्तिवका छन्द का उपयुक्त  
 पूर्वक प्रयोग हुआ। इस प्रकार बस-उत्तिवका छन्द का प्रयोग विविध विषयों तथा  
 विविध प्रसङ्गों के अवसर पर हुआ है।

ऋग्वेद में भी बस-उत्तिवका का प्रयोग मिलता है। कवि ने ऋग्वेद के प्रभाव  
 से हानि वाल मानव में परिवर्तना का ही अधिकतर वर्णन किया। इन सभी स्थानों  
 में शृङ्गारिक अनुभावा का कथन हुआ है। कवि ने बस-उत्तिवका का प्रयोग

१ कुमारसम्भव ३।७५

२ वही, ५।८५, ८६

५ रघुवंश ६।७६ ८२

३ कुमारसम्भव ४।५५

४ रघुवंश १३।६८, ७८ तक

६ वही १८।५०, ५३

चपाऋतु<sup>१</sup> शरदऋतु<sup>२</sup> हेमन्त ऋतु<sup>३</sup> तथा वसन्त ऋतुओं के अवसर पर किया है जिसमें प्रकृति के सौन्दर्य एवं मानव हृदय के मनोभावों की व्यञ्जना ही प्रधानरूप से हुई है।

रथोद्धता—

रथोद्धता विभाषेषु भव्या चन्द्रोदयादियु ।<sup>१</sup>

(भय चन्द्रोदयादि उद्दोषण विभावों का वणन रथोद्धता छन्द में करना चाहिए)

महाकवि कालिदास का रथोद्धता, छन्द के प्रति अपना स्वाग्रस्य है। जिस कर्म का परिणाम खेद रूप में परिणत हो जाए,—चाहे वह खेद रतिजनक हो, दुष्कर्म अनित हो या पश्चात्ताप जनित हो—या आश्लेषजनित हो, सबका वणन रथोद्धता छन्द में हुआ है।

कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में शिव पावती की काम-क्रीड़ा का वणन रथोद्धता छन्द में हुआ है। शङ्कर जब पावती का चुम्बन करना चाहते हैं, तो वे अपना होठ ही नहीं बढ़ाती और जत्र उन्हें हृदय से लगाना चाहते तो वे अपने हाथ तक नहीं उठातीं। इस प्रकार वाषाञ्ज के साथ, अधूरे रस के साथ भी, शिव जी ने बधू के साथ जो रति-क्रीड़ा की, उसमें उन्हें आनन्द ही मिला।<sup>१</sup>

रघुवश में दुःखात् घटनाओं के वणन में रथोद्धता छन्द का प्रयोग हुआ है। दशरथ के आश्लेषभय परिश्रम के प्रसङ्ग में<sup>२</sup>, मुनि विश्वामित्र के यत्र रक्षार्थं राक्षसों के वध के प्रसङ्ग में, राम द्वारा शिव के धनुष भङ्ग के प्रसङ्ग में, माग में परशुराम को देखकर दशरथ की चिन्ता के प्रसङ्ग में, तथा अग्निवण की काम क्रीड़ा एवं दुःखात् मृत्यु के प्रसङ्ग में<sup>३</sup> रथोद्धता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। क्षयरोग ग्रसित राजा अग्निवण की दयनीय स्थिति का वणन—धीरे धीरे उसका शरीर पीला पड़ गया। दुबलता के कारण उसने आभूषण पहनना छोड़ दिया, वह सेवकों के कन्धे का सहारा लेकर चलने लगा उसकी बोनी घीमी पड़ गया और यद्यपि राग से मूखकर वह ठीक विरहिण के समान दिखाई देने लगा।<sup>४</sup> इन श्लोकों में वणित स्थला को

१ ऋतु० सं० २।२१, २२

२, वही, ४।१४ ३८ तक

५ सु० ति० ३।१८

७ रघुवश ६।६८

८ वही १६।१-५५ तक

२ ऋतु० सं० ३।१-२२ तक

४ वही ७।११, ११-२८ तक

६ कु० सं० ८।१-६० तक

८ रघुवश ११।१ ६१ तक

दशरथ एसा प्रताप होता है कि कुछ विपदा एवं रोद क वणन व प्रसन्न क लिये कवि न रघुविरा का अनग स चयन किया है ।

प्रहृषिणी—

आचाप दीमद न प्रहृषिणा छन्द क विपर म विचार नहीं किया । कानिदास न प्रहृषिणा छन्द का प्रयोग कबल रघुवचन म किया है । प्रहृषिणा छन्द नहीं ता सग व अत म ओर कहा सग व मध्य म प्रयुक्त हुआ है ।

जहाँ सग व मध्य म इसका प्रयोग हुआ है वहाँ इसम दु ग का धारा म हर्षविरक का चित्रण हुआ है । वस्तुत यह छन्द अत्रपनामा हा है । रघुवचन के प्रथम सग म महाराज त्रिनाथ गुरु बलिष्ठ व पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछत हैं ता— बलिष्ठ नदिना का मया र उपाय बतात हैं । राजा यह सुनकर बट हा प्रसन्न होते हैं और उन्हें यह विश्वास हान लगता है कि उनको पुत्र अवश्य हा प्राप्त होगा ।'

महाराजा इन्दुमती का मु मु व पश्चात् दु ग का राजा अत्र अनन पुत्र का ध्यान कर तथा स्वप्न म दिया व समागम का आनन्द लेकर जिसा प्रकार अनन समय का व्यवहार करत सगे — इस दु ग व आनन्द म पदव्ययान का चित्रण कवि न प्रहृषिणा छन्द म किया है ।

त्रयाणा सग म—प्रसन्न चित्त राम व साता महिन अयाध्या लौटन का वणन प्रहृषिणा छन्द म किया गया है ।' आगे आगे अयाध्या का प्रजा चत्त रत्ना था ओर पाछे पाछे पुष्पक विमान चना जा रहा था त्रिम पर राम बैठ थ । इन प्रकार अर्द्ध योजन तक चलन क बाद राम न अयाध्या व उस मुन्दर उपवन म डरा जमाया, त्रिम पहले म हा शत्रुन न भला भाँति सञ्चित कर दिया था ।

इन प्रकार हृषमय प्रसन्ना का हा वणन कवि न प्रहृषिणा छन्द म किया है ।

मानिनी

कुर्यात्सगस्य पयत मानिनी द्रुततालवत् ॥५

(सग व अत म द्रुततालव क समान मानिनी छन्द का प्रयोग करना चाहिये) महाकाव्या म सग व अत म छन्द परिवर्तन करन का नियम है । सग की समाप्ति म जत्र कवि का जिसा कथा का अथवा जिसा प्रसन्न का भावना स समाप्त करना होता है—ता उस समय मानिनी छन्द हा अधिक उपयुक्त होता है ।

१ रघुवचन १।१५

२ रघुवचन ८।६२

३ वही, १३।७६

४ मु० ति० ३।१८

कालिदास के काव्यो म किसी किसी सग के अंत म मालिनी छंद का प्रयोग किया गया और किसी किसी सर्गांत म अथ छंदों (पुष्पिताम्रा, प्रह्विणी, मदा-क्रान्ता वसन्ततिलका इत्यादि) का भी प्रयोग किया गया है ।

कुमारसम्भव के प्रथम, द्वितीय, सप्तम और अष्टमसर्गों के अंत मे मालिनी का प्रयोग किया गया है । रघुवश मे द्वितीय, सप्तम, दशम, एकादश सर्ग के अंत मे मालिनी छन्द ही प्रयुक्त हैं । ऋतु संहार मे अंतिम सग के अतिरिक्त शेष सभी सर्गों के अंत में मालिनी का ही प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ कुमारसम्भव के सप्तम सर्ग की समाप्ति का चित्र देखिये—

‘नया विवाह होने स लज्जोली, महादेव जो क हाया द्वारा अंचल खांच जान पर, अपना मुंह छिपान वाली तथा सखियो की चुटकिया का ज्या त्या उत्तर देने वाली, पावता जो क आग आकर जब प्रमथादिगण अनक प्रकार क मुँह बनान लगे, तो पावता भी मन ही मन हँस दी ।’

वैतालीय—

महाकवि ने करुणरस के वणन म वैतालीय छंद का प्रयाग किया । रघुवश में अज-विलाप’ का वणन तथा कुमारसम्भव मे रति विलाप’ का वणन वैतालीय छंद म ही हुआ है । अज एव रति दानो ही करुणरस क आश्रय हैं । अतएव कवि ने उनही मामिक तथा दु खपूर्ण दशा का चित्रण वैतालीय छन्द मे किया है ।

इसी प्रकार रघुवश के नवम सग म दशरथ द्वारा—हाथी क भम मे तापस कुमार के मारे जाने जैसा दु खपूर्ण कथा का वणन कवि ने वैतालीय छन्द मे किया है ।<sup>३</sup>

वशस्थ—

(पाङ्गुण्यादि राजनीति सम्बन्धी विषया का कथन वशस्थ छंद मे शोभित होता है) किन्तु महाकवि ने वशस्थ का प्रयोग अपना सुविधानुसार किया है । कुमारसम्भव के पंचम सग मे पावती का कठोर तपश्चर्या का वणन इसा छंद म हुआ है ।<sup>४</sup> क्षीण बटि वाली प्रसन्नवन्दना पारता, गर्मी क दिना म अपन चारा ओर आग गलाकर उसी के बीच म खड़ी रहन लगा और चकाचौंध करने वाले नूय के प्रकाश को भा जातवर, सूर्य की ओर एकटक होकर दग्गजा रग्न लगी ।’

१ रघुवश ८।१, ६६ तक

२ कुमारसम्भव ४।१, ४४

३ रघुवश ६।७४

४ सु० ति० ३।८

रघुवश म महाराज रघु व वार वरित्र का व्यजना म वसत्य छ \* का प्रयोग मिनता है। रघु एष इन्द्र व युद्ध का वणन इसी छन्द में किया गया है—'रघु ने मार व पसा वान बाण म इन्द्र की वय्य जैसी ध्वजा काट डाली। उसस इन्द्र का ठेका ब्राह्म हुआ मानो किमा न बलपूर्वक दवताआ की राजनदमी व सिर क बाल काट लिये हों।

### पुष्पिताशा—

कालिदास न अधिकतर पुष्पिताशा छन्द का भी प्रयोग सग क अन्त म ही किया है। निमा शुभ काय म सफनता प्राप्त करने क निय प्रस्थान तथा सफनता प्राप्ति का वणन पुष्पिताशा छन्द म किया गया है। रघुवश के पचम सर्ग के अन्त म इन्दुमवा स्वयम्बर क निय प्रस्थान करत हण महाराज अज का वणन पुष्पिताशा छन्द म किया गया है।<sup>१</sup> गुदर नन्दा वान राजकुमार न उठवर शास्त्र दाग बटाई गयी प्रात काभान सभा उचित त्रियायों का और फिर उनक चतुर मेवरी ने बहुत गुदर वस्त्र पहनाए। इस प्रकार सजधज कर, व स्वयंवर के राज समाज की ओर चल गिये। स्वयंवर म सफनता प्राप्त कर सन का वणन अर्थात् इन्दुमवा द्वारा अज क गन म वर माना डान दन का वणन भी पुष्पिताशा म हुआ है।<sup>२</sup>

नवमसर्ग म महाराज दशरथ व आशुट गायन का वणन इस छन्द म किया गया है।<sup>३</sup>

कुमारसम्मव म आकाशवाणा क अनन्तर आश्वस्त हुई रति का वणन पुष्पिताशा म हुआ है।<sup>४</sup> षष्ठ सर्ग में पार्श्वता स मिलन क लिये महादेव जा की आतुरता का वणन इसा छन्द म हुआ है।

पावती से मिनन क लिए महादेव जी इतन उतावल हो गए कि तान दिन भा उहानि बडी कठिनाई से बाटे। जब महादेव जैसों की प्रम में यह दशा हो जाती है, तब भना दूसर लोग अपा मन का कैसे वश म कर सवन हैं। इस प्रकार भावा का तात्रता दिवान के लिए कवि न इस छन्द का साधन बनाया।

### द्रुतविलम्बित—

समृद्धि क वणन म कालिदास न द्रुतविलम्बित छन्द का याकला को है। रघुवश क नवम सर्ग म महाराज दशरथ क समृद्धशाता तथा धन धाय से पूण राय

१ रघुवश ३।१, ६६ तक

३ वही, ६।८६

५ कुमारसम्मव ४।४६

२ रघुवश ५।७६

४ वही, ६।६६, ७०

का वर्णन इसी छन्द में हुआ है। महाराज दशरथ बड़े ही प्रजावत्सल शासक थे। उनका कीर्ति दिग् दिग्गत में फैली थी। कवि उनके राज्य की समुन्नत दशा का वर्णन करता हुआ कहता है—दशरथ जी देवताओं के समान तेजस्वी थे और उनका मन भी सब प्रकार से शान्त था। राज्य के संचालन का भार अपने हाथ में लेते ही उनका देश समृद्धिशाली हो गया। रोग भी उनके राज्य की सीमा में पैर न रख सके, फिर शत्रुओं के आक्रमण की तो सम्भावना ही नहीं।

हरिणी—

‘ओदायस्योचित्यविचारे हरिणी वरा ॥’<sup>२</sup>

( उदारता, रवि, औचित्य इत्यादि गुणों के वर्णन में हरिणी छन्द श्रेष्ठ होता है। )

हरिणी छन्द का प्रयोग केवल रघुवंश में तृतीय सर्ग में अंत में हुआ है। महाराज दिलीप वृद्ध हो गए हैं, इसलिए उन्होंने सभी प्रकार से समर्थ रघु को राज्य का भार सौंप दिया। उनका यह काम सभी दृष्टि से उदारतापूर्ण तथा औचित्यपूर्ण था क्योंकि उन्होंने यह काम रघुकुल की परम्परा के अनुकूल किया था।<sup>३</sup>

महाकवि की कल्पना ने जिस छन्द का स्पष्ट किया उस छन्द द्वारा रस एवं भाव की व्यञ्जना में प्राण प्रतिष्ठा सी हो गई है। उनके द्वारा प्रयुक्त छन्दों का पर्यवेक्षण करने पर यह पाता जाता है कि महाकाव्य का कवि का प्रिय छन्द रहा है और उसमें उस प्रभूत यश एवं सफलता भी प्राप्त हुई है। कवि ने महाकाव्य के प्रति रुचि का परिचय मेघदूत के माध्यम से दिया है। महाकाव्य के पश्चात् उन्होंने अनुष्टुभ छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया और लगभग एक हजार श्लोकों की रचना इस छन्द में किया है। इसके पश्चात् उपजाति एवं क्रमशः अन्य छन्दों का प्रयोग हुआ है।

महाकवि का यह छन्द प्रयोग इतना सटीक एवं तथ्यपूर्ण है कि बाद में चलकर वे ही छन्द शास्त्र के नियम बन गए। यद्यपि छन्दों के प्रयोग में कालिदास ने अपनी वैयक्तिक रुचि को ही प्रधानता दी है किन्तु फिर भी वे विषय एवं रस के सवथा अनुकूल एवं मराहनीय हैं।

कालिदास के छन्द प्रयोग में कहीं भी ‘इतिवृत्तता’ दोष नहीं है। उनके सफल छन्द प्रयोग दत्त कर हम यह कह सकते हैं कि—“महाकवि ने अपने काम के द्वारा

१ रघुवंश ६।१, ५४ तक

२ सु० ति० ३।२०

३ रघुवंश ३।७०

रसा के अनुकूल छन्द का मात्रता का विधा हो दो है।" उनका छन्द परिधान काव्यात्मा रस को और भी अनकृत कर देता है।

अलङ्कारों की व्यञ्जकता—

काव्यात्मा रस का, शालङ्कार परम्परया आभूषणा की भाँति, अङ्गों का अनकृत कर मुशोभित करत हैं। अलङ्कारोंसे काव्य क शरभूत शब्द एव अथ सञ्जत हैं एव उनक द्वारा काव्यात्मा (रम्याय) परिष्कृत रूप में परिनिहित होता है। अलङ्कारों का यहाँ अलङ्कारता है अर्थात् यदि कवि का सरम्भ व्यंग्य अथ की अर्थात् केवल अलङ्कार-मात्रता में ही रहा तो वह काव्य चित्र काव्य कहनाता है। कालिदास जैसे ध्वनि क मिदहस्त महाकवि क लिए अलङ्कार-योजना सहज रूप में केवल व्यंग्य अथ को अलङ्कृत करने में परिताप एव सप्रयाग समझ पडा था। उन्होंने कही भा अलङ्कार का प्रयाग अलङ्कार क निय नहीं किया है।

बहुत परिष्कृत शब्द बाना होने क कारण उन्होंने कुछ ही अलङ्कारों का प्रश्रय दिया जा परवर्ती युग में उनकी शैली मान लिए गए। उपमा का सम्बन्ध उस महाकवि से हान क कारण ही वह धर्य हा गया और सादृश्यमूलक सभी अलङ्कारों का उसने अपन नाने महाकवि में सम्मक करारर मुर्तिभूत कर दिया। अथान्वर-यास उनका मौलिक उक्तियों का साधन बना। अतिशयोक्ति एव उत्प्रेषणों बन्दनवार का तरह भावा का स्वागत करने क निय यत्र तत्र मुसज्जित लिखाई पढता हैं। व्यतिरेक, सन्देह दृष्टान्त एव परिणामानि तो महाकवि की ललितों के स्पष्ट ही यथाय हा गए। सबन माना अपन चित्रकाय का लक्षण छोडकर ध्वनिकाव्य क प्रधान तत्व का स्वरूप धारण कर लिया हो। कालिदास क काव्य में अलङ्कार केवल व्यञ्जक हैं। वहाँ यदि शब्द अथ, संधि समास प्रकृति प्रत्यय आदि सभी व्यञ्जकता का बाना पहने हुए हैं, तो अलङ्कार न भा महाराज काय रस क व्यञ्जक हान का चरसाध धारण कर रता है। अस्तु अब हम कालिदास क काव्य में प्रयुक्त अलङ्कारों का विनयता का विवेचन करगे जा सभी व्यञ्जक अलङ्कार कहे गए हैं—

उपमा'—

महाकवि कालिदास को उपमा क प्रति विशेष प रतात रहा है। अलङ्कारों का शरभूत उपमा के प्रयाग से उन्हें अन्तराष्ट्रीय करारि प्राप्त है। उनका उपमाका का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। प्रकृति क प्राङ्गण में उन्हें अनेक उपमान दिखाई दिये,

अतएव उहोंने जगत के सभी कोनो से अपन उपमानों को ग्रहण किया—जड, चेतन, वृक्ष, पुष्प, स्यावर-जङ्गल पृथ्वी-आकाश इत्यादि । यही नहीं उनके वाक्य मे शास्त्रीय उपमाओ की भी कमी नही, इतिहास एवम् पुराण सम्मत उपमाएँ भी मिलती हैं । कुछ व्यावहारिक एवम् दशन, व्याकरण से सम्बन्धित उपमाओ का भा प्रयोग हुआ है । बस्तुतः कवि ने अपनी शक्ति व्युत्पत्ति के बल से, विविध उपमाओ के स्वरूप मे, वैविध्य उत्पन्न कर, उसे एक गौरवपूर्ण अलङ्कार बना दिया ।

या तो, महाकवि की सारी वृत्तियाँ सहज रूप म अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं, और उपमा की शोभा से प्रायः प्रत्येक श्लोक भास्वर है, सभी स्थला म उपमा की योजना सार्थक है, अनुपम है, नूतन है एवम् भावाभिव्यक्ति म अत्यन्त मशक्त है, उदाहरण रूप म प्रस्तुत करने पर निबन्ध का भार अति पृथुल हो जायेगा, किन्तु उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ उपमाओं का ही बानगी के रूप म उल्लेख किया जायेगा ।

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग मे मालोपमा का सुन्दर उदाहरण हिमालय राज के प्रसङ्ग मे मिलता है—‘जिस प्रकार अत्यन्त प्रकाशमान ली को प्राप्तकर दीपक, मन्दाकिनी को प्राप्तकर स्वर्ग का माग एवम् व्याकरण से शुद्ध वाणी को प्राप्त कर विद्वानगण सुन्दर लगने लगने हैं, उसी प्रकार पार्वती का पाकर हिमवान भी पवित्र एवम् अलङ्कृत हो गये ।

यहाँ कवि पार्वती की प्रकाशमान ली से उपमा देकर, यह बताना चाहता है कि वह हिमराज के बश को (अपने उत्कृष्ट वृत्तियों द्वारा) प्रकाशित करने वाली हैं । पुन स्वर्ग के माग एवम् शुद्ध वाणी से उपमा देकर, वह उनकी पवित्रता एवम् सस्कारों से ससृष्ट होने की व्यञ्जना कर रहा है । कवि पार्वती का वणन करता हुआ कहता है—‘पार्वती ने जब अध्ययन प्रारम्भ किया, तो उहे प्राक्कन जन्म की सारी विद्याएँ स्वयं स्मरण हो गई, जैसे शरद् ऋतु म गङ्गा जी म हसा की पत्तियाँ, एवम् रात्रि म महीपधियों म आभा, स्वयं जा जाती है ।<sup>१</sup>

यहाँ पावती का उपमा गङ्गा एवं औषधि से दी गई है, जिससे पावती की पवित्रता एवं स्वस्थता की यजना होती है । साथ ही विद्याओं को हसा के समान बताया गया है जिससे उनकी निर्मलता की व्यञ्जना होती है । जिस प्रकार गङ्गा मे हसा का पत्तियाँ भ्रम से आती जाती हैं, उसी प्रकार कवि यह कहना चाहता है

१ कु०स० १।२८

२ कु०स० १।३०



कि पावता न सारा विद्याएँ क्रम से प्राप्त कीं। हर समय गङ्गा में उषा का प्रतिभा एव शीतघण्टी में आभा नहीं आती, अफितु शरद ऋतु एव रात्रि में हा आता है, ठाक उसी प्रकार पावती न भी समय पर ही विद्या अर्जित की— इस प्रकार सर्वान्न रचित स यह उपमा बड़ी सप्रयोजन एव उपयुक्त है।

नवयौवन क समय पावता क चतुरदश (चौरस) वषु का विकसित मनाहर रूप का कवि न उपमानद्वार स सजाया है और एक स न बनी ता, दा उपमाएँ लगा दीं बयाकि दा दाता का अभिव्यक्ति करनी थी। कवि कहता है—जिस प्रकार नूतिका स भरा हुआ चित्र एवम् मूय का किरणा का सम्पन्न पाकर, पुष्प-शुद्धित हा जाता है उसा प्रकार पावता का शरीर भी नवयौवन पाकर खिल उठा।

यहाँ कवि न पावती के शरीर की नूतिका स उमालित चित्र स उपमा दकर अङ्गा का चराचौधा एवम् आकर्षण का एवम् विकसित अरवि स दकर शरार के मानव क साथ सहजता का कथन किया है। और इतसे पार्वती क पश्चिमात्व का व्यक्तना हा रहा है।

चतुथ सग म प्राण दन का तद्वर रति का इस प्रकार बणन हुआ है—

जैस प्रथम वषा सूखते हुए तानाव की व्याकुल शपरिया को जावन प्रदान करता ह वैस ही (अचानक उद्भूत) आकाशवाणी न शरार त्याग का तद्वर रति पर यह वृषा वाणा का वर्षा का।<sup>१</sup>

यहा कवि वर्षा क सयोग से नव जीवन प्राप्त मद्दलियों का रति से उपमा दकर यह व्यञ्जना कर रहा है कि वस्तुत रति कामदेव का मृगु से अत्यन्त व्यग्र थी किन्तु प्रथम वृष्टि के समान आकाशवाणी को सुनकर उसम नव आशा (कामदेव स पुनर्मिलन) का संचार हुआ।

रघुाश म उपमानों के अनेक सुन्दर स्थल प्राप्त हात हैं। सर्वाप्रथम मङ्गला-चरण म हा जहा पार्वती परमेश्वर का वागध से उपमा दी गया है उसका सौन्दर्य इस प्रकार है— एक शश के वणन के पूर्ण माता पिता की बदना करना आवश्यक होता है। अत कवि ने वागध की प्राप्ति क लिए पार्वती-परमेश्वर क उपमान के रूप म वागध को रखा। जैस माता पिता से नश चन्ता है वैस हा कालिदास के वागध से का मात्मा रस प्रसूत होता रहेगा और वही रघुाश का परम्परागत अशकती नायक हुआ करेगा।<sup>२</sup>

राजा दिलीप का वणन करता हुआ कवि कहता है—'अपनी दृढता में (संसार के) सब दृढ पदार्थों को दबा देने वाले, अपने तेज से सबको 'यगभूत कर देने वाले, अपनी ऊँचाई से सबको अवर कर देने एवम् अपने प्रभार से पृथ्वी को आच्छादित कर लेने वाले सुमेरु के समान, राजा दिलीप शक्ति, तेज, गौरव एवम् बल सबसे बढ़े-चढ़े थे ।'<sup>१</sup>

इस उपमा पर विचार करने पर स्थिति साम्य एवम् वणसाम्य का पता चलता है। पहले पार्थिव, फिर पार्थिव धर्मपत्नी एवम् अन्त में तदनन्तरे धेनु' कहा गया है। कवि ने इसी क्रम से उनकी सङ्गति भी की है क्योंकि पहले दिन अर्थात् पार्थिव (पु० लि०) तपश्चात् क्षपा तथा सञ्चया (पार्थिव धर्मपत्नी एवम् नदिनी) खड़े हैं। इसके अतिरिक्त इस उपमा के द्वारा वणसाम्य की भी सुन्दर व्यञ्जना हुई है। सूर्यास्त के समय, सूर्य की किरणों के कारण, सञ्चया रक्तमिश्रित पीतवर्ण हो जाती है। अतः कवि ने नदिनी को सञ्चया के समान बताकर उसके रक्त मिश्रित पीतवर्ण को ओर संकेत किया है।

नदिनी एवम् सिंह का वणन करता हुआ कवि कहता है—'धनुर्धारी राजा दिलीप ने मेरु के रग के पर्वत की ढाल पर खिलने वाले लोघ्र पुष्पों की भाँति गो के ऊपर आसीन सिंह को देखा ।'<sup>२</sup>

यहाँ गो की पर्वत से उपमा द्वारा रक्त वर्ण एवम् लोघ्र पुष्प से सिंह की उपमा द्वारा पीतवर्ण की व्यञ्जना हो रही है।

जैसे सञ्चयाकालान सूर्य से तेज ग्रहण कर अग्नि और भी दीप्त हो उठती है, वैसे ही अपने पिता से राज्य ग्रहण कर रघु और भी तेजस्वी हो गये ।'<sup>३</sup>

यहाँ रघु की अग्नि से उपमा द्वारा उनकी अतिशय तेजस्विता की व्यञ्जना हो रही है।

पष्ठ सग में 'यज्ञक उपमाओं के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। स्वयंवर के समय इन्दुमती का एक के पश्चात् दूसरे राजा के समीप जाने का वणन करता हुआ कवि कहता है—जैसे वायु से उठी हुई तरङ्गलखा के द्वारा मानसरोवर की राज-दृष्टिनी एक पद्म से दूसरे पद्म के पास पहुँच जाती है उसी प्रकार मुनन्दा भी राज-कुमारी को दूसरे राजा के पास पहुँचा कर खड़ी हो गयी ।'<sup>४</sup>

१ रघुवंश १।१४

३ बही, ४।१

२ बही, ८।४०

४ बही, ५।१६

यहाँ इन्दुमती की राजहंसिनी में उषा द्वारा उनक गौराङ्ग एवं आरपक शरणा का व्यञ्जना का गर्द है ।

सप्तम सग म अत्र इन्दुमती विशाहोतगत अथ राजाश्रा का प्रतिशिराश्रा का वणन करती हुआ कवि कहता है—त्रैमे ताव क मित जत क अन्तर गूढनर रहो है वैम हा ऊर म प्रसन्न सिगई पडन कान दूधर राजाण मा हा मन ईर्ष्या स मर प ।

यहाँ राजाश्रा का गूढनर से उषा देख उरि कटो म्भार का व्यञ्जना का गर्द है ।

शामन गात्र राम का लिए हुए कौतया का चित्रारित करना हुआ कवि कहता है—प्रथम क कारण ह्या राम का जड्ढु म लिए हा कौतया मया प्रथम हाती था तेन शरदच्छु का तबङ्गा मगा क उपर जिवित मानकमन रमा हा ।<sup>१</sup>

यहाँ कौतया का तबङ्गा मगा तथा राम का मानकमन में उषा द्वारा उनक वपनाम्ब का स्पर्शना का गया है साथ ही उनक आरपक वपु का भी व्यञ्जना हुआ है ।

फकाण सग म राम द्वारा धनुष मङ्क कर सिग जान पर परगुगम का वणन करती हुआ कवि कहता है—राम द्वारा धनुष प्रयथा युक्त कर लिए जान पर परशुराम उस अग्नि क समान तत्रहान हा गए बिमम धूम्र मात्र गेय रट गया है ।<sup>२</sup>

यहाँ परशुराम की धूम्र से उषा दकर—उनक निम्नत्र दान का व्यञ्जना का गर्द है ।

त्रयादश सग म गगा के वणन म कवि न अद्भुत का र बोधन का परिचय दिया है । गगा ०व यमुना के सगम का उषा क द्वारा कवि क प्रवृत्ति क प्रति प्रेम की सुन्दर व्यञ्जना हुई है । कवि ने प्रमग मात्रा इन्द्रनाल श्वतकमन नीयकमल एव कल्म्व इत्यादि को उपमान बनाया है ।<sup>३</sup>

वालिनाम ने कुछ शास्त्रीय उपमाओं की भा योजना का है और उनक माध्यम से दशन क तथ्या को समझाने का प्रयत्न किया—ब्रह्म सरोवर स निकलन वाली सरयू साख्यशास्त्र के अम्बक्त-प्रवृत्ति से उत्पन्न हाा वान मुदितरव का तरह है ।<sup>४</sup>

१ रघुशंख ७।३०

२ रघुशंख १०।६६

३ बहो, ११।८१

४ बहो, १३।५४ ५०

५ बहो, १३।६०

यत्र-तत्र आध्यात्मिक उपायों भी प्राप्त होती हैं। 'वन म महाराज दिलाप ने नदिना के प्रति पद का उसी प्रकार अनुसरण किया जिम प्रकार स्मृति श्रुति के प्रत्येक अध का अनुसरण करती है।'<sup>१</sup>

व्यवहारिक उपमाओं की व्यक्तता भी दशनीय है—हाथ बंध जाने के कारण राजा दिलीप पास ही स्थित अपराधों पर प्रहार न कर मकान के कारण क्रोध से दग्ध हो उठे और अपने तेज म भातर ही भातर उसी प्रकार जलने लगे जैसे मात्र और जीपधि से बंधा हुआ सप।

व्याकरण के लिये सिद्धा त भी उपमा व उपमान बनकर सरस बन गये और कवि न उसके मा-यम से व्याकरण क जटिल नियमों को सुगमता से समझान का प्रयत्न किया है। राम का वणन करता हुआ कवि कहता है कि—'पराक्रमी राम ने वाणि को मार कर सुग्रीव को सिंहासन पर बैस हा जिठा दिया नैम काई लिट् लुट् आदि लकारा म अस् धातु क बदले भू-धातु का बैठा दता है।

राम-भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्न का वणन करता हुआ कवि कहता है—चारो राजकुमारों को पाकर राजकन्याय जीर राजकन्याना को पाकर राजकुमार अति प्रसन्न हा गये। वह वर श्रुता ता मिला एसा हुआ जैसे शब्द के मूल रूप म प्रत्यय जुड गये हा।<sup>४</sup>

रघु श के वीर बालका का वणन करता हुआ कवि कहता है—जैसे व्याकरण म कोई अपवाद नियम सामान्य नियम बान सून को दवा देता है वैसे ही रघु के वश का काई भा बच्चा शत्रु को पराजित कर सकता था।<sup>५</sup>

मधुदूत म व्यक्त उपमाओं के सुन्दर स्थल प्राप्त हाा हैं। पूवामघ म कवि उपमा क मा-यम से किंचित् शृङ्गारिक अनुभावा का कथन करता हुआ कहता है—उस नगरी (अर्वातदेश) म मत्त सारसा की मोठी मोली को दूर-दूर तक फैलाता हुआ, प्रात काल खिले हुय कमला की मुगधि से सुवासित और शरीर को मुखप्रद लगने वाला शिप्रा का वायु सम्भाग जनितश्रम का उसी प्रकार दूर कर रहा होगा, जिस प्रकार चतुर प्रेमा मोठी मोठी वाता द्वारा फुलेल मुँधाकर और पट्टा झलकर सम्भोग म धनी हुई अपनी प्यारी के श्रम को दूर कर दता है।<sup>६</sup>

१ रघुवंश २।३

३ वही, १०।५८

४ वही १५।७

२ रघुवंश २।३२

५ वही, १०।५६

६ पू० मे० ६३

एक स्थान पर पुन कुछ मधुर भावा की व्यजना करता हुआ कवि कहता है— बैलास पशत का गोद म अनकापुरा वैस हा बसी हृद है जैग प्रिय क अछू में कोई कामिना हो और वहाँ स निकला हुई गङ्गा की धारा लगी लगता है, जैस कामिना क शरार स सरका हुई गाटिका । उतुङ्ग भवना बानो अनका पर बपा क दिना म बरखन हुए बात्न एम आच्छात्ति रहन है जैस कामिनिया क मिर पर मणिमोती गूध हुए बरस समूह ।<sup>१</sup>

यहाँ पूबाध म बैलास का साम्य एक प्रणया स किया गया है, अप च यद्यपि अलका का प्रणयिना स साम्य नहा दिखनाया गया है तथापि वह प्रणयिना का गम्यता को प्राप्त हा जाता है । अतएव एकदगविवनिउपमा द्वारा अनकापुरा का वस्तुस्थिति की व्यजना हा रही है ।

ऋतुमहार म भी एक-दा स्थल पर उपमाआ का मुँर याजना दाग पडता है । हेमन्त ऋतु का वणन करता हुआ कवि कहता है— हिम म युक्त शीतल वायु स कम्पित तथा पका हुई यह प्रियगु लता वैसा हा पीला पड गया है जेम पति स विद्युत् होन पर मुवता पातुतिवपा हा जाता है ।<sup>२</sup>

वया ऋतु म बगगामा नदिया का साम्य कुलटा स्रा स स्थापित करता हुआ कवि कहता है— जैस कुलटा स्त्रियाँ प्रिना विचार क्रिय अपन को अपवित्र कर बैठना हैं, वैसे ही व नदियाँ भी अपन मटमेन पानी की बात् म जहाँ-तहाँ किनार क वृथा का ढहाती हुई धग स समुद्र की जार चली जा रही हैं ।<sup>३</sup>

शरदऋतु म धार-धार बहता हुई नर्ियाँ—करधना और माला पहन हुए मन्द गति से चलता हुई कामिनिया क समान लगता हैं । यहाँ गति साम्य की व्यजना हुई है ।<sup>४</sup>

उत्प्रेक्षा—

कवि का आसक्ति के पाप स बचान म केवल उत्प्रेक्षा हा प्रायश्चित्त क रूप मे प्रस्तुत होती है । यदि उत्प्रेक्षा न हाता तो, कविगण असत्य भाषण क घोर नक-गामी होत । यदि कविया का सहज काव्यसाधना है, तो उत्प्रेक्षा उनका सहज पुण्य साधना है, जिससे वे कल्पना के किसा मनोरम स्वप्निल पट्टा पर आरूढ हा किसा

१ पू० मे० ६३

२ रघु० सं० ४।११

३ रघु० सं० २।७

४ ऋ० सं० ३।३

५ का० प्र० १०।६२ श्लोक का पूर्वाध

भी वस्तु का रेखा भा वणन करके भी मिथ्याप्रमाण के भागा नहीं बनने । उत्प्रे ११ की मोहर लगने पर, उनका प्रनाशोक्तियाँ भा अलट्ट हो जाना हैं । यह कवि देश की बहुमूल्य निधि है । वस्तुतः इसका प्रयोग करते ही कवि, अपने काभ्यलोक का प्रवापति बनता है और वह अभिनव सृष्टि, इसा क सहान् करने म ममप हाथा है । कालिदास न उत्प्रे ११ का यथासमय प्रयोग किया और उसकी व्यञ्जना का सम्मान दिया ।

कुमारसम्भव म हिमालय के प्राकृतिर सौन्दर्य का वर्णन उत्प्रे ११ के महारे करता हुआ कवि कहता है—हिमालय क कुछ शिखरो पर स्थित गेरू आदि धातुना क रङ्ग विरगे शिलाखण्ड क पास पहुँचे हुए मेघ खण्ड उनक रङ्ग की छाया पडन से, सभ्या के बादना जैसे दिवाई पडन लगन हैं । उहे देखकर सभ्या हान से पहल वहाँ का अप्सराओ को यह भ्रम हो जाता है कि मध्या हो गयी ओर वे शाश्रता से सायङ्काल क नृत्य-गान क लिय अपना शृङ्गार करना प्रारम्भ कर दती हैं ।<sup>१</sup>

यहाँ उत्प्रे ११ के माध्यम से अप्सराओ के सम्भ्रम की व्यञ्जना हा रही है ।

पावता की मनोहर गति का वणन करता हुआ कवि कहता है—जब पावता हवा भाव से चलता थी तो ऐसा जान पडता था मानो उनक त्रिभुजा स निस्तस्ति मधुर ध्वनि का सौखन के अभिलाषा राजहसो न अपनो हवा-भरा बाल पहले ही उ ह बदल में सिन्हा दी हो ।<sup>२</sup>

उत्प्रे ११ का सायकता का एक अन्य उदाहरण देखिये—विवाह क लिए प्रस्थान करने हुए शिव जा पर मूय न विश्वकमा क हाथ का बतयाया दुना छत्र लगा दिया । उम समय शिव जा के सिर क पास गडकता वज्र ऐसा लग रहा था माना गगा ओ का धारा गिर रहा हो । गगा जमुना भा चँवर डुलान लगी, व चवर ऐसे थ माना दोना ओर हस उड रहे हा ।<sup>३</sup>

यहाँ शिव जा के पार्श्व मे लटकते हुए वज्र की गगा की धारा मे तथा चँवर की हस से उपमा देने से वणासाम्य (श्वेत) का पता चलता है । दूसरा ओर उत्प्रे ११ के माध्यम से कवि शिव के माहात्म्य एव गौरव का कथन कर रहा है । गगा जमुना जैसी देवियाँ भी जिसकी सेवा कर रही हैं—वह स्वयं कितना महान एव गौरवशाली होगा— यहाँ यह व्यंग्य हो रहा है ।

१ कुमारसम्भव ११४

२ कुमारसम्भव ७१४१

३ वही, ७१४२

रघुवश म भा व्यजक उत्प्रेक्षा की मुदर छटा दीख पडती है। द्वितीय सग क अन्त म कवि कहता है कि राजा दिलीप मुनि वसिष्ठ को आज्ञा लेकर, बछड़े क पान क पश्चात् तथा हवन करन म अवशिष्ट (नदिना के) दुग्ध को सतृष्ण हो इस प्रकार पान लग माना व अपना मूर्तिमान यश पी रहे हा।”

यद्यपि नन्दिना न राजा का वन म ही दुग्ध पान की आज्ञा दी थी। किन्तु मन्तराज न जीर्ण का विचार कर, बछड़ क पीन क पश्चात् तथा हवन होन के पश्चात् गुर का गाना म हा उन ग्रहण किया इसलिए आज उह, 'स्नन्व' प्राप्त हो रहा था। वह स्तन्य क्या था मूर्तिमान यश ही था जिसे राजा न सिंह के सम्मुख जा मसमपण द्वारा प्राप्त किया था। पहल कामधेनु का अपमान करके राजा न अपना यश प्राप्त किया था किन्तु आज उगत कठिन परिश्रम द्वारा श्वेत दुग्ध क रूप मे शुभ्र यश प्राप्त किया था। नदिना का वरदान (पुत्र प्राप्ति ही उनक यशवृत्ति को आलोकित करन वाला था। अतएव राजा न उसर दुग्ध का अपना यश ही समय लिया। इस प्रकार राजा क हृष भाव का प्रकटन हो रहा है। सायमान प्रतीक्षा करती हुई, मुन्दिना क स्नन् भाव का कथन 'उत्प्रेक्षा क माध्यम म कितनी कुशलता स व्यक्त हुआ है— जब यथा क समय राजा नन्दिना क पाछे-पाछे जायन म लौट कर मुन्दिना उह अपना क तथा स दगता पी रहे गइ माना उपवासा आवे राजा नन्दिना का रूप पान करन का प्यासा हा।

यहा राजा का तृष्णाविशय व्यक्त हो रहा है, इसम उनका श्रम की व्यग्रता का भान होता है, कि व दिन भर राजा एव नन्दिना क त्रिये चिन्तित थी। इन समय उनके मती व का व्यजना हो रहा है।

रघु का मेनाश्र का विशालता का वर्णन देखिए—अपनी विशाल सेना लेकर रघु हिमालय पर इस प्रकार चढ गय माना अरुन घोरा क टापा स उठा हुई अपार धूनराशि से हिमालय की चाटिया का जार भा ऊंचा करना चाहत हा।

महारथ्र अज का स्तुति क माध्यम स प्रात कालान सौ दय का वर्णन उत्प्रेक्षाओं क माध्यम से बढ हा उत्कृष्ट ढङ्ग मे वर्णित हुआ है—प्रात काल का पवन वृक्षा का शाखाश्र पर चलन वाले फूलों को गिरावा हुआ सूय की किरणों स खिल कमला का स्पश करता हुआ बह रहा है, माना तुम्हें पगा हुआ न

देखकर, वह तुम्हारे मुख की स्वाभाविक मुग्धि दूसरों से लेने का प्रयास कर रहा हो ।<sup>१</sup>

यहाँ उत्प्रेक्षा के द्वारा अज के गौरव एवं महात्म्य की व्यञ्जना हा रही है ।

राजा रघु का वणन करता हुआ कवि कहता है—जब राजा रघु राजगद्दी पर आसान हुए तो उस समय उनके चारा और प्रकाश का एक मण्डल बन गया, उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था माना लक्ष्मी स्वयं शुक्ल कमल का छत्र लेकर उनके पीछे खड़ी हा गई हा ।<sup>२</sup>

यहाँ रघु की तेजस्विता एवं महनायता की व्यञ्जना हा रहा है ।

मघदूत म भा उत्प्रेक्षा का यत्र तत्र योजना हुई है । जाग्रदृष्ट पवत का वणन करता हुआ कवि वणसाम्य का "अग्र्यता का वणन इस प्रकार करता है—पके दृष्टे आमा स पीला दिखन वाला जाग्रदृष्ट पवत और उसके ऊपर स्थित श्यामवण के वादन ऐसे लगते हैं मानो वह पृथ्वी का उठा हुआ स्तन हो जिसके बीच में काना और चारा ओर पाला हो ।<sup>३</sup>

यहा प्राकृतिक सौन्दर्य का ही व्यञ्जना है ।

वैनास पवत का शुभ्र, धवन हिमाच्छादित चाटियाँ एनी लगती हैं मानो अगवान शङ्कर व प्रतिष्ठित के अट्टहास का इकट्टी हुई रागिणी हैं ।<sup>४</sup>

वैनास पवत की चाटियाँ हिमाच्छादित हान के वारण श्वनवण की हैं तथा हास का रङ्ग ना श्वन माना गया है इस प्रकार उनके वणन म उत्प्रेक्षा की योजना कर कवि वणसाम्य की स्थापना करता है ।

ऋतुसंहार म वर्षा ऋतु का वणन करता हुआ कवि कहता है—पानी के वोज से नमित मेघ गर्मी का आग की लपटा से युक्त हुए विष्माचन की उष्णता को अपनी शातन जल का फुहारा स माना यह समझकर बुझा रहा है कि जत्र हम पानी के बाग से लद कर आते हैं, तो यहा हमारा सहारा बनता है ।<sup>५</sup>

कवि द्वारा प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षादि अलङ्कार, विविध वणन क प्रसङ्ग म आए हैं । यह अलङ्कार रस भावादि के वा व्यञ्जक हैं ही, साथ ही प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य की भा व्यञ्जना करते हैं । महाकवि का, प्रारम्भ स हा प्रकृति क प्रति विशेष

१ रघुवश ५।६६

२ रघुवश ४।५

३ सू० मे० १८

४ सू० मे० ५८

५ सू० ऋ०सं० २।२७



अनुराग रहा है अतएव जहाँ कहा भा उह प्रवृत्ति क रम्य म्यन दिखाई दिय बहा  
व उसका वणन अलङ्कार के मायम सं कर्न म न सूत्र ।

वया ऋतु का वणन करता हुआ कवि कहता है—वयाऋतु म शन भन-  
पवन क सहार चनन वान एव इत्र धनुष म मुक्त मष न माना परदश म गय दृए  
उन लाग का स्त्रिया का मुष-सुन हर ला है जो जन प्रियतम क वियाग म व्याकुल  
हुइ बैठ हैं ।

यहा उत्पत्ता क द्वारा व्ययता एव श्रेय का व्यजना हा रहा है ।

( १ ) रूपक<sup>२</sup>

जहा उपमान और उपमन क (जिनका नद प्रसिद्ध है उनका साहस्यता-  
निरायवश) अन्त वणन किया जाता है वहाँ रूपक अलङ्कार हाता है ।

कालिदास क रूपक जनङ्कार ना उपमा क समान सशक्त भाव क व्यजक हैं ।  
कुमारसम्भव म वसन्त ऋतु क प्रसङ्ग म कवि कहता है—वृष भा अपना झुकी हुई  
उत्तिया का पना पे गकर उन लताआ का आलिङ्गन करन लग जिनक बड बडे पुष्प  
क गुच्छे ह' स्तन हैं एव कम्पित वण हा आच्छ है ।<sup>३</sup>

यहा रूपक जनङ्कार द्वारा दृङ्गारिक् भाषा का व्यजना हा रहा है ।

रघुवश क त्रयादश मग म चित्रकूट का वणन करत दृय राम साता से कहत  
हैं—ह मुन्दरि ! मन्त्र वृषभ क समान यह चित्रकूट मुक्त बडा मुहावना लग रहा  
है । इसका मुखा हा इसका मुख है दसम नि सृष्ट जन का लहरिया का श-  
इसका डकार है दसक शिवर हा इसक शृङ्ग है जोर उस पर आच्छादित मष हा  
शृङ्ग पर लगा हुआ पङ्क है ।<sup>४</sup>

यहा चित्रकूट का गरिमा एव दुषयता का व्यजना हुई है । कुश का सना का  
वणन करता हुआ कवि कहता है—याना क समय प्रयाण करता हुइ कुश का सना  
एक राजधाना क समान प्रतान होता है । उसम घबजाआ क अग्रभाग हा लताआ  
से मुक्त उपवन हैं विशानकाम हस्तिगण ही वृत्रिम पात हैं तथा रय हा उच्च  
अट्टालिकाएँ हैं ।<sup>५</sup>

यहाँ रूपक जनङ्कार द्वारा कुश का सना का विशानता का व्यजना की  
गई है ।

१ ऋ० सं० २।२२

२ का० प्र० १०।११८

३ कुमारसम्भव ३।३६

४ रघु० १३।८७

५ रघु० १६।२६

## (२) अर्थान्तरयास—

जहाँ सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न (अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य) के द्वारा समर्थन किया जाता है, यहाँ अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार, साधर्म्य तथा वैधर्म्य से दो प्रकार का होता है।<sup>१</sup>

महाकवि क का य का एक पक्ष उपमा है तो दूसरा पक्ष अर्थान्तरन्यास है। इन्ही दोनों पक्षा पर उनका काय-विहङ्ग उठा करता है। मौलिक विचारों को व्यक्त करने के लिए कवि अर्थान्तरयास का आश्रय लेता है। उसकी प्रतिभा इस अलङ्कार योजना करने में और भा निखर उठी है। इसका प्रयोग में कुशल होने के कारण ही भारवि को अर्थ गौरव का धनी कहा जाता है। महाकवि कालिदास ने भी पात्रों के गुण एवं स्वभाव की व्यञ्जना करने के लिये इसका योजक रूप में नियोजन किया।

कुमारसम्भन में अर्थान्तरन्यास की व्यञ्जकता दशनीय है। कवि वसन्त वेचन के अवसर पर कहता है— वहाँ मिल हुए कर्णिकार देखने में तो मुन्दर लगत ये त्रिभु सुग धहान हान के कारण मन का प्रिय न लगत थे। ब्रह्मा का कुछ ऐसा अभ्यास पड गया है कि व किसी भी पदाथ में समस्त गुणरहित नहीं करते।<sup>२</sup>

यहाँ अर्थान्तरयास द्वारा ससार का प्रत्यक्ष वस्तु में कोई न कोई नमी अवश्य रहती है— इस तथ्य की व्यञ्जना की गई है।

शिव के योगीस्वरूप का कथन करता हुआ कवि कहता है—अप्सराओं के नृत्य गातादि भी शङ्कर की समाधि को विचलित न कर सके क्योंकि त्रिहानि अपनी इन्द्रिया को निग्रहीत कर लिया है उनकी समाधि क्या कोई भङ्ग कर सकता है।<sup>३</sup>

यहाँ अर्थान्तरयास से— शङ्कर महान् योगिराज थे, माधारण मानव नहीं, इस बात की व्यञ्जना हो रही है।

### अतिशयोक्ति—

महाराजा रघु द्वारा प्रजानुरजन का वचन करता हुआ कवि कहता है—इन्द्र ने जब अपना वपाश्रुतु वाला इन्द्रधनुष हटाया तब रघु ने अपना विजयी धनुष हाथ में उठा लिया क्योंकि ये दोनों ही बारी बारी से प्रजा की भलाई किया करते हैं।<sup>४</sup>

इन्द्र तथा रघु में अभेद कथन द्वारा रघु की प्रशंसा कवि कर रहा है। मेघदूत में भी यक्ष अपनी प्रिया के एकाकीपन की कल्पना करता हुआ कहता है, मुझसे बिलुडी

१ का० प्र० १०१०६ स्तो०

२ कुमारसम्भव ३१२८

३ कुमारसम्भव ३१४०

४ का० प्र० १०१०८४

५ रघुसंज्ञा ४।१७

हुई उस मर्याद दूसरा प्राण समझना । वह भित्तभाषिणी है और इस समय अकेली रहती हुई उसी प्रकार दुखी हागा, जिस प्रकार चक्रवाक से विद्युत् हा अकेली बचा चक्रवाक ।<sup>१</sup>

यहाँ 'जाया तथा जावन' में अभद्र व्यापार व आरोप द्वारा यमिणी के शासनाव की व्यजना हुइ है ।

विभावना—

रघुपति व एक दास्यता पर कवि न पात्रा क प्रभाव एव तजस्विता का व्यजना करन क लिए विभावना का यात्रा का है । राजा दिलाप जब वन म नगिनी क पाँधे-पाँधे चल रह थ ता उनक शारारिक प्रभाव क बशाभूत हा वपा क बिना हा आग शांत हा गयो, वृत्त भा फल तथा पुण्य स जापूण हा गय तथा बढ जावा न छोटा को प्रसित करना छाड दिया ।<sup>२</sup>

यहाँ कवि इस बात का व्यजना कर रहा है कि वस्तुतः राजा इतन प्रभाव-शाली थ कि उनक दशनमात्र म वन क सार विकार दूर हो गय ।

काव्यलिङ्ग —

कालिदास क काव्य म काव्यलिङ्ग अत्रङ्कार भा यत्र तत्र दृष्टिगावर हा जाता है । राजा दिलाप अपन शासन का प्रबन्ध इतने मुवाच रूप स करत थ कि उनक राय म प्रजा को कित्ता धान का कष्ट नही था वह सब प्रकार स मुखा जोर सन्तुष्ट था । उनक कुशल राय सचानन का वणन करता हुआ कवि कहता है—  
दिलाप का छाडकर अम काई भा राजा अपना प्रजा का रक्षा करन म यथ अजित न कर सका क्याकि चारा का शब्द कवल कहन मुनन को रह गया है ।<sup>३</sup>

' राजा दिलाप क राय म कभा भा चोरा नही होता था' —इस बात की व्यजना हो रही है ।

पावती व अलौकिक रूप सी दय का कथन करता हुआ कवि कहता है—  
भीरों से घिरा हुआ कमल, एव बादला क टुकडा स लिपटा हुआ चन्द्रमा काई भी ऐसा न दिखाइ दिना जो उनका गुया हुई चाटा धान मुल का सुन्दरता क जाग ठहर सक ।

१ उ० मे०

२ का० प्र० १०१५६

३ का० प्र० १०१७४

४ रघुवरा

५ ७१६

यहाँ पावती का रूपावपण सवातिशायी था"—इस वान की व्यञ्जना हो रहा है ।

उनके केश की स्वाभाविक शोभा का वणन करता हुआ कवि कहता है—  
उनके केश इतने सुन्दर थे कि यदि पशु-पशिया में भी मनुष्य के समान लज्जा होती तो, अपनी बातों पर इतराने वाली मोरी एवं हिरणियाँ भी उनके केश देखकर अपने चेंबरा पर इठलाना भूल जाती ।<sup>१</sup>

निदशना<sup>२</sup>—

पावती के नख-शिख वणन में निदशना अलङ्कार का संयोजन हुआ है । कवि पावती के ललितविन्यास की शोभा का वणन करता हुआ कहता है—जब वे चलती थीं तब उनके स्वाभाविक लाल और कोमल पैरा के उठे हुये अँगूठे के नखा से निकलने वाला चमक का देखकर ऐसा जान पड़ता था माना वे ललाई उगल रहे हों । वे अपन चरणा का जब उठाकर पृथ्वी पर रखती थीं तब ऐसा जान पड़ता था कि वे पग पग पर कमल उगाता हुई चल रही हैं ।<sup>३</sup>

यहाँ पावती के चरण प्रत्येक अत्यंत सुन्दर था—इस बात की व्यञ्जना हो रही है ।

द्वितीय सग में वरुण देव के दैय भाव का कथन करता हुआ ब्रह्मा के माध्यम से कहता है—शत्रुता का सहार करने वाला वरुणदेव के हाथ का पाश बंधे हुए सप के समान इतना दान क्यों दिखाई दे रहा है ।<sup>४</sup>

मेघदूत में चर्मण्वती के ऊपर स्थित मेघ का शोभा का वणन करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है—जब तुम विष्णु भगवान का श्यामल वण घुराकर चर्मण्वती का जल-गान करने के लिये झुकोगे, तो उस समय आकाश में विचरण वाल सिद्धगन्धर्वादि को दूर से क्षीण दिखाई दान वाली, किन्तु नदा का चौड़ा धारा के मध्य में तुम ऐसे दिखाई दोगे जैसे पृथ्वी के गले में पड़ी हुई एक लड़ा हार के बीच में एक छोटी सी इन्द्र नीलमणि पाहू दी गई हो ।<sup>५</sup>

यहाँ वणसाम्य की व्यञ्जकता के साथ प्रकृति का सी-दय ललित हो रहा है ।

एक स्थल पर ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन करता हुआ कवि कहता है—  
कोरव और पाण्डवों दोनों पर एक सा प्रेम करने वाले, वनराम जा महाभारत युद्ध में

१ कु०स० १।४८

३ यही, १।३३

५ उ० मे० १५०

२ का० प्र० १०।१६४

४ कु०स० २।२१

किसा की आर स नहीं लह । व अपना प्रिय रवता के नेत्र में पही हुई मदिरा का पाग कर तिस सरम्बती नदा का जल पान करत थे वही जल यदि तुम भा पी नागे तो दाहर से काने हान पर भी तुम्हारा मन उतला हा जायगा ।<sup>१</sup>

प्रतिवस्तूपमा<sup>२</sup>—

कुमारसम्भव म प्रतिवस्तूपमा का व्यञ्जना दविए—वसन्त कामदेव का अभिन्न मित्र है । वह प्रयक स्थिति म कामदेव का सहायता करता रहता है इन्द्र को इस विषय म तनिक भी सँह नहीं है । अतएव वह कहता है ह कामदेव । हमन तुम्हारा सहायता के लिए वसन्त का नाम इसलिए नहीं लिया कि वह तो तुम्हारा साथी है हा । बल्कि पवन का यह घाटे ही कहा जाता है कि तुम जाकर अग्नि का सहायता करा । वह तो अग्नि का प्रवर्धनित करेगा हा ।<sup>३</sup>

यत्र प्रतिवस्तूपमा क मान्यम म—ह काम । तुम वसन्त का साथ कर गिव का नमाधि नङ्ग करा । इस बात का व्यञ्जना हा रहा है ।

(च) देगवान की व्यञ्जना—

मानव दश-काल तथा वातावरण क त्राड म जन्म लता है । प्राय यह कहा जाता है कि दश-काल तथा परिस्थिति क अनुसार हा व्यक्ति का चरित्र निर्मित हाता है । अत व चरित्र निमाण का मनुष्य का भावनात्म का दश-काल स घनिष्ठ सम्बन्ध है । काव्य म मानव जावन से सम्बन्धित घटनात्रा एव अनुभूतिया का ही चित्रण हाता है । य घटनायें किसा न किसी दश तथा काल से सम्बद्ध रहती हैं । इसी प्रकार कान्य म आय पात्र भी, किसा न किसी दश तथा काल स सम्बद्ध रहते हैं । अत काव्य में आयो हुई घटनायें पात्र तथा पात्रा का अनुभूतिया दश-काल परिस्थिति स अवश्य प्रभावित हाता हैं । इसलिए प्रबन्ध काव्य में कवि कथानक त्रिकाष्ठ क लिए चरित्र निमाण क लिए तथा अनुभूतिया का अभिव्यञ्जना क लिए, दश काल का मयोजन करता है । ध्वनि व्यवस्था म इस सयोजन का महत्व-पुण स्थान है ।

दश-काल का चित्रण, काव्य म कई प्रकार स किया जाता है । कभा-कभी महाकवि किमा दश विषय या किसा कात्र विधाय का चित्र कवल इसलिए चित्रित करत हैं, तिसस पाठका को पवत नदी, सरावर, नगर मूप-चन्द्र प्रात सध्या,

रात्रि इत्यादि का एक, स्वतंत्र चित्रण का आनंद प्राप्त हो सके। इसमें कभी-कभी कवि की औपचारिकता ही दिखाई पड़ती है। ऐसा चित्र मानव-सापेक्ष नहीं होता — यहाँ कवि का उद्देश्य केवल देश-का चित्रण करना ही होता है। उत्तम श्रेणा के प्रबंध काय्या में ऐसा चित्रण प्रायः नहीं होता।

कभी-कभी कविया का अपने काव्य में किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित घटनाओं का विकास दिखाते हुए तथा उसका चरित्राङ्कन करते हुए, विशेषरस की निष्पत्ति करनी पड़ती है। इस प्रकार कवणन को हम मानव सापेक्ष वणन भी कह सकते हैं। वह वणन कहीं पृष्ठभूमि रूप में, कहीं संवेदन रूप में, तो कहीं उद्दीपन रूप में होता है। उत्तम श्रेणा के कवि-गण अपने काव्य में देश-काल का चित्रण इन्हीं उपयुक्त दृष्टियाँ से करते हैं। महाकवि कालिदास के काव्य में भी देश-काल का वणन रस-निष्पत्ति, इतिवृत्ति की समीचीनता को प्रमाणित करने के लिए ही किया गया है।

प्रकृति के अनन्य पुजारी कालिदास देश-काल के ममज्ञ कवि हैं। उनकी मूर्ध्नि ग्राहिणी प्रतिमाने, देश-काल के विस्तृत क्षेत्र से केवल आवश्यक तत्वा को लेकर, गिने-धुने शब्दा में रखकर विविध चित्रों की योजना की है। उन्होंने नगर, पर्वत इत्यादि का मानव-सापेक्ष तथा स्वतंत्र, दोनों प्रकार से वणन किया है, किन्तु अधिकांशतः उद्दीपन रूप में ही आये हैं। उन्होंने जिस देश एवं काल में अपनी काव्य-घटना की योजना की है, वह उस देश-काल में सवथा स्वाभाविक एवं उपयुक्त लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि अपने सहृदय पाठक को एक विशिष्ट देश और काल में रखकर उससे स्वयं कहलवा लेता है कि ऐसी स्थिति, एवं ऐसे समय में तो यहाँ घटना ठीक था।

तृतीय सग में वसन्त ऋतु तथा उसके उन्मादक प्रभाव का वणन भी कवि ने बड़े सुन्दर ढङ्ग में किया है। ऋतुओं का सम्बन्ध मानव की भावनाओं से होता है। अलग-अलग ऋतुओं मानव के नये-नये भावाँ के उद्दीपन का कारण बनता है। ऋतुओं में वसन्त ऋतु शृङ्गार उद्दीपन में विशेष रूपेण सहायक हाती है। कुमारवम्भव में भी कामदेव लङ्कर के हृदय में रतिभावोद्दीपनाय वसन्त ऋतु की सजना करता है जो उचित भी था। वसन्त ऋतु में अधविक्रमित टेमू के पुष्ट उठते हुए भ्रमर प्रातः वालीन मूय की रत्तिमा में प्रकाशमान कोयलें मधुर आश्रमंजरिया कोयल की प्रिय कूब, पुष्पा के उठते पद्म कण इधर उधर दौड़ते मुग, वापु के प्रवाह से ममर वरत मुप्य पण समठ इत्यादि सभी रति के उद्दीपन कारण होते हैं। अतएव काम ऐसे प्रभावशाली वातावरण की सजना कर स्वाभाविक में प्रवेश करता है और जब

वही— वह अपूर्व गुन्दरा पावती को देगता है तो उसका उगसाह द्विगुणित हो जाता है ।<sup>१</sup>

शनि न बसन्त क इस वणन म उहीं पहनुओं का वणन किया है तिनका प्रभाव विशेष रूप स युवक-युवतियों पर पड़ता है और तिसम यागिराज भा प्रभावित हुए तिन न रह सके । यह सम्पूर्ण वणन समय के अनुकूल हुआ है और उसमे शृङ्गाररस की सुन्दर व्यञ्जा हुइ है ।

कुमारसम्भव क अष्टम सर्ग म गूमास्त्र सध्या रात्रि का बडा हा सुन्दर वणन हुआ है । सध्या का समय है, मूय अस्ताचल का जोर जा रहा है । शिव पावता म कहत हैं—इस समय मूय गद्या तिसाई पड रहा है मानो वह तुम्हारी रत्त आँसा क समान सुन्दर कमनों की शोभा को सज्जित कर दिन का समेट रहा है । अब मूय की किरणें झरना की फुहारो म परे जा रहा हैं, चक्रव तथा चक्रवा एक दूसर क कण्ठ मे विमुक्त हाकर कदण श्रन्दः करन लग हैं । भ्रमर कमन क अन्तर बन्त हा गये हैं और मूय न अपना परछाई से धान म मुनहर कमल बना लिय हैं बन-झूकर तान मे तिकलकर जा रह हैं । लोटकर आना हुई गायें प्राङ्गण म विचरण करत हुए मयूर, हवन म जलनी हुई अग्नि हर-भरे पीपे इत्यादि स आश्रम सुहावना लगन लगा श्रुति मामबद गाकर मूय स्तुति कर रह हैं । मूय क विरोहित हान हा सा । आनाग साया हुआ सा मानूम पड रहा है । मूय क पाछे-पाछे सध्या भी चल दा, वपानि उच्य समय जो मूय क साथ रही वह अब विपत्ति समय उसका साथ कैस छोड सकती है ।<sup>२</sup>

चन्द्रोदय का वणन करत हुए कहते हैं—जो चन्द्रमा दिन भर दिसाई तही देता था, वह इस समय निकला हुआ एमा लगता है माना रात क कहने स चाँदनी रूप म पुस्कराता हुआ पूव दिशा के सब भू खोन रहा हो । चन्द्रमा का निखरो हुइ किरण, जा वामन जी के अकुरा क समान सुकोमल हैं । इस समय कमल बन्द हो गय ह और उजाना फैल जाने स एसा लगता है माना हाथिया स गंदा मान-सरावर निर्मल हा गया है । चन्द्र किरणा क पडन से चन्द्रक्रांत मणि की चट्टाना से जन की बूँदें टपक रहा हैं और सोय हुए मयूर वषा क भ्रम म जाग गय हैं । भौरा का गूज स भरा कुमुद तिल रहा है पत्ता क बीच बीच से छनकर जाता हुई चाँदना धरता पर पडन स आकषक लग रही है ।<sup>३</sup>

१ कुमारसम्भव ३।२५, ३६ तक २ कुमारसम्भव ८।१२ २२-३० तक

३ वही ८

यह वर्णन (शिव पार्वती के) शृङ्गार रस की पृष्ठभूमि के रूप में हुआ है—सूर्य, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय आदि सभी शृङ्गार रस के उद्दीपन विभाव हैं। अतएव कवि ने उसका बड़ा ही अभिराम वर्णन किया है। यहाँ कोई भी बात कवि के विरुद्ध नहीं कही गई है, सभी परिस्थितियों के अनुकूल और समय के अनुसार हैं।

रघुवश में महाकवि सर्वप्रथम महाराज दिलीप का यात्रा तथा तपोवन का दृश्य उपस्थित करता है। सन्ध्या-पूजा के लिए पाणि में समिधा, कुश इत्यादि लेकर आत हुये तपस्वीगण, इतस्ततः भ्रमणशील भृगु समूह, वृक्षों की जड़ों में जल देती हुई ऋषि कन्यायें, जुगाली करते हुए हरिणगण हवन का उड़ता हुआ धूम्र, ऋषियों की पणकुटियों इत्यादि का बड़ा ही चित्रात्मक वर्णन किया गया है। शान्तरस के लिए तपोवन से बढ़कर दूसरा देश नहीं हो सकता और सन्ध्या के अतिरिक्त कोई काल नहीं हो सकता। अस्ताचलगामी भ्रमण जीवन के शान्त क्षेत्र का प्रतीक होता है। अतः कवि ने आश्रम के शांत वातावरण का वर्णन सन्ध्या की बेला में किया है, जो अत्यन्त स्वभाविक ढङ्ग से साधारणीकृत होता है।

इसके अनन्तर कवि ने रमणीय गिरिराज के दृश्या में राजा के नेत्रों का जाकुम्भ कर भाषण गुहा में एक भयानक दृश्य उपस्थित किया है—सिंह द्वारा नदिनी पर आक्रमण। यह (गुहा) ऐमा स्थान है जहाँ भयोदय होता एव बीरता का उत्साह जागना स्वाभाविक है तथा राजा के धमवीर स्वरूप की परीक्षा एव अभिरुचि का एक ठीक दश काल उपस्थित हो। इस परीक्षा में सफल होने पर ही नदिनी का वास्तव्य कवि उम्भवा सकता है, नहीं तो इक्कास दिन की एक सी दिनचर्या से नन्दिनी का प्रसन्न होने का कोई तुक नहीं बैठता था।

इस प्रकार इन्द्र से युद्ध करना और उन्हें युद्ध में सन्तुष्ट करना, रघु के पराक्रम का सबसे बड़ा प्रमाण बना, जिसकी नवन नारद ने अपने किरातार्जुनीय में की है—अर्जुन का किरात वशधारी शङ्कर से युद्ध कराकर।

इही सुवराज के महाराज हान पर कवि ने उनसे दिग्विजय के लिए सारे भारत में परिभ्रमण करवाकर उन्हें भारत-वसुधरा का एकद्वय राय दिया। जो भारत भूमि में भ्रमण न कर सके, वह राजा कैसा? और इन्द्र का भी मात देने वाला, किता राजा स कहीं हारेगा, यह सोचा ही नहीं जा सकता। उनकी विजय की घोषणा तो कवि ने उनके यौवराज्य में ही इन्द्र से सघप के समय से कर रहा है।



रघु निम्बिजय के माध्यम से कवि ने अपने भौगोलिक ज्ञान का विस्तृत परिचय दिया है। भारत के चतुर्दिग में स्थित प्रदेशों एवं वहाँ के उद्यम का यथायथ वर्णन किया गया है। बङ्गाल में धान की खेती,<sup>१</sup> पूर्वी समुद्र तट पर सुपाडिया के वृक्ष, आसाम में कानागरु, कर्नाट में नारियल<sup>२</sup>, मलय में चंदन, ताम्रर्णो में मुत्ता<sup>३</sup>, काम्बोज में अखरोट<sup>४</sup>, हिमाचल में गङ्गा तथा देवदारु<sup>५</sup>, इत्यादि का निर्देश कर प्रत्येक शास्त्र से माना कवि ने वहाँ का पूरा चित्र सा अङ्कित कर दिया है।

पर्वतों एवं नदियों का भी यथास्थान निर्देश हुआ है 'पूर्व में महन्द्र<sup>६</sup> दक्षिण में मलय, दक्षुर सहा तथा कावेरी', पश्चिम में त्रिकट एवं त्रिधु उत्तर में हिमालय कलास एवं गङ्गा नदी<sup>७</sup>।

रघु के जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के पश्चात् कवि अज के बही सृष्टि के साथ वर्णन प्रारम्भ करता है। प्रातःकाल का समय है अज शयन कर रहे हैं, चारणवर्ण उनकी अनुपम रूप-श्री का गान कर रहे हैं।

स्वयम्बर के अवसर पर कवि ने विभिन्न राजाओं एवं अज इन्दुमती के अनु-भावा, सचारिया का जो वर्णन किया, वह देश-काल के अनुरूप एवं शृङ्गार रस की व्यञ्जना करने में पूर्ण रूपण समर्थ हैं। अज के वन शृङ्गार के साधारण आशय ही नहीं अपूर्व शोभ से मण्डित भी हैं। रघुवश के जिन वार नायकों से कवि इतना अधिक प्रभावित है उसका कोई भी रूप वार का अपवाद ही ऐसा सम्भव नहीं। अब प्रश्न उठता है—अज के शोभ का किस प्रकार अवसर निकाला जाए? अतः कवि इन्दुमती को लेकर लौटते हुए अज का विरोधी राजाओं के साथ युद्ध का प्रसङ्ग उद्घोषित करता है। जो समय एवं देश के अनुकूल है। अन्यथा उनके शोभ प्रदर्शन का कोई अन्य अवसर न था।

कहण रस कवि का अभिलषित रस है किन्तु इसके लिए अवसर भी तो होना चाहिए। अतः उसके लिए इन्दुमती की सहसा मृत्यु का प्रसङ्ग उचित स्थिति दिया गया है। मृत्यु के समय कहण रस को जैसा मार्मिक व्यञ्जना हो सनता है वैसा अज अवसर

- १ रघुवश ४।३७
- २ वही ४।८१
- ३ वही, ४।४८
- ४ वही ८।६६
- ५ वही ४।१२
- ६ वही, ४।४६

- ७ रघुवश ४।४८
- ८ वही ४।४२
- ९ वही ४।५०
- १० वही ४।७३।७५
- ११ वही ४।५१, ५२, ५३, ५४
- १२ वही ४।७, ८०, ७३

र मही । उद्यान का शान्त स्थल, पाद-प्रहार की बाट देखता अशोक, विकसित कर्ण-  
गार सम्मुख स्थित सबियाँ एव पुत्र, अज्ञ के शोक को भी उद्दीप्त करते हैं । इस  
कारण कवि ने करण रस की व्यञ्जना ठीक देश एव ठीक समय में की है ।

राजा दशरथ प्रारम्भ से ही मृगया व्यसनी रहे हैं । महाराज अपने अनुचरो  
के साथ वन में प्रवेश करते हैं । समय है वसन्त का—न अधिक शीत न अधिक  
उष्ण । सग वातावरण मृगया के लिए अच्छा समझा जाता है । इस प्रकार आश्वेक के  
अवसर पर ऋतुराज राजा के मनोभावों की व्यञ्जना करने में पूण सहायक हुए हैं ।

युद्ध के पश्चात् राम सीता को लेकर अयाध्यापुरी की ओर आ रहे हैं ।  
वाल्मीकि इत्यादि कवियों ने राम सीता का चरित्र चित्रण वैसे ही उत्कृष्ट ढङ्ग से  
किया है । सभा न राम के आदश पुत्र, आदश भ्रातृ एव आदश पति के स्वरूप का  
उल्लेख किया है, साथ ही सीता का पति परायणता का भी सब्र उल्लेख हुआ है  
किन्तु राम सीता का कितना स्नेह करत ये इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया ।  
महाकवि न त्रयोदश सग में राम द्वारा सीता के साथ व्यतीत किए गये उन उन सुरम्य  
स्थानों के वर्णन द्वारा सीता के प्रति उनके अथाह प्रेम की व्यञ्जना की है । राम, सीता  
का समुद्र दिखाकर अपन शृङ्गारिक अनुभावों का कितनी निपुणता के साथ कथन कर  
रहे हैं 'हे सुलोचन ! समुद्र तट का वायु तुम्हारे मुख पर केतकी का पराग विवाण  
कर रहा है । मानो वह यह जान गया है कि मैं अब तुम्हारे अधर का चुम्बन करने  
वाला हूँ और अब अधिक शृङ्गार की प्रतीक्षा नहीं करूँगा ।' पंचवटी को देखकर  
कुछ स्मरण सा करत हु । कहत हैं— मुझे वे दिन स्मरण हो रहे हैं, जब मैं यहाँ एकांत  
में वानीरगृह में तुम्हारे अङ्क में सिर रख कर शयन करता था और गादावरी का  
शतल अनिल मेरे आश्वेक-जनित थम का अपनोदन करता था ।' माल्यवान पर्वत का  
देखकर राम कुछ आत्मविमोह से हो उठत हैं और कहते हैं—मुझे स्मरण हो रहा है  
जब मेघ गजन करता था और गुफाओं में प्रतिध्वनि होता था तब तुम भयभीत हो  
मुझमें आनिगनबद्ध हो जाती थी । ह सीते ! माल्यवान पर वे पावस के दिन मैंने बड़े  
कष्ट में व्यतीत किए हैं ।<sup>१</sup>

इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से कवि ने मधुर अनुभावों की  
सुन्दर व्यञ्जना की । साथ ही पर्वत सपोवन, पंचवटी, अगस्त्य, शातकर्णी इत्यादि  
ऋषियों के आश्रम, पशु पक्षियों का जो प्रसङ्गवश वर्णन किया, वे स्वाभाविक एव देश-

१ रामायण १३।२३ ३५, २८

२ वही १३।२३ ३५ २८

काल के अनुरूप है। गङ्गा-यमुना के पवित्र सङ्गम का जो भव्य चित्रण किया—  
वह भा अत्यंत मनाहुर एव हृत्पाकपक है।

पूर्व मेघदूत महाकवि के भागालिक ज्ञान का सम्बन्ध निदर्शन है अथवा दूसरे  
शब्दा में मध्य भारत एवं उत्तरभारत के वृद्ध भागा का व्यख्यात्मक भूगोल है।  
ऐसा दखा जाता है कि कवि ने भारत के भूगोल सम्बन्धी अपने ज्ञान को, अपने ज्ञान  
काव्यों में निहित कर रखा है—रघुवज्र के विविध क माध्यम से कुमारग नव म  
हिमालय वणन के माध्यम से एवं मेघदूत में पूर्व मध्य के माध्यम से।

पूर्वमेघ कवि का भारत प्रेम है। जिस भारत का पवित्र भूमि में काशिदास ने  
जन्म लिया उस व अपने काव्य में स्थान न दे ऐसा नहीं हो सकता था। यद्यपि मेघ को  
अलकापुरा जान के लिए माग का निर्देश करने का कोई आवश्यकता नहीं थी किन्तु  
विषय के कारण यथा सग ज्ञान विश्वास के लिए माग का विस्तृत विवरण देने  
लगता है। साथ ही उन उन नगर पर्वत नदी पशु एवं पक्ष वृत्त इत्यादि के साथ  
वहीं के निवासियों के उद्यम एवं सृष्टि का भा परिचय देने लगता है।

उत्तर मध्य में अलकापुरा का जैसा अठ्ठा वणन कवि का शक्तिशाली उद्यम का  
माध्यम से हुआ है, वह सर्वविशिष्ट है। यहाँ के ऊँचे नवन रण विरोगे चित्र सर्व  
शृङ्गार मण्डित सुवस्तुएँ शृङ्गार का शमल सा शिरो का दन ज्ञान के पशु  
अर्हिनम घात करत हुए मयूराण मन्त्रे फलन बाना इन्द्र मन्दाकिनः के नट पर  
क्रांति करता हुई कर्णों रमण करता दूर रमणियाँ चन्द्रमा का मृतावता चादनी  
इत्यादि का बड़ा ही मनोहर वणन हुआ है। अलकापुरा का उमुद्धिता का रूप में उद्यम  
करने का एक उद्देश्य है। कवि का शृङ्गार का वणन करना है अब दश समृद्धि का  
न हागा वा वहाँ के निवासियों मनुद्धिवान कैम ही जार परवय के वातावरण में शृङ्गार  
का ओर मानव का प्रवृत्ति अधिक होता है। अलकापुरा का निवास हीन के कारण  
यस भा ज्ञाना ज्ञाना के प्रेम में विनत हो गया अतएव उस ज्ञान का मात्रन जाना  
पडा। समृद्धि में पालित यतिना का वियोग भी सिद्धांत ही गया है और वह सिद्ध  
के क्षण मानने नहीं कर पा रहा है। अतएव अलकापुरा का परव्यक्तिना रूप में  
वर्णित करना परिस्थिति एवं समय के अनुरूप है।

पूर्वमेघ में दश-काल का जो भा वणन गया है व उद्यम विभाव के अभाव  
नहीं मान जा सकता किन्तु यह कवि के भावों के आलम्बन है, जिन्हें उसने दश सुष्ठेन  
व्यक्त किया है। उस प्रकार मेघदूत में वर्णित दश काल के माध्यम से शृङ्गार के अनु-  
भावों का सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

ऋतु संहार म पङ्-ऋतुआ का उद्घापन रूप मे वणन हुआ है जो काल के अनु-  
रूप मानव हृदय में विभिन्न भावो का जाग्रत करती हैं ।

इस प्रकार उपरोक्त वणनो को देखत हुए हम यह कह सकत हैं कि कालिदास  
देश काल के वणन में पूणतया सफल हैं । उनके देश-काल सदैव किसी न किसी भाव  
का व्यञ्जना के निर हा प्रयुक्त हुए हैं कवि ने उनका वणन सहज रूप स किया—कहीं  
बलात् उसे रूसने का प्रयत्न नही किया । महाकवि इस तथ्य को भली प्रकार जानते  
थे कि प्रकृति का अत्यधिक वणन काय मे चित्रात्मकता का कारण होता है इसलिए  
काद भी वान देश काय क विरुद्ध होकर रस भङ्ग का कारण बनें, इसके लिए वे सदा  
सतव रहते हैं ।

### (७) भाषा की व्यञ्जकता—

नवनवामपशालिनाप्रतिभा मे अनुप्राणित जा वणना निपुण है, वह कवि कठ-  
नाता है और उसका कम 'काय' कहलाता है । कवि म शक्ति, निपुणता, अस्वास,  
तोना का तुल्य-योग हाना अत्यावश्यक है । अथवा एक व नी अभाव म उत्कृष्ट  
महाकाय की रचना न हा सकेगा ।

काय क स्वरूप क विषय म जिन पाँच सम्प्रदाया की प्रतिष्ठा हुई है, वे  
अलङ्कार, राति, यत्राक्ति रस एव ध्वनि है । प्राचीन जालङ्कारिका न जैस अलङ्कार  
को शब्द और अर्थ का धम कहा है अर्थात् एक विशिष्ट प्रकार क शब्द, विशिष्ट  
अलङ्कार से युक्त कहा जैसे हा गुणों का शब्द अर्थ का धम कहा है । वामन न शब्द  
और अर्थ दस गुण माने हैं । इस प्रकार यदि ध्यान से देला जाय ता इन  
आचार्यों के अनुसार गुण अलङ्कार में कोई विशेष अंतर नही समझ पड़ता । किन्तु  
ध्वनि सम्प्रदाय क अनुपायी आचार्यों ने गुणा एव आङ्कारो में विशिष्ट भेदक तत्त  
कल्पित किया । उ होने गुण का सम्बन्ध रस मे एव अलङ्कार का सम्बन्ध शब्द-अर्थ  
स किया तथा गुण को रस का नित्य स्थायी सम्बन्ध बताया अर्थात् उ होने गुण का  
रस के साथ अविनाभाव सम्बन्ध माना । अलङ्कार का रस क साथ इस प्रकार नित्य-  
सम्बन्ध उ है स्वाकाय नही । ध्वनिशास्त्रिया के अनुसार शब्दो स गुण व्यञ्जय हात हैं  
और गुणा स रस । माधुस्य ओजस्य प्रसाद क व्यञ्जक शब्द हाते हैं और गुण अनी  
आर से विशिष्ट रस का व्यक्त करत हैं । इस प्रकार व्यस्य-परम्परा के अनुसार गुण  
भा एक प्रकार क व्यञ्जय तत्त्व कहनायेंगे । ऐस धर्म जो काय क शब्दो स व्यञ्जना  
द्वारा सम्बद्ध रहत है किन्तु ये तत्त्व नही हैं । यह एक प्रकार का गृह्यमि है  
जिसका रस रूप भवन के निर्माण क लिए हाना आवश्यक है । इनक व्यञ्जक विशिष्ट  
प्रकार क वणन होत है और उन वर्णों का रोति हातो है ।

महाकवि कालिदास के काव्य में प्रसादगुणापन वेदों की रीति के ही सवत्र स्तन होत हैं। उन्होंने बाल्मीकि का अमर भावामर शैली का अनुसरण नहीं किया, अपितु एक नवान् माग का अरनाया आकार भावामरक के शक्ति—सत्र जलद्वारा से युक्त है। मानुष व्यञ्जक कामल वर्णों के प्रयाग तथा दीघ समासा के अभाव के कारण उनकी समस्त काव्य सुन्दर एवं सहज प्रेयणाय ही गया है। उनके काव्य में कठोर महाप्राग ध्वनिया, ककश मयुक्तांगरा तथा लम्ब समासा का प्रयाग बहुत कम पाया जाता है। काव्य में शृङ्गार एवं करुण रस का प्रधानता हान के कारण, कालिदास का रचनाश्रम अन्त करण का द्रवित करन वाला आह्लात्म्य पदयोजना का ही सवत्र प्राबुध है।

रघुवश में कोमलकान्त पदावली का ही सवत्र प्रयाग किया गया है। कालिदास का वेदों विभिन्न भावा एव रसा का व्यञ्जना करन में अत्यन्त निपुण है। वन में नदिना की संवा करत हुए राजा दिलीप का यशागान दवताशा न गद्गद् कण्ठ न किया—

स कीचकर्मस्तपुणरत्रं कूजद्विमारापादित वशहृत्पम् ।

शुश्राव कृत्रेषु यथा स्वमुच्चरद्दृगीयमान वनदेवताभि ॥ रघु० ॥

विवाह के अवसर पर इन्दुमती के स्वाभाविक सौन्दर्य का बड़ा कुतूहल के साथ अभिव्यक्त किया गया है—

तदजनकलेदसमाकुलाश प्रभ्तानवीजाङ्गकुरक्षणपूरम् ।

यधूमुस्र पाटलगण्डलेखमाचारधूमग्रहणाद्भूव ॥ रघु० ॥

नवम् सग में वसन्त के शनै शनै आगमन का चित्र रखाद्वित करता हुआ कवि कहता है—

कुसुमजम ततो नवपल्लवास्तदनु पटपदकोकिलकूजितम् ।

इति यथाश्रमभाविभूममघूर्द्धमवतीभवतीय वनस्पतीम् ॥

वसन्तो मव के समय कामिनिया का मधुर कल्पनाशा एव उनकी शृङ्गारिक अनुभावा का कथन बट ही सहज दृङ्ग से करता हुआ कवि कहता है—

अनुभवन्नवदोलभुस्तव पटुरपि प्रियकण्ठश्चिषमया ।

अनपदासनरज्जुपरिग्रहे भ्रूलता जलतामवलाज्ज ॥

मेषदूत दो वर्णों की स्निग्ध पद शैल्या ही है। मधुर कल्पनाशा एव मुकामन्यों का एसा मणि-वाचन सयोग कवल यण के सदेश कथन में ही सम्भव ही सकता है। यक्ष मेष का अभिज्ञानाथ अपन गृह का परिचय देता हुआ कहता है—

तस्यास्तोरे रचितशिखर पेशलरिद्रनील

क्रीडाशील कनककदली घेष्टन प्रेक्षणीय ।

मदगोहिंया प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपात् प्रस्फुरिततडित त्वा त्तमेव स्मरामि ॥ २।१४७

पीडित यक्ष की विरहावस्था का चित्र रेखाङ्कित करते हुए कवि कहता है—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी

नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रशरित्तप्रकोष्ठ ।

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमारिलप्टसानु

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददश । पू० मे० २ ॥

ऋतुसंहार में ऋतु के परिवर्तन के साथ युवक तथा युवतियों की प्रणय क्रीडाओं का हृदयाकषक चित्रण हुआ है। काव्य की प्रत्येक पंक्ति में यौवन की पूर्ण अभिव्यक्ति एवं सम्मोग शृङ्गार का मनोरम अङ्कन हुआ है। काव्य की भाषा सर्वत्र सरल तथा प्रसादगुणोपेत है। इससे पद्यों पर प्रणय के चित्र खींचे जा सकते हैं। काव्य में शब्द चित्रा की छटा दशनीय है—

वरुण रस के वर्णन में भी कालिदास ने सुन्दर शब्द विधान के माध्यम से काव्य निपुणता का परिचय दिया। पद्मा की मृत्यु पर विलाप करते हुए अज ने मानव की समस्त वेदना एकत्रित कर ली है—

विललाप स बाष्पगद्गद सहजामत्यपहाय धीरताम् ।

अभितप्तमयोऽपि मादव भजते कव कथा शरीरिपु ॥ २५० ॥

पद्मा की मृत देह को देखकर जाशा विन स्वर से कहने हैं—

कुसुमोत्सृचिता बलीभूतरचलयभङ्ग चस्तबालकान ।

करभारु करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशङ्कि मे मन ॥ ८।१३ ॥

परित्यक्ता सीता द्वारा राम का भेज गए संदेश में सीता की उत्तिक 'वाच्यस्त्वया मदयनात्स राजा स और राजा शब्द सीता की निरसाम वेदना एवं दैयता के व्यञ्जक हैं। उनकी वेदना प्रस्तुत क्लोक में मुखरित हुई है—

निशाचरोपप्लुतमनृ वाणां तपस्विनीनां भवत प्रसादात्

भूत्वा शरण्या शरणाचमय व्यथ प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ॥ १४।६४ ॥

इस प्रकार कालिदास के काव्य में भाषा का कोमल एवं घरस रूप ही लक्षित होता है। वहीं भी दीप्य समास एवं ककश ध्वनियों का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता। यद्यपि वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसा में गौडा रीति तथा ओष कुञ्ज बाँझनीय समभे

जात हैं, तो भी कालिदास का कृतिमात्र उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में विघ्न होने से कुपित शिव जी का चित्रण करते समय कवि प्रौढ शली का प्रयोग करता है—

स्फुरन्नुर्वाचि सहसा तृतीयादक्ष्य कृशानु क्लित निष्पत्तात् ॥ ३।७१ ॥

इसमें गौडा राति तथा आज्ञ गुण है। ह०, प्रे०, पै० क्षण इत्यादि कठोर ध्वनिया का प्रयोग हुआ है तथा तीन चार पदा के समास भी किए गए हैं। क्रोध के उदापन के कारण या वणन दक्षिणे —

स दक्षिणापाङ्गनिविष्टमुष्टि नतासमावृचिद् सव्यपादम् ।

ददर्श घञ्जीकृतचारुचाप प्रहृत्तमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥ ३।७० ॥

यहां भा तात चार पदों के समास किए गये हैं। रति का विपत्ति का वणन भी कवि प्रौढ शली में करता है—

तीत्राभिषङ्गरभवेण व त्ति मोहेन सस्तभयतद्रिमाणाम् ।

अज्ञातभृत्यसना मुहूत कृतोपकारेव रतिबभूव ॥ ३।७३ ॥

कुपित पावता की रोपपूर्ण उक्ति दक्षिण—

अल विवादेन यथा श्रुतस्त्वया यथाधिषस्तावदशेषमस्तु स ।

माभात्र भयेकरस मन स्थित न कामव त्तिर्गवनीयमोक्षते ॥ ५।८२ ॥

रघुवश में रघु इंद्र के युद्ध जवसर पर इसा शली का अनुसरण किया गया है—

हरे कुमारोऽपि कुमार विक्रम सुरद्रिपास्फातनरुक्कशगुली ।

भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्क्षित स्वनामचिह्न न निचछान सायकम् ॥ ३।५५ ॥

रघुवश में वाररस का ही प्रधानता है इसलिए उनके लिए गौडी रीति ही उपयुक्त सकती जाती है। किन्तु वार रस के इन स्थानों में भी भाषा का सरस रूप ही समझ आता है—

क्षत्रजातमपकार रीरि मे तन्निहत्य बहुश राम गत ।

सुप्तसप इव षण्डघट्टनाद्रोपितोऽस्मि तव विक्रमभ्रवात् । १।१७१ ॥

इस प्रकार कालिदास व का प का प्रत्येक शब्द चित्राङ्कन का लपूर्व समना युक्त है। कवि का मूलभूत गुण यह है कि वे अमिथा वा अपेक्षा व्यञ्जना का ही धिक आशय लेते हैं। वे एक निश्चित प्रभाव छोड़कर ही संतुष्ट हो जाते हैं, शेष व मुख्य व्यञ्जना के लिए छोड़ देने हैं।

उनके काव्य में भाषा की मजबूतता, स्निग्धता एवं मधुरता सर्वत्र विद्यमान है। भाषा किस प्रकार अन्तःकरणसिक्त होती है, इसे मधुद्रुत का कवि भली प्रकार जानता है—

एतस्मान्मां पुरासिनमभिज्ञानदानादविदित्वा  
मा कौलीनादसिननयने यययविशवासिनी भू ।  
स्नेनाह् किमपि विरदे प्वासिनस्त त्वभोगात् ।  
इष्टे वस्तुन्पुपधितरसा प्रेमराशो भवन्ति ॥

महाकवि कालिदास युग प्रवर्तक काव्यकार एवं साहित्य स्रष्टा थे। वस्तुतः उन्होंने सस्कृत साहित्य में एक नवीन द्वार का उद्घाटन किया। उनके काव्यों में जिस रसमयी भाषा का प्रयोग हुआ है—वह निव्वराहृद्य है। बार एव रोद्र रसांक वषण में साहित्य शास्त्रिया ने यद्यपि ओजगुण को ही अनिवाप बताया है। रघुवश में शौरस की प्रमुखता होत हुए भा कवि न ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो सहज मनो-प्राप्त है। कुछ कठोर ध्वनिया तथा लम्ब समासा का अवश्य कहीं-कहीं प्रयोग किया है किन्तु फिर भी उस प्रकार के नहीं हैं जैसा परवर्ती कविया के काव्य में मिलता है। कवि द्वारा प्रयुक्त 'मधुद्रुत' म मन्दाक्रान्ता की भाषा कहीं-कहीं कुछ विलम्ब अवश्य हो गई है किन्तु वह विलम्बता जान-दायित्व रसमयता में पयवसित हो जा के फलस्वरूप आपाततः मधुर एवं कोमल हो गयी है। उनके काव्य में ऐसे स्थान नहीं हैं जिनका अर्थ स्पष्ट हो।

मुहावरा के सफल प्रयोग में उनका भाषा में प्रौढता आ गई है—

(१) यात्रामोघा वरमधिगुणो नाथमे लघकामा ॥ पू० मे० ७ ॥

(२) रिक्ता सर्वा भवति हि लघु पूणता गौरवाय ॥ पू० मे० २० ॥

इस प्रकार समृद्ध युग के कवि होने के कारण कालिदास के काव्यों में भाषा का समृद्धिशाली रूप ही द्रष्टव्य है। मानव अनुभूतियों का अत्यन्त व्यापकता गम्भीरता धरलना एवं स्वामाविबता के साथ चित्रण, कवि की शक्तिमती समृद्ध भाषा के द्वारा ही सम्भव हो सकी है। भाषा उनके विचारा अनुभूतिया एवं भावनाओं की व्यञ्जना की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। कवि ने अपने काव्य में वषण सङ्गठन पद सङ्गठन शब्द सङ्गठन वाक्य सङ्गठन, लोकोक्तियों आदि के चयन में अपनी महान काव्य-शक्ति का परिचय दिया है। इसीलिए कवि की भाषा अपने वच्य को जितना व्यापक रूप में व्यक्त करता है उसमें अधिक प्रतिपाद्य की व्यञ्जना करने में व्यञ्जक बन जाती है।



ज) जय व्यजनाए —

नामकरण की व्यजकता—

महाकवि कालिदास का मूलम ग्रहिणा प्रतिभा न कथानक, चरित्र चित्रण वा छन्द इत्यादि का याचना व्यजकता का दृष्टि से ता का हा है, काव्य का नामकरण ना रम कथानक का व्यजना का दृष्टि से किया ।

मारमम्भव—

महाकाव्य का यह नामकरण हा सम्पूर्ण कथानक का व्यजना कर देता है । चरित्रानुसन्धे इसमें शिव तावता क सथाग द्वारा इस बात का व्यजना कर दा है कि योग क परवान् अत्र कुमार कानिक्य का उत्पत्ति था । यदि कवि का कुमार को उत्पत्ति का वर्णन करवा अभिप्रेत होता ता वह इस काव्य का नाम जम काविक्य जम का और कुट्ट रखाता । किन्तु वास्तव म काव्य का यह उद्देश्य उम अभाष्ट न था । उस का शिव-भावता क दाम्भरय जावन क वर्णन द्वारा कुमार का उत्पत्ति का बार सकत प्रक करना हा अभिप्रेत था । ता लाग यह कहत हैं कि श्राठ मर्ग क श्वात् कवि का मृदु हो गई या अथ कारण बतात हैं वास्तव म कवि क अभिप्राय का न समथ कर । इस प्रकार काव्य क इस नामकरण म काविक्य का उत्पत्ति साथ हा सथाग शृङ्गार को मुक्त कल्पना होता है ।

रघुवंश—

इस नाम से भा यह व्यग्य हो जाता है कि इसम रघुकुल म उदा न राजाश्रा का हा चरित्रानुसन्धे किया गया हागा । काव्य क प्रथम सर्ग क प्राग्भूम में कवि अपना वर्णनाथ विषय भा बता देता है कि मैं जादा चरित्र रघुवशिया का कथन करन जा रहा हूँ । रघुवंश का अथरु रूप वारता का अनुपम प्रताक है जत काव्य क नामकरण म इस बात का भा व्यजना हा जाता है, कि इसमें वीर रस का प्रधानता है ।

मेघदूत—

यह नाम भा वस्तुतः बड़ा ही व्यजक है काव्य के नाम करण से ही यह सम्भावना होने लगता है कि इसम मेघ क विषय मे कुछ नहीं कहा गया हागा, जपितु मघ का दूत बनाया गया हागा, दूत भा किसी प्राणी न बनाया हागा और जब दूत बनाया हागा तो अवश्य ही प्रेपक अपने किसी त्रिय से दूर स्थित होगा और उससे अपना प्रेम सन्देश भेजा होगा । वास्तव में मघदूत म इसी सत्य का कथन किया गया है । विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यजना होता है ।

## ऋतु संहार—

काव्य का नामकरण ऋतु संहार रखकर माना कवि ने सब कुछ कह दिया है। इसमें संहार शब्द का समूह के अर्थ में प्रयोग किया गया है। अतः इसमें पद-ऋतुओं का ही वर्णन किया गया है।

## पात्रों की व्यञ्जना—

महाकवि ने इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के अतिरिक्त कुछ विशेषपात्रों को भी अपने काव्य में रचाना दिया है जिनका इतिहास में वही भी वर्णन नहीं मिलता। इन पात्रों का नामकरण भी कवि ने व्यञ्जकता का दृष्टि से किया है। तृणविन्दु, वरतन्तु, कौत्स, प्रियम्बद, अयोध्या की नगर वधु, इत्यादि सभी कल्पित पात्र मुख्य पात्रों के चरित्र एवं प्रबंध रस की व्यञ्जकता करते हैं। वरतन्तु शिष्य कौत्स के द्वारा कवि ने रघु के दानवार स्वरूप का मुंदर व्यञ्जना की है, रघु द्वारा शिष्य कौत्स से गुप्त वरतन्तु के कुशल-क्षेम पूछने में शांतिरस की व्यञ्जना हुई है। वनगज प्रियम्बद के माध्यम से अजय की शोच एवं व्यञ्जना हुई है। तृणविन्दु भी दुखी अजय की समार की नश्वरता का ज्ञान देने के लिए अवतरित हुआ है। अयोध्या की नगर देवी के माध्यम से कर्ण रस एवं युधिष्ठिर के अतिशय चरित्र का कथन किया गया है। इस प्रकार इन सभी पात्रों की कल्पना एवं उनका नामकरण विभिन्न रसों की व्यञ्जना की दृष्टि से किया गया है। मेघदूत के यक्ष एवं यमिणा भी विप्रलम्भ शृङ्गार की विस्तृत व्यञ्जना करते हैं।

## पद वर्ण तथा रचना की व्यञ्जकता—

आचार्य आनन्दवर्धन ने अलङ्कारमय व्यंग्य के अंतर्गत पदवर्ण, प्रबंध की व्यञ्जकता को भी स्वीकार किया। आचार्य मम्मट भी पदादि की व्यञ्जकता को स्वीकार करते हुए कहते हैं—'पदेकदेशरचनावर्णोऽपि रसादयः' का० प्र०।

कालिदास के काव्य में पद आदि का व्यञ्जकता के पर्याप्त स्थल प्राप्त होते हैं। विशेष पद, विशेष परिस्थितियों में विशेष अर्थ, एवं रस की व्यञ्जना करते हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त पद, वर्ण प्रकृति-प्रत्यय, निपात, अर्थ इत्यादि की योजना बड़ा ही सटीक एवं यथास्थान का गया है, जिसे बदल कर दूसरा नहीं रखा जा सकता। वे अपनी जगह विशेष अर्थ के व्यञ्जक हैं।

## सुमारसम्भव—पद की व्यञ्जकता—

सुमारसम्भव में पदों की व्यञ्जकता अनेक स्थलों पर प्राप्त होती है। पालिनि के अनुसार 'सुप्तिङ्लन्त पदान्' अर्थात् सुवर्त और तिङ्लन्त को पद कहते हैं। यहाँ सुवर्त एवं तिङ्लन्त दोनों प्रकार से पदों की व्यञ्जकता का कथन किया जायेगा।

प्रथम सग म शिव द्वारा काम को भस्म कर दिग् जान के परवान् कवि कहता है—'तदाप्रभृषव विमुक्तमग पति पतूनामपरिग्रहोऽभूत्' यहाँ शिव का विशेषण 'पतूनाम पति' रखा गया है जिसे उनक दयाहीन, निर्मोहा होने की व्यञ्जना होती है, क्योंकि काम क वृत्तित काय मे शिव हृत्प अव स्या सनिष्प म सवया उद्विग्न हो गया था—इसलिए उह कवि न पतूनाम्पति कह कर सम्बोधित किया है।

यहा स्त्राम्या यह पद यजक है। सिया स्वभाव स हा डरपाक होता है। अत स्त्रियां तक भा किसा का डरा द तो अय पुष्य का वात क्या है। स्त्रिया क दयालु प्रकृति णव उनक सामान्य स्तर का व्यञ्जना का गई है। साथ हा 'भ.शार्थाना भयहृत्' इसलिए भय क अथ म पचमा विभक्ति का प्रयोग किया गया अत विभक्ति द्वारा भय की व्यञ्जना का गई है।

इद्र कामदेव स कहता है मैं न मुता ह कि नगर कन्या पिता का आना से 'स्थाणु' का फैलान पर सवा कर रही है।

यहा शिव का स्थाणु सना दकर उनक अविचल यागाराज स्वल्प का व्यञ्जना हुई है।

इसा प्रकार कवि न शिव क अनक विशेषण रखे हैं। जिनस उनक विभिन्न स्वल्प का सुन्दर व्यञ्जना हाता है। प्रथम ग म नारद हिमवान स कहत हैं—'तुम्हारा पुता हर का एकमात्र जघाङ्गिता बनगा। यहाँ कवि न हर पन् का प्रयोग इध अय म किया है कि जा शिव सवका हर तत है उनक भा हृदय का यह हर लगा।

तृता सग म कामदेव का उत्साहित करता हुआ इन्द्र कहता है—हे काम! य दवगण शत्रु को जातन क लिए भव (शिवता) क वाय स उत्पन्न होने वाले सना पति का कामना कर रह है। यहा शिव का अमाप उ सादक शक्ति का प्रकट करने क लिए भव पद का रखा गया।

शिव क त्रिनय स काम दग्न हा गया। कवि कहता है—'भव क त्रिनय से उत्पन्न बल्लि म बनकर कामदेव भस्म हो गया। यहा भव की याचना शिव क कठोर प्रकृति क व्यञ्जक रूप म का गई है।

तपस्मा का कारण कहता दुइ सख। कहता है—'पिताका शिव न ता काम का जना कर भस्म हा कर लिया यह दस हमारा उत्रा निराश हो गई। यहा भा

'पिनाकी' पद शिव का कठोरता का व्यञ्जक है। किन्तु मानिनी पावती भी ऐसी हठीली है कि 'पिनाकी' से हा विवाह करने पर तुली है। तपस्या का कारण जान कर ब्रह्मचारी कहता है उस 'कपाली' को प्राप्त करने के चक्कर में दो के भाग्य फूट गए, एक चंद्रमा की बला के, दूसर तुम्हारे'। इन दोनों ही स्थलों में शिव के दृढ़ता, कठोरता आदि गुण की व्यञ्जना के लिए 'पिनाकी' एवं उन्हें घृणा का पात्र बतलाने के लिए 'कपाली' का प्रयोग किया गया है। सप्तम सग में कवि ने पुन 'हर' पद के प्रयोग द्वारा शृङ्गार रस की बड़ी ही सुन्दर व्यञ्जना की है। विवाह के समय पावती अपने लुभावने रूप को दपण में देखकर ठगी सी रह जाती हैं। 'हर' के आगमन का प्रत्याशा में एक एक घडा उनके लिए भारी हो गई है क्योंकि 'स्त्रिया का शृङ्गार सभी चरितार्थ होता है जब उसे प्रिय देखे।

उपसग की व्यञ्जना—

कवि कहता है—

शिरोपपुष्पाधिकसौकुमार्यो बाहू तद्वीयाविति मे वितक ।

पराजितेनापि हृतो हरस्य यो कण्ठपाशो मकरध्वजेन ॥ कु० स० ३१।४१

यहाँ 'पराजितेन' द्वारा शिव द्वारा भरा प्रकार हारा दिए जाने की बात बही गई है। परा उपसग साधारण हार नहीं अपितु प्रकृत हार का व्यञ्जक है। 'जि' धातु 'जय का द्योतक होता है किन्तु यहाँ उपसग से वह भी पराजय का व्यञ्जक बन रहा है साथ ही 'कण्ठ पाशे' पद द्वारा कण्ठानिर्झन की व्यञ्जना हा रही है। कण्ठपाश की जगह कण्ठ रज्जु भी कहा जा सकता था किन्तु उससे कवि ने अभिप्रेत अर्थ की व्यञ्जना नहीं हो सकती थी।

उमा मुख फलाघरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।

यहाँ व्यापारयामास का अर्थ है सामिनापमताशात जिसकी व्यञ्जना अर्थ किसी विज्ञान पद द्वारा सम्भव न हो सकती था। इस प्रकार 'व्यापारयामास' पद रति भाव का व्यञ्जक है।

रघुवश—

रघुवश में भा पद, पदेकदेश, प्रकृति प्रत्यय इत्यादि का व्यञ्जना व स्थल भरे पडे हैं।

पद की व्यञ्जना—

रघुवश के द्वितीय सग के प्रारम्भ में ही कवि कहता है—

अयप्रजानामपि प्रभाते जायाप्रतिप्राहितगघमाल्याम् ।

वनाय पीतप्रतिददवत्सा यशोधनो धेनुमृषेमु मोच ॥२।१

यहाँ 'जाया' से पुत्रजननयोग्यत्व, यशोधन से पुत्र द्वारा प्राप्त हान वाली काँचि क लोभ के कारण गौरभण में प्रवृत्त राजा का व्यजना ही रही है ।

उदोरयामामुरिवोमदानामालोकशब्द वयसा विरानी ॥ २५० २।६

यहाँ आलोक शब्द से जय शब्द का व्यजना ही रही है अर्थात् राजा इतन प्रभुता सम्पन्न वीर थे कि वन में भी उनका वारता का गान किया गया ।

'तमातपक्लान्तमनातपत्रमाचारपूत पयन सिषेवे' ॥ २५० ॥ २।७३

यहाँ आचार पूत पद जगत क कल्याणकता राजा का व्यजक है ।

ऊन न सत्त्वेष्विहो बवाधे तस्मिन् गोप्नरि गाह्यमाने ॥ २।१४

यहाँ गोप्नरि राजा क नन्दिनी के रक्षक रूप का व्यजक है और इस प्रकार उनका वार चरित्र की व्यजना ही रही है ।

'प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं ता मुदक्षिणा साज्ञान्पात्रहस्ता' ॥ १।२१

यहाँ नन्दिनी का पयस्विनी कह कर, उसके प्रशस्त क्षार वाली होने का व्यजना का गई है । कवि यह पहने ही कह देना चाहता है कि इस क्षीर का पान करके पशुवाद् राजा को पुन धन की प्राप्ति अवश्य होगी ।

वत्सोत्सुकापि स्तिमिता सपर्या प्रत्यग्रहोत्सेति ननदतुस्ती ॥ १।१२

यहाँ स्तिमिता पद द्वारा नन्दिनी के निरचलत्व की व्यजना को गई है । नन्दिनी न अपने बद्ध के लिए उत्कण्ठित होत हुए भी, एकाग्र हाथ रानी को सपना आदरपूर्वक ग्रहण किया—उस बात की व्यजना ही रहा है ।

दिनावसानोत्सुकचामवत्सा विसृज्यता धेनुरिय महर्षे ॥ २।४५

यहाँ वातवत्सा पद द्वारा सद्य प्रभूत बद्धे का व्यजक वत्स तो स्वयं ही किसी छोट बच्चे का व्यजन होता है कि तु वात वत्स कह कर शात्रु ही उदरान बच्चे की आर सकत किया गया है ।

एकान्तविध्वंसिषु मद्दिघाना पिण्डेवनास्या खलु भौतिकेषु ।

यहाँ शरीरेषु न बहकर पिण्डेषु कहा गया है । राजा दिलाप को नन्दिनी का रक्षा क समय जब निर्जीव पिण्ड के प्रति कोई माह नहीं रह गया है । शरीरेषु से कुछ चेतन शरीर का बोध होता है किन्तु पिण्ड बहकर उसके प्रति विलुप्त जनास्या की व्यजना की गई है ।

सत समानीय स मानितार्थो हस्तो स्वहस्ताजितवीर शब्द ।

बशस्य कर्तारमनन्त कीर्ति सुबक्षिणायां तनय ययाचे ॥ रघु० २।६४

कठोर परीक्षा में -उत्तीर्ण होने के पश्चात् अब उनके धर्मवीर स्वरूप का ही कवि को अभिप्रेत है इसलिए उसने राजा के विशेषण रूप में 'स्वहस्ताजित शब्द' पद को रखा, जिससे उनके दातृ व दैन्यराहित्य की व्यञ्जना होती है । यही 'बशस्यकर्तारम्' पद से ऐसे पुत्र को व्यञ्जना होती है जो रघुकुल का रत्न बनें ।

'गृहाण शस्त्र यदि सर्गं ते न खल्वनिजित्य रघु कृती भवान् ॥ ३।५१

यहाँ रघु के लिए 'रघु' पद का प्रयोग उनके दुर्जयत्व एवं दुग्ध वीर स्वरूप का व्यञ्जक है । इसी प्रकार रघु के लिए 'सुदक्षिणासूनु' । । पद की योजना द्वारा उनके जय वीरत्व की व्यञ्जना की गई है ।

भुजिवनतपच्छायां देव्या तथा सह शिप्रिये ।

गलिततवयसामिध्वाकूणामिव हि कुल क्षतम् ॥ ३।७०

यहाँ तरुचत्राया के स्थान पर 'वृक्षच्छाया' पद का प्रयोग भी किया जा सकता है किन्तु तरुच्छाया द्वारा जिस शांत रस की व्यञ्जना हो सकती है, वह वृक्षच्छाया होने में न हो पाती ।

'गतो बढा-धतरमित्यय मे मां भूत्परीवादनावतार' ॥ ५।२४

यहाँ 'नवावतार' पद बड़ा व्यञ्जक है । कौत्स यदि रघु से बिना दान प्राप्त किए ही सौट जायेगे तो यह रघु के लिए भारी एवं नव अवतार होगा क्योंकि अभी तक कोई भी रघुवशी राजा दोष का भागी नहीं हुआ । यह नवीन बात रघु के लिए ही लागू होती अतः यहाँ 'नवावतार' का पद का प्रयोग किया गया है ।

मनुष्यशाह्य क्षतुर स्त्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि' ॥ ६।१०

यहाँ इन्दुमती के लिए 'कन्या' पद का प्रयोग उसके दोष रहित कुमारीत्व की व्यञ्जना कर रहा है ।

'अत शरीरेष्वपि य प्रजानां प्रत्यादिवेशाविनाय विजेता' ॥ ६। ६

यहाँ शरीरेषु द्वारा अन्त करणेषु की व्यञ्जना की गई है । इस प्रकार यहाँ 'शरीर' पद से इन्द्रिय की व्यञ्जना हो रही है ।

सा पूनि तस्मिन्नभितायवच शशांक शालीनतया न वक्षुषु ।

यहाँ भा इन्दुमती के लिए 'सूनि' पद का प्रयोग कर उसके पूर्ण यौवव एव कुमारीत्व की व्यञ्जना की गई है ।

'अदास्यमान प्रमदामिष तदाववृत्य प्रयानमजस्य तस्थो ।'

'अमिष का अर्थ होता है मांस । प्रमदामिष से उग्रके भाग्य वस्तु होने की व्यञ्जना की गई है क्योंकि अय राजाका का दृष्टि में इन्दुमती कबल भोग्य वस्तु ही है । अतः इस समय उमक लिए प्रमदामिष पद का प्रयोग किया गया है ।

'इत पराभक्त्वायरास्त्रान्वदमि' परयानुमता मपासि' ।

यहाँ अनक द्वारा अवोध बालक का व्यञ्जना हो रहा है । रण न निश्चेष्ट राजाओं का शस्त्र बालक भी छोड़ सकता है अतः बालक न कहकर 'अभक' पद का प्रयोग किया गया है ।

गुणवस्तुतरापितत्रिय' परिणामे हि दिलीपमशत्रा ।

यहाँ दिलीप वशत्रा कहकर दिलीप क धर्मवीर क उत्तरूप का व्यञ्जना की गई है । रघुकुलवशत्रा भी कहा जा सकता था किन्तु 'दिलीप वशत्रा' श्र-पद द्वारा दिलीप क आदर्श गुणा क उत्तरूप का कथन किया गया है ।

सीता-परित्याग के समय राम नक्षमण से कहते हैं—

तव सग करुणादचित्तेन मे भवद्मि प्रतिषेधनीय ।

यहाँ 'सग का अर्थ है निश्चय । सग' पद का प्रयोग कर राम क स्वभाव का ममत्व एव दृढनिश्चयत्व की व्यञ्जना की गई है ।

सीता के लिए कवि ने सती सावा तथा प्रजावती पदा का प्रयोग किया, जिससे उनके आन्ध्र गृहणा आदर्श उज्ज्वल चरित्र एव पुत्र की उत्तम वरन वाली भानुजाया की व्यञ्जना होता है । राम द्वारा परित्याग के अनन्तर सावा द्वारा राम के लिए 'राजा' पद क प्रयोग द्वारा उनके उच्चकाटि क प्रजा रणक एव प्रजा पालक स्वरूप की व्यञ्जना का गई है ।

सबधता कामिजनेषु दाया सर्गे निदाधावधिना प्रमष्टा ।

यहाँ निदाधावधिना से ग्राम्मकाल का कथन किया गया है ।

पदेक देश की व्याजकता—

निवृत्य राजा दयिता दयानुस्ता सौरभेयौ सुरगिपशोनि । रघु० १।३

यहाँ दयानु पद में आनुव प्रत्यय है, उसर द्वारा राजा क दारुणिक स्वभाव का व्यञ्जना हुआ है ।

- 'शोभानिरामध्वनिना रथेन स घमपत्नी सहित सहिष्णु' ॥ १।७२

यहाँ 'साहिष्णु' पद इषणुच् प्रत्यय द्वारा बना है, उसके (पदेक देश) द्वारा इस सहनशील राजा (दिलीप) की यजना होती है।

'तुतोप वीर्यातिशयेन वृत्रहा पद हि सर्गात्र गुणनिघोषते' ।

यहाँ 'वृत्रहा' पद में विवप् प्रत्यय का संयोग है इस प्रकार विवप् प्रत्यय द्वारा वृत्रामुर के घघकर्ता इंद्र की वीरता की व्यजना होती है।

'ता राघवा दष्टिभिरापिबन्धो नायों न जग्मुर्विषयात्तराणि ॥७१३

यहाँ 'पित्रायो' पद शतृ प्रत्यान्त है। क्वि यह कहना चाहता है जब राजा दिलाप वन में चले गए थे, तब भा उन्हें देखने को व्याकुल था और इस समय उन्हें प्रमत्त पाकर भा सतृष्ण होकर दम्बता रह गयी। इस प्रकार विव प्रवृत्ति द्वारा मुदग्निषा के नृष्णातिशय की व्यजना हो रही है।

'एवमात्तरतिरात्मसभवास्तान्निवेश्य चतुरोर्जपि तत्र निवेश्य'

यहाँ ल्यप् प्रत्यान्त निवेश्य पद विवाह्य का व्यजक है।

हविभु जामेघवता चतुर्णा मध्ये ललाटतपसप्तसन्ति ॥१३।४१

यहाँ ललाटतप पद ललाट प्रत्यान्त है जो अत्यन्त ताप का व्यजक है ललाटतप का अर्थ है मूय।

वेस्मानि राम परिवहयन्ति विद्याप्य सोहादनिधि सुहृदग्य ॥४।१५

वाप्यायमाणे बन्तिमन्तिकेतमालेश्य शेषस्य पितृविवेश ॥

यहाँ वाप्यायमाणो पद वयङ् प्रत्यान्त है और वह वरुण रस का व्यजक है।

औत्यातिक मेघ इवारमवर्षे महोपते शासनमुज्जगार ॥ १४।५३

यहाँ उज्जगार क्रिया पद उद्गीणवान् इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् लक्ष्मण ने राम का आना बड़ी कठिनाई से मुनाया। इस प्रकार उज्जगार पद दाहणत्व के व्यजक होने के साथ ही—विषाद का भा व्यजक है।

इस प्रकार पन् एक अंश में प्रत्यय द्वारा पदेक देश का व्यजकता का विवेक किया गया।

विभक्ति की व्यजकता—

'सताप्रतामेद्घर्षितं स केशीरचिन्त्यवन्वा विषवार हावन्' ।



यहाँ 'दास्य' में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया है जिसका कारण बताते हुए मन्त्रिनाथ न लिखा है कि 'देशकामाभ्यगन्त्राया कर्मसशा त्त्कर्मणाम्' इति दास्य कर्मत्वम् इस प्रकार द्वितीया विभक्ति की व्यञ्जना स्पष्ट है ।

'नमसा निमृतेतुना तुलामुदिनाहंण समारोह तद्'

यहाँ 'तुना' का प्रयोग उदात्त अर्थ में किया गया है और 'तुना' शब्द के योग में तृतीया विभक्ति होता है अतः तमसा में तृतीया विभक्ति उदात्त अर्थ की व्यञ्जक है ।

अतः महीपात । तव अमेण प्रयुक्तमप्यधमितो बुधा स्यात् । ३।२३

यहाँ अत के योग में 'अमेण' में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है । मदिनो का रसाहनु राजा को थम करना व्यय है क्योंकि साध्य का पून रूप उ अभाव है । अतः तृतीयाविभक्ति द्वारा थम का निरपेक्षा का व्यञ्जना का गर्द है ।

वालिदान न सम्बोधना का प्रयोग मा पात्रों के गुण के अनुस्य किया । उनके द्वारा प्रयुक्त सम्बाधन पद समय एव परिस्थिति के अनुकूल हा पात्रा के स्वभाव को पून व्यञ्जना कर देते हैं । पष्ठ सग म मुन्दा द्वारा इन्दुमता के लिए आर्षे ।' का प्रयोग आर्षे का व्यञ्जक है ।

प्रयोग सग में राम द्वारा माता के लिए अतः सम्बोधनों का प्रयोग कराया गया है जो विभिन्न रसा एव भावा के व्यञ्जक हैं । पुष्कर विमान पर आवात राम-सीता को बना का निरात हुए भुग्रेतिणि । का प्रयोग करते हैं जो स्तह भाव का व्यञ्जक है । पुन चण्डि । पद का प्रयोग करते हैं जो काय भाव का व्यञ्जक है । वस्तुतः सीता प्रायो स्वभाव का नहीं थीं बल्कि परिस्थिति के अनुकूल ही उसका प्रयोग किया गया है । इसलिए मन्त्रिनाथ कहते हैं— चण्डि इत्यनन काननशील-स्वाधीति निप्रत्या मुञ्चति मेघ इति व्यग्रत । रघु० १३।२१

राम जब सीता हरण के प्रसंग का कथन करते हैं तो उस समय सीता भाव १२ कह कर सम्बाधित करते हैं, जो भय का व्यञ्जक है । एक स्थान पर वायुरगाति ! सम्बोधन स्नेह का व्यञ्जक है ।

चतुदश सग म अपन दुष्टियों से तिनत्र केकयो के लिए राम अम्ब ! पद का प्रयोग करते हैं, जो मातृस्नेह का व्यञ्जक है ।

इसा प्रकार अन्य प्रसंगों में भी सम्बाधन पदों की सापेक्षता देखा जा सकती है । दिलीप का हाथ जब बाण में सलमन हा जाता है तो सिंह, राजा के लिए

महीपाल पद का प्रयोग करता है, जो सिंह के गव का एव वीर राजा के दैन्य का व्यजक है। किन्तु जब राजा परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं, तो नदिनी दिलीप के लिए साधो, वस्त्र, पुत्र पद का प्रयोग करती है, जो नदिनी का राजा के प्रति वात्सल्य का व्यजक है। इसी प्रकार रघु के लिए देवेन्द्र इत्यादि पद उनकी श्रेष्ठता का व्यजक है। इन्दुमती की मृत्यु से दुःखित अज के लिए वशिष्ठ का शिष्य विद्युत्सत्वसार। कहता है जिससे उनके प्रस्थात धैर्यातिशय की यजना होती है।

निपात की व्यजकता—

‘विपावलुप्तप्रतिपत्ति विस्मित कुमारसन्ध सपदि स्थित च तत् ।

वसिष्ठधेनुरथ यदृच्छयागता धृतप्रभावा ददृशेऽथ नदिनी ॥ ३।४०

अश्व के रक्षक रघु की सेना ने जब देखा कि अश्व देखते-देखते ही अटपट हो गया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। ठीक इसी समय वशिष्ठ की प्रभावशाली गौ नदिनी वहाँ आ पहुँची।

यहाँ प्रयुक्त दो ‘च’ अविलम्ब का व्यजक है दो ‘चकारावविलम्बरूपकी’ मल्लिनाथ।

ज्यानिनावमय गृह्णती तपो प्रादुरास बहुलक्षपाद्यवि ॥ रघु० ११।१५ ३।४०

यहाँ प्रादुरास में ‘आस’ विगत रूप निपात है। इस आसू निपात द्वारा (वाङ्मना) गतिशीलता, दीप्तता का कथन किया है और इस प्रकार रोद्र रस की व्यजना हो रहा है।

वर्ण की व्यजकता—

‘तमुपादवदुद्यम्य दक्षिण दौर्निर्वाचर’ वर्ण नपुंसक लिंग का व्यजक है। ‘दौ’ की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ कहते हैं—‘कनुद्दीपणी’ इति भगवतोऽम्बाय्य कारस्य प्रयोगाद्दोषशब्दय नपुंसकत्व द्रष्टव्यम्। ‘भुजवाहू प्रवेष्टो दौ’ इति पुर्लिंगसाहाय्यात्पु-स्त्व च। मल्लिनाथ। १५।२३

वर्णों की व्यजकता वा कालिदास के काव्य में सर्वत्र दशनीय है। महाकवि ने कहीं वर्णों का प्रयोग रस के विरुद्ध नहीं किया। उनके वर्णन सबत्र, रस एव भाव के व्यजक हैं।

तपोरपाङ्गप्रतिसारिहानि हियासमापत्तिनिवर्तितानि ।

हृयत्रजामानशिरं मनोज्ञाय-योयलोत्तानि विसोत्तानि । रघु ७।२३

शुम्भनावलरूपुर्भूयितं शङ्करोपि नयन सलाटजम् ।

न्यये श्वो पार्श्वतीरवनग मवाहिने । कु० स० ८।१६

इन स्थला म प्रयुक्त रकार, ह्रस्व वण मे व्यवहृत रफ बर्गं तपग इत्यादि सभी रति भाव के व्यञ्जक हैं ।

वचन की व्यञ्जकता—

अमामुक्ते विम्बकनापरोष्ठे श्वापारधामास विलोचनानि ॥ ३।६७

यहाँ विलोचनानि में बहु बचा बटु-व का छात्र है और विलोचनानि क द्वारा कवि इस बात की व्यञ्जना कर रहा है कि छात्र न दो नहीं अरि तु तीना नेत्रा म पावती का दया ।

प्रत्ययांश की व्यञ्जकता—

परस्परेश सृष्ट्णीयशोभ न चैविदं दृढमयोत्रचिप्यत् ।

अस्मिन्द्वये रूपविधानपन पर्यु प्रजानां वित्तपोभियप्यत् ॥

यहाँ अभविप्यत् एव अयात्रियप्यत् में 'निगत्रिमिते सु गत्रियानितिपत्ता' अथ में सुङ्ग का प्रयोग किया गया है । वस्तुत रूपवान् स्त्री एव पुण्या का याग कठिनाई से होता है किन्तु यहाँ हो गया है । अत त्रिग त अभविप्यत् अयोत्रचिप्यत् पद के प्रत्ययांश सुङ्ग द्वारा इन्दुमती अत्र वे सौ रूप का साधकता का व्यञ्जना का गई है । इस प्रकार सुवत एव तिङ्ग दोनापदा का प्रयोग कवि न व्यंग्य को व्यञ्जित करन के लिए व्यञ्जक रूप में किया है ।

